साहित्य अमृत

मासिक

आषाढ़-श्रावण, संवत्-२०७८ ❖ अगस्त २०२१

वर्ष-२७ ❖ अंक-१ ❖ पृष्ठ १०८ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

✍ **संपादकीय**

स्वर्णिम पर्व का गौरवशाली दिन··· ४

✍ **प्रतिस्मृति**

जुलूस/ *प्रेमचंद* ६

✍ **रम्य रचना**

पाँच की पंचायत/ *उमा शंकर चतुर्वेदी* १३

✍ **कहानी**

मानकर दाजी/ *सुमन चौरे* १९

दोपहरी/ वंदना यादव ४२

खरपतवार बनाम गरीब/ *कर्नल पी.सी. वशिष्ठ* ४८

जुगाड़िन/ *तपेश भौमिक* ६०

इक्केवाले/ *धीरज कुमार श्रीवास्तव* ७२

सुरक्षा कवच/ *अर्चना दुबे* ८४

घर का पता/ संजय कुमार सिंह ९०

✍ **आलेख**

प्रतिबंधित साहित्य···/ *मदनलाल वर्मा 'क्रांत'* १६

भगत सिंह और भाग्य/ *राजशेखर व्यास* ४६

साहस और संवेदना···/ *सुप्रिया पी* ५७

प्रेमचंद : 'गुल्ली डंडा' से 'क्रिकेट मैच' तक/ *कमल किशोर गोयनका* ६४

सुकेत सत्याग्रह/ *पवन चौहान* ७०

आतंकवाद और अहिंसा/ कुसुम पटोरिया ७६

'प्रसाद'—साहित्य में समस्याएँ/ रेणु बाली ८२

स्वस्थ जीवन के लिए उपयोगी बातें/ रमेश चंद्र बादल ८६

समकालीन हिंदी कहानी···/ चंद्रशेखर यादव ९३

✍ **लघुकथा**

मदद/ *वंदना गोपाल शर्मा 'शैली'* १०१

✍ **कविता**

रक्षाबंधन/ *रोहित प्रसाद पथिक* १८

कोरोना महामारी/ *प्रणय श्रीवास्तव 'अश्क'* २९

वीरों की है धरा/ *राहुल* ३७

सैनिक का संदेश/ *शंकर लाल माहेश्वरी* ४१

ओ नवयुग के/ *संतोष श्रीवास्तव 'सम'* ४७

आजाद/ *मनोरमा चंद्रा 'रमा'* ४९

तिरंगी पतंग/ *नंदिनी कौशिक* ५२

आँगन के पंछी/ तृप्ति मिश्रा ६३

लिख गया/ मधु शुक्ला ७१

क्रांतिकारी मित्र के नाम/ सुरेश ऋतुपर्ण ७५

हम सबका प्यारा तिरंगा/ हेमचंद्र सकलानी ८१

हमारा पर्यावरण/ प्रभात कुमार धवन ८९

बरसते पानी में/ राजेंद्र ओझा ९२

चिड़िया/ के.एल. व्यास ९५

व्यावहारिक दोहे/ सत्यशील राम त्रिपाठी ९६

परिदृश्य का रंग/ *देवेश पथ सारिया* १०३

✍ **पुस्तक-अंश**

आजादी के तराने/ राजेंद्र पटोरिया २२

मेरा आजीवन कारावास/ सावरकर २६

अंतिम समय की बातें/ रामप्रसाद बिस्मिल ३८

✍ **राम झरोखे बैठ के**

शिकारपुर की खोज/ *गोपाल चतुर्वेदी* ५०

✍ **यात्रा-वृत्तांत**

निम से गंगोत्तरी तक/ *रुक्मणी संगल* ३२

✍ **लोक-साहित्य**

अनुपम कथा बंधेज की/ *चंद्रकांता शर्मा* १००

✍ **व्यंग्य**

पी राधा और मैं/ *अरुण अर्णव खरे* ६८

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

इनसान यानी···/ *दिनकर जोशी* ७८

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

दो कविताएँ/ *रुडयार्ड किपलिंग* ८८

✍ **बाल-संसार**

हवा सुहानी, हवा सुहानी/ *संजीव ठाकुर* ९९

पक्षियों वाला पेड़/ *सुमन वाजपेयी* १०२

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ १०४

✍ वर्ग-पहेली १०५

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ १०६

संपादकीय

स्वर्णिम पर्व का गौरवशाली दिन १५ अगस्त, २०२१

स्वाधीनता दिवस की ७४वीं वर्षगाँठ अर्थात् ७५वाँ स्वाधीनता दिवस···

स्वाधीन भारत का ७५वें वर्ष में प्रवेश···

याद आती हैं नेताजी सुभाषचंद्र बोस द्वारा १ जनवरी, १९३० को एक समारोह में दिए गए भाषण की पंक्तियाँ, "मुझे जो स्वप्न आता है, वह स्वाधीन भारत का स्वप्न है। वह दिन अवश्य आएगा, जब हमारा भारत स्वतंत्र होगा। उसका अपना संविधान होगा। उसकी अपनी सेनाएँ होंगी। दुनिया के देशों में उसके राजदूत होंगे···!"

ऐसा ही स्वप्न उन लाखों देशभक्तों ने भी देखा था जिन्होंने आजादी के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी और अनगिनत कष्ट उठाए।

गुलामी के दिनों में मेरठ के एक गाँव के वृद्ध प्रधान अंतिम साँसें गिन रहे हैं···पूरा गाँव जुटा है, उन्हें भूमि पर लिटा दिया गया है। एक आत्मीय जन पूछता है—'द्ददा, कोई अंतिम इच्छा हो तो बताओ।' प्रधानजी लड़खड़ाते स्वर में कहते हैं—'पूरी कर दोगे?'

एक साथ कुछ स्वर उभरते हैं—'दद्दा, आप बताओ तो सही।' प्रधानजी भरे गले से कहते हैं—'आजाद भारत दिखा दोगे···?' और इतना कहकर वे दम तोड़ देते हैं—आजाद भारत की कामना लिये।

लाखों परिवारों में आजादी की यही ललक होती थी। कितने ही परिवारों में होली, दीपावली तथा ईद मनाना स्थगित था कि जब तक भारत आजाद नहीं हो जाता, कोई त्योहार नहीं मनेगा।

पराधीनता के वे कितने अपमानजनक दिन थे, जब क्लबों के दरवाजों पर तख्ती में लिखा होता था—.....ऐंड इंडियंस आर नॉट एलाउड। एक प्राचीन महान् संस्कृति वाले विराट् देश के नागरिकों के लिए इतनी शर्मनाक बात!!

गुलामी की इसी कालिमा को धोने के लिए दुनिया के इतिहास का सबसे लंबा स्वाधीनता संग्राम भारत में लड़ा गया।

हम सब १८५७ के स्वाधीनता संघर्ष से परिचित हैं, जिसे अंग्रेजों ने 'गदर' बताकर छोटा करने की कोशिश की। इस संग्राम में राजा नाहर सिंह तथा झज्जर के नवाब को साथ-साथ पेड़ों से लटकाकर फाँसी दी गई थी। तो जिस संग्राम में आम नागरिकों से लेकर राजा-नवाब भी शामिल हों, वह 'गदर' कैसे हो सकता है! वह निश्चित ही 'क्रांति' थी। और हम यह भी नहीं भूलें कि १८५७ से पहले भी अंग्रेजों के शोषण एवं दमन के विरुद्ध कितने ही विद्रोह भारत भर में हो चुके थे। असम हो या नागालैंड, बिहार हो या उड़ीसा···। बिरसा मुंडा और तिलका माँझी जैसे वीरों को कौन भूल सकता है।

१८५७ के संग्राम के बाद अंग्रेजों ने जिस भयावहता के साथ दमन-चक्र चलाया, उसकी पीड़ा कभी मिट नहीं सकती। पुरानी दिल्ली में घर-घर से युवाओं को पेड़ों से लटकाया गया।

लेकिन आजादी की ललक न मिट सकी, न कम हुई। एक के बाद एक बलिदानी स्वाधीनता-यज्ञ में आहुति देते रहे। फिर दक्षिण अफ्रीका में एक चमत्कार हुआ। गोरों द्वारा भयानक उत्पीड़न, शोषण, अपमान के विरुद्ध महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के एकजुट किया और जनशक्ति के प्रचंड संघर्ष के सामने अंग्रेजों ने मजबूर होकर घुटने टेक दिए। पूरी दुनिया जनशक्ति, अहिंसा, सत्याग्रह के इस सफल प्रयोग से चकित हो गई। इसीलिए जब गांधीजी भारत लौटे तो चंपारण में उन्होंने जनजागरण तथा जनशक्ति के इसी शस्त्र का प्रयोग किया। चंपारण में ब्रिटिश साम्राज्य ने जिस प्रकार जनशक्ति के आगे पराजय स्वीकार कर अपने कानून बदले और दशकों से प्रताड़ित लाखों किसानों को राहत मिली, तो गांधीजी को स्वाधीनता संघर्ष की सही राह सूझ गई। देश में जिस तरह की अशिक्षा थी, गरीबी थी, अज्ञान था, उसे देखते हुए उन्हें सत्याग्रह तथा अहिंसा का रास्ता ही सही लगा। जिस ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन इतने देश थे, उसकी शक्ति को हिंसा के सहारे चुनौती देना असंभव सा ही था। १८५७ के क्रूर दमन की यादें धुँधली नहीं पड़ी थीं।

देश में क्रांतिकारियों के संघर्ष की एक अलग धारा भी प्रवाहित हो रही थी। चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, जतिन दास जैसे क्रांतिकारियों के बलिदान ने आजादी के लिए जनजागृति उत्पन्न करने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई थी। निश्चय ही दो अलग-अलग धाराएँ थीं किंतु उनके लक्ष्य एक ही थे। दोनों में एक जुड़ाव भी दिखता है। शहीद रामप्रसाद बिस्मिल फाँसी से पहले अपनी आत्मकथा में यही अपील करते हैं कि देश को गांधीजी के रास्ते की अधिक आवश्यकता है। क्रांतिकारियों के माता-पिता ही अखबार में विज्ञप्ति देकर उन्हें अपना मानने से इनकार कर देते थे तथा माँ भारती के ये सपूत पुलिस से छुपते-छुपाते अथाह कष्टों का सामना करते थे। शहीद भगत सिंह भी असेंबली में 'आवाज करनेवाला' बम फेंककर पुलिस के समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं कि मुकदमा चले,

पूरी दुनिया भारत के स्वाधीनता संघर्ष को जाने। गांधीजी के पास जब एक क्रांतिकारी ने अपनी पीड़ा बताई थी, तो गांधीजी ने यही कहा था कि तुमने कोई चोरी या अपराध नहीं किया है कि पुलिस से छुपते फिरो। हम खुलकर आजादी की माँग करते हैं; ब्रिटिश सरकार को जो करना है, कर ले! नेताजी सुभाषचंद्र बोस जब आजाद हिंद फौज का पुनर्गठन करते हैं तो पहली ब्रिगेड का नाम 'महात्मा गांधी ब्रिगेड' तथा दूसरी का नाम 'नेहरू ब्रिगेड' रखते हैं।

स्वाधीनता संग्राम की दो धाराओं को एक-दूसरे के विपरीत दिखाने का प्रयास उचित नहीं है। स्वाधीनता संग्राम में हमें उन देशभक्तों के प्रति भी नतमस्तक होना चाहिए, जिनके नाम इतिहास में प्रमुखता से नहीं आ सके या जिनसे युवा पीढ़ी कम परिचित है। चाहे किशोरी कनकलता बरुआ हो या ९० वर्ष की मातंगिनी हाजरा हों, युवा, वृद्ध, 'वानरसेना' के बच्चे, महिलाएँ हों, गरीब-अमीर, पत्रकार, कवि, कलाकार हों, कोई प्रांत हो, कोई धर्म हो, पूरे देश ने एक स्वर में आजादी की माँग की थी। पटना के उन सात विद्यार्थियों को कौन भूल सकता है जो एक के बाद एक पुलिस की गोली खाकर गिरते रहते हैं किंतु तिरंगा नहीं गिरने देते। सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद सरकार के गठन से पहले राजा महेंद्र प्रताप अपने एक साल के मासूम बच्चे को सोता छोड़कर आधी रात में पत्नी से शुभकामनाएँ लेकर देश छोड़कर दुनियाभर में भारत की आजादी के लिए जागृति जगाते हैं तथा काबुल में 'आजाद हिंद सरकार' की घोषणा करते हैं। वे अपनी सारी संपत्ति देशभक्ति के यज्ञ में समर्पित कर देते हैं। बलिदानों के अनगिनत किस्से युवा पीढ़ी के सामने आने चाहिए। कोई भी ऐसी भाषा, ऐसी बोली नहीं होगी, जिसमें युवाओं को आजादी की लड़ाई में कूदने का आह्वान न किया गया हो।

स्वाधीनता संग्राम से जो मूल्य, जो आदर्श निकलकर आए वे हमारी प्रेरणा होने चाहिए। जब हमें आजादी मिली, तब भारत की स्थिति बहुत दयनीय थी। ९० प्रतिशत आबादी गाँवों में थी। पारंपरिक कुटीर-उद्योग व धंधे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिए थे। भयानक अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी, बदहाली थी। पढ़ने के लिए दूर-दूर जाना पड़ता था। कॉलेज तो और भी कम तथा विश्वविद्यालय भी नाममात्र के। इस देश में तब सुई भी नहीं बनती थी। आजादी के बाद निश्चय ही देश ने अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं।

आज अनेक क्षेत्रों में हम विश्व के शीर्षस्थ दस देशों में हैं। जहाँ हम कभी अमरीका का लाल-लाल गेहूँ खाने को विवश थे, हरित क्रांति के बाद न केवल खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हैं वरन् निर्यात की स्थिति में हैं। गाँव-गाँव में शिक्षा पहुँच गई है। देश में १००० के लगभग विश्वविद्यालय हैं; आई.आई.टी. हैं, आई.आई.एम. हैं, मेडिकल कॉलेज हैं। बँटवारे के बाद भारत में मात्र ४ रेडियो स्टेशन थे, आज आकाशवाणी के ४०० से अधिक केंद्र और सैकड़ों एफ.एम. चैनल हैं। विज्ञान प्रौद्योगिकी तथा अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में हमारी अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हैं, मंगल मिशन इसका जीवंत प्रमाण है। कभी इस देश में हैजा-प्लेग से लाखों लोग मरते थे, प्राकृतिक आपदाएँ भी लाखों लोगों की बलि ले लेती थीं। आज हमने अनेक भयानक बीमारियों पर विजय पाई है, प्राकृतिक आपदाओं में 'नेशनल डिसास्टर मैनेजमेंट अथॉरिटी' तथा 'एनडीआरएफ' जैसी संस्थाओं के कारण लाखों जीवन बचाए जाते हैं। हमारा जीवन जीने का औसत जहाँ ३०-३५ वर्ष के आसपास होता था, अब ७० वर्ष के आसपास है। जहाँ इतनी छुआछूत थी, वहाँ एक समतामूलक समाज बनाने में भी हमारी प्रगति उल्लेखनीय है। महिलाओं की प्रगति भी कम सराहनीय नहीं है, जो जीवन के हर क्षेत्र में अपना मूल्यवान योगदान दे रही हैं। अमरीका में तो अब जाकर एक महिला उपराष्ट्रपति बनी हैं, किंतु भारत में प्रतिभा पाटिलजी राष्ट्रपति के पद पर बहुत पहले चुनी गई थीं।

भारत में लोकतंत्र की उत्तरोत्तर प्रगति भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जहाँ हमारे पड़ोसी देश लोकतंत्र के रास्ते से भटक गए तथा सत्ता के लिए खून-खराबे के शिकार हुए, भारत में वोट की ताकत से सरकारें बदलती रहीं। भारत में लोकतंत्र को सुदृढ़ करने के लिए स्वायत्त न्यायपालिका है, स्वतंत्र प्रेस तथा मीडिया है। भारत में मानव अधिकार आयोग, महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, चुनाव आयोग, सतर्कता आयोग, सूचना आयोग जैसी संस्थाओं ने लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाए रखने में योगदान दिया। १९६२ में चीन से धोखा खाने के बाद राष्ट्रीय सुरक्षा के संबंध में भी हम देश पर गर्व कर सकते हैं। अत्याधुनिक विमानों, मिसाइलों, पनडुब्बियों से लैस हमारी सेनाएँ पूरी तरह चाक-चौबंद हैं। संयुक्त राष्ट्र की शांति सेनाओं में भारतीय सेनाओं ने गौरव गाथाएँ लिखी हैं और सीमा पर दुश्मनों की कुत्सित हरकतों का मुँहतोड़ जवाब तो दिया ही है।

ऐसे पावन अवसर हमें आत्मचिंतन को प्रेरित करते हैं। अपनी तमाम उपलब्धियों के बावजूद सिक्के का दूसरा पहलू भी है। हमें उससे आँखें मूँदने की बजाय सजग होकर नए-नए संकल्पों तथा नए रास्तों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। जहाँ देश में १००० विश्वविद्यालय होना संतोष की बात है, वहीं इस आत्मचिंतन की भी आवश्यकता है कि इनमें एक भी विश्व के शीर्ष १०० विश्वविद्यालयों में क्यों नहीं हैं? अभी भी करोड़ों लोग निरक्षर हैं, अभी भी करोड़ों लोग भूखे सोते हैं, विश्व भुखमरी सूचकांक में हमारा स्थान इतने नीचे क्यों हैं?

इसलिए स्वाधीनता के ७५वें वर्ष में प्रवेश करने के इस गौरवमयी अवसर पर हर भारतीय प्रण करें कि यह भारतवर्ष के सर्वांगीण उत्थान और विकास में अपना किंचित् भी योगदान करने से पीछे नहीं हटेगा। १४० करोड़ भारतीय जब ठान लेंगे तो प्रगति की गति तीव्रतर हो जाएगी और हमारे हुतात्माओं के सपनों का भारत बनाने का संकल्प पूर्ण होगा।

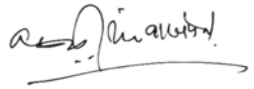

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

जुलूस

● प्रेमचंद

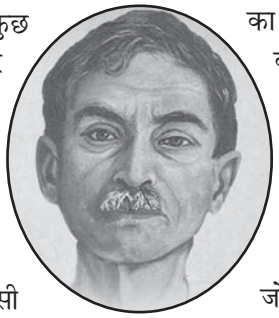

पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झंडियाँ और झंडे लिये वंदेमातरम् गाते हुए माल के सामने से निकले। दोनों तरफ दर्शकों की दीवारें खड़ी थीं, मानो उन्हें इस लक्ष्य से कोई सरोकार नहीं है, मानो यह कोई तमाशा है और उनका काम केवल खड़े-खड़े देखना है।

शंभूनाथ ने दुकान की पटरी पर खड़े होकर अपने पड़ोसी दीनदयाल से कहा—सब-के-सब काल के मुँह में जा रहे हैं। आगे सवारों का दल मार-मार भगा देगा।

दीनदयाल ने कहा—महात्माजी भी सठिया गए हैं। जुलूस निकालने से स्वराज्य मिल जाता तो अब तक कब का मिल गया होता और जुलूस में हैं कौन लोग, देखो—लौंडे, लफंगे, सिरफिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी नहीं।

मैकू चट्टियों और स्लीपरों की माला गरदन में लटकाए खड़ा था। इन दोनों सेठों की बातें सुनकर हँसा।

शंभू ने पूछा—क्यों हँसे मैकू? आज रंग चोखा मालूम होता है।

मैकू हँसा इस बात पर, जो तुमने कही कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कोई आराम नहीं है? बँगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, कौन तकलीफ है! मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिये गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आए पुलिस के कोड़े खाने के लिए? तुमने भी भली कही?

मैकू हँसा इस बात पर, जो तुमने कही कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कोई आराम नहीं है? बँगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, कौन तकलीफ है! मर तो हम लोग रहे हैं, जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिये गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आए पुलिस के कोड़े खाने के लिए? तुमने भी भली कही?

शंभू—तुम ये सब बातें क्या समझोगे मैकू, जिस काम में चार बड़े आदमी अगुआ होते हैं, उसकी सरकार पर भी धाक बैठ जाती है। लौंडों-लफंगों का गोल भला हाकिमों की निगाह में क्या जँचेगा?

मैकू ने ऐसी दृष्टि से देखा, जो कह रही थी—इन बातों के समझने का ठीका कुछ तुम्हीं ने नहीं लिया है और बोला—बड़े आदमी को तो हमी लोग बनाते-बिगाड़ते हैं या कोई और? कितने ही लोग जिन्हें कोई पूछता भी न था, हमारे ही बनाए बड़े आदमी बन गए और अब मोटरों पर निकलते हैं और हमें नीच समझते हैं। यह लोगों की तकदीर की खूबी है कि जिसकी जरा बढ़ती हुई, और उसने हमसे आँखें फेरीं। हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है और हमें किसी बड़े आदमी की परवाह नहीं है। सच पूछो तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। इन्हें सरकार ने कोई अच्छी सी जगह दे दी, बस उसका दम भरने लगे।

दीनदयाल—नया दारोगा बड़ा जल्लाद है। चौरास्ते पर पहुँचते ही हंटर लेकर पिल पड़ेगा। फिर देखना, सब कैसे दुम दबाकर भागते हैं। मजा आएगा।

जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरास्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।

सहसा दारोगा बीरबल सिंह घोड़ा बढ़ाकर जुलूस के सामने आ गए और बोले—तुम लोगों को आगे जाने का हुक्म नहीं है।

जुलूस के बूढ़े नेता इब्राहिम अली ने आगे बढ़कर कहा—मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दुकानें लूटने या मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मकसद इससे कहीं ऊँचा है।

बीरबल—मुझे यह हुक्म है कि जुलूस यहाँ से आगे न जाने पाए।

इब्राहिम—आप अपने अफसरों से जरा पूछ न लें।

बीरबल—मैं इसकी कोई जरूरत नहीं समझता।

इब्राहिम—तो हम लोग यहीं बैठते हैं। जब आप लोग चले जाएँगे तो हम निकल जाएँगे।

बीरबल—यहाँ खड़े होने का भी हुक्म नहीं है। तुमको वापस जाना पड़ेगा।

इब्राहिम ने गंभीर भाव से कहा—वापस तो हम न जाएँगे। आपको या किसी को भी, हमें रोकने का कोई हक नहीं। आप अपने सवारों, संगीनों और बंदूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिए, मगर आप हमें लौटा नहीं सकते। न जाने वह दिन कब आएगा, जब हमारे भाई-बंद ऐसे हुक्मों की तामील करने से साफ इनकार कर देंगे, जिनकी मंशा महज कौम को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखना है।

बीरबल ग्रैजुएट था। उसका बाप सुपरिंटेंडेंट पुलिस था। उसकी नस-नस में रोब भरा हुआ था। अफसरों की दृष्टि में उसका बड़ा सम्मान था। खासा गोरा चिट्टा, नीली आँखों और भूरे बालों वाला तेजस्वी पुरुष था। शायद जिस वक्त वह कोट पहनकर ऊपर से हैट लगा लेता तो वह भूल जाता था कि मैं भी यहाँ का रहनेवाला हूँ। शायद वह अपने को राज्य करनेवाली जाति का अंग समझने लगता था; मगर इब्राहिम के शब्दों में जो तिरस्कार भरा हुआ था, उसने जरा देर के लिए उसे लज्जित कर दिया। पर मुआमला नाजुक था। जुलूस को रास्ता दे देता है तो जवाब तलब हो जाएगा; वहीं खड़ा रहने देता है तो ये सब न जाने कब तक खड़े रहें। इस संकट में पड़ा हुआ था कि उसने डी.एस.पी. को घोड़े पर आते देखा। अब सोच-विचार का समय न था। यही मौका था कारगुजारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन निकाल लिया और घोड़े को एड़ लगाकर जुलूस पर चढ़ाने लगा। उसे देखते ही और सवारों ने भी घोड़ों को जुलूस पर चढ़ाना शुरू कर दिया। इब्राहिम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे जोर से पड़ा कि उसकी आँखें तिलमिला गईं। खड़ा न रह सका। सिर पकड़कर बैठ गया। उसी वक्त दारोगाजी के घोड़े ने दोनों पाँव उठाए और जमीन पर बैठा हुआ इब्राहिम उसकी टापों के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शांत खड़ा था। इब्राहिम को गिरते देखकर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके; मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रभावित न हो जाना उसके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है तो फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें? लोगों को खयाल आया शहर के लाखों आदमियों की निगाहें हमारी तरफ लगी हुई हैं। यहाँ से यह झंडा लेकर हम लौट जाएँ तो फिर किस मुँह से आजादी का नाम लेंगे; मगर प्राण-रक्षा के लिए भागने का किसी को ध्यान भी न आता था। यह पेट के भक्तों, किराए के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयंसेवकों का, आजादी के दीवानों का संगठित दल था—अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझता था। कितने ही के सिरों से खून जारी था, कितने ही के हाथ जख्मी हो गए थे। एक हल्ले में ये लोग सवारों की सफों को चीर सकते थे, मगर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं—सिद्धांत की, धर्म की, आदर्श की।

इब्राहिम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे जोर से पड़ा कि उसकी आँखें तिलमिला गईं। खड़ा न रह सका। सिर पकड़कर बैठ गया। उसी वक्त दारोगाजी के घोड़े ने दोनों पाँव उठाए और जमीन पर बैठा हुआ इब्राहिम उसकी टापों के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शांत खड़ा था। इब्राहिम को गिरते देखकर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके; मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रभावित न हो जाना उसके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है तो फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें?

दस-बारह मिनट तक यों ही डंडों की बौछार होती रही और लोग शांत खड़े रहे।

इस मार-धाड़ की खबर एक क्षण में बाजार में जा पहुँची। इब्राहिम घोड़े से कुचल गए, कई आदमी जख्मी हो गए, कई के हाथ टूट गए; मगर न वे लोग पीछे फिरते हैं और न पुलिस उन्हें आगे जाने देती है।

मैकू ने उत्तेजित होकर कहा—अब तो भाई, यहाँ नहीं रहा जाता। मैं भी चलता हूँ।

दीनदयाल ने कहा—हम भी चलते हैं भाई, देखी जाएगी।

शंभू एक मिनट तक मौन खड़ा रहा। एकाएक उसने भी दुकान बढ़ाई और बोला—एक दिन तो मरना ही है, जो कुछ होना है, हो। आखिर वे लोग सभी के लिए तो जान दे रहे हैं। देखते-देखते अधिकांश दुकानें बंद हो गईं। वे लोग, जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे इधर-उधर से दौड़ पड़े और हजारों आदमियों का एक विराट् दल घटनास्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था, जिसे सिद्धांत और आदर्श की परवाह न थी। जो मरने के लिए ही नहीं, मारने के लिए भी तैयार थे। कितनों ही के हाथों में लाठियाँ थीं, कितनी ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस, सब-के-सब मन में एक दृढ़ संकल्प किए लपके चले जा रहे थे, मानो कोई घटा उमड़ी चली आती हो।

इस दल को दूर से देखते ही सवारों में कुछ हलचल पड़ी। बीरबल सिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। डी.एस.पी. ने अपनी मोटर बढ़ाई। शांति और अहिंसा के व्रतधारियों पर डंडे बरसाना और बात थी, एक

उन्मत्त दल से मुकाबला करना दूसरी बात। सवार और सिपाही पीछे खिसक गए।

इब्राहिम की पीठ पर घोड़े ने टाप रख दी। वह अचेत जमीन पर पड़े थे। इन आदमियों का शोरगुल सुनकर आप ही आप उनकी आँखें खुल गईं। एक युवक को इशारे से बुलाकर कहा—क्यों कैलाश, क्या कुछ लोग शहर से आ रहे हैं?

कैलाश ने उस बढ़ती हुई घटा की ओर देखकर कहा—जी हाँ, हजारों आदमी हैं।

इब्राहिम—तो अब खैरियत नहीं है। झंडा लौटा दो। हमें फौरन लौट चलना चाहिए, नहीं तूफान मच जाएगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करनी है। फौरन लौट चलो।

यह कहते हुए उन्होंने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सके।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गए। झंडियों के बाँसों, साफों और रुमालों से चटपट एक स्ट्रेचर तैयार हो गया। इब्राहिम को लोगों ने उस पर लिटा दिया और पीछे फिरे। मगर क्या वह परास्त हो गए थे? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष हो तो हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगांतकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके हित परिस्थितियों के कारण हमारे हितों से भिन्न हैं। हमें उनसे वैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते कि शहर में लूट और दंगे का बाजार गरम हो जाए और हमारे धर्मयुद्ध का अंत लूटी हुई दुकानें, फूटे हुए सिर हों। उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग, जो पहले उन पर हँसते थे; उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिए निकल पड़े थे। मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उसकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जाएँगे, उसी दिन स्वराज्य सूर्य उदय होगा।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गए। झंडियों के बाँसों, साफों और रुमालों से चटपट एक स्ट्रेचर तैयार हो गया। इब्राहिम को लोगों ने उस पर लिटा दिया और पीछे फिरे। मगर क्या वह परास्त हो गए थे? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष हो तो हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगांतकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके हित परिस्थितियों के कारण हमारे हितों से भिन्न हैं। हमें उनसे वैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते कि शहर में लूट और दंगे का बाजार गरम हो जाए और हमारे धर्मयुद्ध का अंत लूटी हुई दुकानें, फूटे हुए सिर हों। उनकी विजय का सबसे उज्वल चिह्न यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी।

तीन दिन गुजर गए थे। बीरबल सिंह अपने कमरे में बैठे चाय पी रहे थे और उनकी पत्नी मिट्ठन बाई शिशु को गोद में लिये सामने खड़ी थीं।

बीरबल सिंह ने कहा—मैं क्या करता उस वक्त। पीछे डी.एस.पी. खड़ा था। अगर उन्हें रास्ता दे देता तो अपनी जान मुसीबत में फँसती।

मिट्ठन बाई ने सिर हिलाकर कहा—तुम कम-से-कम इतना तो कर ही सकते थे कि उन पर डंडे न चलाने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डंडे चलाना है? तुम ज्यादा-से-ज्यादा उन्हें रोक सकते थे। कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाए तो शायद तुम्हें बड़ा आनंद आएगा, क्यों? बीरबल सिंह ने खिसियाकर कहा—तुम तो बात नहीं समझती हो!

मिट्ठन बाई—मैं खूब समझती हूँ। डी.एस.पी. पीछे खड़ा था। तुमने सोचा होगा ऐसी कारगुजारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या तुम समझते हो, उस दल में कोई भला आदमी न था? उसमें कितने आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसों को नौकर रख सकते हैं। विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बढ़े हुए होंगे। मगर तुम उन पर डंडे चला रहे थे और उन्हें घोड़े से कुचल रहे थे, वाह री जवाँमर्दी!

बीरबल सिंह ने बेहयाई की हँसी के साथ कहा—डी.एस.पी. ने मेरा नाम नोट कर लिया है। सच!

दारोगाजी ने समझा था कि यह सूचना देकर वह मिट्ठन बाई को खुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं, जबान से कही जाती हैं। स्वार्थ दिल की गहराइयों में बैठा होता है। वह गंभीर विचार का विषय है।

मगर मिट्ठन बाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा न नजर आई, ऊपर की बातें शायद गहराइयों तक पहुँच गई थीं! बोलीं—जरूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्दी तरक्की भी मिल जाए। मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रँगकर तरक्की पाई, तो क्या पाई! यह तुम्हारी कारगुजारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुजारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।

एकाएक एक सिपाही ने बरामदे में खड़े होकर कहा—हुजूर, यह लिफाफा लाया हूँ। बीरबल सिंह ने बाहर निकलकर लिफाफा ले लिया और भीतर की सरकारी चिट्ठी निकालकर पढ़ने लगे। पढ़कर उसे मेज पर रख दिया।

मिट्ठन ने पूछा—क्या तरक्की का परवाना आ गया?

बीरबल सिंह ने झेंपकर कहा—तुम तो बनाती हो! आज फिर कोई जुलूस निकलनेवाला है। मुझे उसके साथ रहने का हुक्म हुआ है।

मिट्ठन—फिर तो तुम्हारी चाँदी है, तैयार हो जाओ। आज फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़-बढ़कर हाथ दिखलाना! डी.एस.पी. भी जरूर आएँगे। अबकी तुम इंस्पेक्टर हो जाओगे। सच!

बीरबल सिंह ने माथा सिकोड़कर कहा—कभी-कभी तुम बे-सिर-पैर की बातें करने लगती हो। मान लो, मैं जाकर चुपचाप खड़ा रहूँ तो क्या नतीजा होगा। मैं नालायक समझा जाऊँगा और मेरी जगह कोई दूसरा आदमी भेज दिया जाएगा। कहीं शुबहा हो गया कि मुझे स्वराज्यवादियों से सहानुभूति है तो कहीं का न रहूँगा। अगर बरखास्त भी न हुआ तो लैन की हाजिरी तो हो ही जाएगी। आदमी जिस दुनिया में रहता है, उसी का

चलन देखकर काम करता है। मैं बुद्धिमान न सही; पर इतना जानता हूँ कि ये लोग देश और जाति का उद्धार करने के लिए ही कोशिश कर रहे हैं। यह भी जानता हूँ कि सरकार इस खयाल को कुचल डालना चाहती है। ऐसा गधा नहीं हूँ कि गुलामी की जिंदगी पर गर्व करूँ; लेकिन परिस्थिति से मजबूर हूँ।

बाजे की आवाज कानों में आई। बीरबल सिंह ने बाहर जाकर पूछा। मालूम हुआ स्वराज्य वालों का जुलूस आ रहा है। चटपट वरदी पहनी, साफा बाँधा और जेब में पिस्तौल रखकर बाहर आए। एक क्षण में घोड़ा तैयार हो गया। कॉन्स्टेबल पहले ही से तैयार बैठे थे। सब लोग डबल मार्च करते हुए जुलूस की तरफ चले।

ये लोग डबल मार्च करते हुए कोई पंद्रह मिनट में जुलूस के सामने पहुँच गए। इन लोगों को देखते ही अगणित कंठों से 'वंदेमातरम्' की एक ध्वनि निकली, मानो मेघमंडल में गर्जन का शब्द हुआ हो, फिर सन्नाटा छा गया। उस जुलूस में और इस जुलूस में कितना अंतर था! वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर और वेदना के बाद आज उस जीवन का अंत हो गया, जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते समय वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफन किया जाए और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाए। उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का परदा सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था, जैसे उसे गोली लग गई हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाजार बंद हो गए, इक्कों और ताँगों का कहीं पता न था, जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक्त जनाजा उठा, लाख-सवा लाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आँसुओं से लाल न हो।

वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर और वेदना के बाद आज उस जीवन का अंत हो गया, जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते समय वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहलाकर दफन किया जाए और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाए। उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का परदा सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था, जैसे उसे गोली लग गई हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाजार बंद हो गए, इक्कों और ताँगों का कहीं पता न था, जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा।

बीरबल सिंह अपने कॉन्स्टेबलों और सवारों को पाँच-पाँच गज के फासले पर जुलूस के साथ चलने का हुक्म देकर खुद पीछे चले गए। पिछली सफों में कोई पचास गज तक महिलाएँ थीं। दारोगा ने उनकी तरफ ताका। पहली ही कतार में मिट्ठन बाई नजर आई। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा, वही थी। मिट्ठन ने उनकी तरफ एक बार देखा और आँखें फेर लीं, पर उसकी एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी कि बीरबल सिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी सी दौड़ गई। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हलके, इतने दुर्बल, इतने जलील न हुए थे।

सहसा एक युवती ने दारोगाजी की तरफ देखकर कहा—कोतवाल साहब, कहीं हम लोगों पर डंडे न चला दीजिएगा। आपको देखकर भय हो रहा है!

दूसरी बोली—आप ही के कोई भाई तो थे, जिन्होंने उस माल के चौरस्ते पर इस पुरुष पर आघात किए थे।

मिट्ठन ने कहा—आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे।

बीसियों ही मुँहों से आवाजें निकलीं—अच्छा, यह वही महाशय हैं? महाशय आपको नमस्कार है। यह आप ही की कृपा का फल है कि आज हम भी आपके डंडे के दर्शन के लिए आ खड़ी हुई हैं!

बीरबल ने मिट्ठन बाई की ओर आँखों का भाला चलाया; पर मुँह से कुछ न बोले। एक तीसरी महिला ने फिर कहा—हम एक जलसा करके आपको जयमाल पहनाएँगे और आपका यशोगान करेंगे।

चौथी ने कहा—आप बिलकुल अँगरेज मालूम होते हैं, जभी इतने गोरे हैं!

एक बुढ़िया ने आँखें चढ़ाकर कहा—मेरी कोख में ऐसा बालक जनमा होता तो उसकी गरदन मरोड़ देती!

एक युवती ने उसका तिरस्कार करके कहा—आप भी खूब कहती हैं, माताजी, कुत्ते तक तो नमक का हक अदा करते हैं, यह तो आदमी हैं!

बुढ़िया ने झल्लाकर कहा—पेट के गुलाम, हाय पेट, हाय पेट!

इस पर कई स्त्रियों ने बुढ़िया को आड़े हाथों ले लिया और वह बेचारी लज्जित होकर बोली—अरे, मैं कुछ कहती थोड़े ही हूँ। मगर ऐसा आदमी भी क्या, जो स्वार्थ के पीछे अंधा हो जाए।

बीरबल सिंह अब और न सुन सके। घोड़ा बढ़ाकर जुलूस से कई गज पीछे चले गए। मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है; स्त्रियाँ लज्जित करती हैं तो ग्लानि उत्पन्न होती है। बीरबल सिंह की इस वक्त इतनी हिम्मत न थी कि फिर उन महिलाओं के सामने जाते। अपने अफसरों पर क्रोध आया। मुझी को बार-बार क्यों इन कामों पर तैनात किया जाता है? और लोग भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं लाया जाता? क्या मैं ही सबसे गया-बीता हूँ? क्या मैं ही सबसे भावशून्य हूँ?

मिट्ठी इस वक्त मुझे दिल में कितना कायर और नीच समझ रही होगी! शायद इस वक्त मुझे कोई मार डाले तो वह जबान भी न खोलेगी। शायद मन में प्रसन्न होगी कि अच्छा हुआ। अभी कोई जाकर साहब से कह दे कि बीरबल सिंह की स्त्री जुलूस में निकली थी तो कहीं का न रहूँ! मिट्ठी जानती है, समझती है, फिर भी निकल खड़ी हुई। मुझसे पूछा तक नहीं। कोई फिक्र नहीं है न, जभी ये बातें सूझती हैं, यहाँ सभी बेफिक्र हैं,

कालेजों और स्कूलों के लड़के, मजदूर, पेशेवर इन्हें क्या चिंता? मरन तो हम लोगों की है, जिनके बाल-बच्चे हैं और कुल-मर्यादा का ध्यान है। सब-की-सब मेरी तरफ कैसा घूर रही थीं, मानो खा जाएँगी।

जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुजरता हुआ चला जा रहा था। दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर दर्शकों की दीवारें सी खड़ी थीं। बीरबल सिंह को आज उनके चेहरों पर एक नई स्फूर्ति, एक नया उत्साह, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्ति थी वृक्षों के चेहरे पर, उत्साह युवकों के और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनको यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथभ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की भाँति सिर झुकाकर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहला शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों को बीच के नालों और जंगलों की परवाह नहीं है। सब उस सुनहले लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

ग्यारह बजते-बजते जुलूस नदी के किनारे जा पहुँचा, जनाजा उतारा गया और लोग शव को गंगा-स्नान कराने के लिए चले। उसके शीतल, शांत, पीले मस्तक पर लाठी की चोट साफ नजर आ रही थी। रक्त जमकर काला हो गया था। सिर के बड़े-बड़े बाल खून जम जाने से किसी चित्रकार की तूलिका की भाँति चिमट गए थे। कई हजार आदमी इस शहीद के अंतिम दर्शनों के लिए मंडल बाँधकर खड़े हो गए। बीरबल सिंह पीछे घोड़े पर सवार खड़े थे। लाठी की चोट उन्हें भी नजर आई। उनकी आत्मा ने जोर से धिक्कारा। वह शव की ओर न ताक सके। मुँह फेर लिया। जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिनके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं, उसका मैंने इतना अपमान किया। उनकी आत्मा इस समय स्वीकार कर रही थी कि उस निर्दय प्रहार में कर्तव्य के भाव का लेश भी न था—केवल स्वार्थ था, कारगुजारी दिखाने की हवस और अफसरों को खुश करने की लिप्सा थी। हजारों आँखें क्रोध से भरी हुई उनकी ओर देख रही थीं; पर वह सामने ताकने का साहस न कर सकते थे।

एक कॉन्स्टेबल ने आकर प्रशंसा की—हुजूर का हाथ गहरा पड़ा था। अभी तक खोपड़ी खुली हुई है। सबकी आँखें खुल गईं।

बीरबल ने उपेक्षा की—मैं इसे अपनी जवाँमर्दी नहीं, अपना कमीनापन समझता हूँ।

कॉन्स्टेबल ने फिर खुशामद की—बड़ा सरकश आदमी था हुजूर!

बीरबल ने तीव्र भाव से कहा—चुप रहो! जानते भी हो, सरकश किसे कहते हैं? सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते हैं। उन्हें सरकश नहीं कहते, जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरते हों। हमारी बदनसीबी है कि जिनकी मदद करनी चाहिए, उनका विरोध कर रहे हैं। यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है।

स्नान समाप्त हुआ। जुलूस यहाँ से फिर रवाना हुआ।

शव को जब खाक के नीचे सुलाकर लोग लौटने लगे तो दो बज रहे थे। मिट्ठन बाई स्त्रियों के साथ-साथ कुछ दूर तक तो आई, पर क्वींसपार्क में आकर ठिठक गई। घर जाने की इच्छा न हुई। वह जीर्ण, आहत, रक्तरंजित शव, मानो उसके अंतस्तल में बैठा उसे धिक्कार रहा था। पति से उसका मन इतना विरक्त हो गया था कि अब उसे धिक्कारने की भी उसकी इच्छा न थी। ऐसे स्वार्थी मनुष्य पर भय के सिवा और किसी चीज का असर हो सकता है, इसका उसे विश्वास ही न था।

वह बड़ी देर तक पार्क में घास पर बैठी सोचती रही, पर अपने कर्तव्य का कुछ निश्चय न कर सकी। मैके जा सकती थी, किंतु वहाँ से महीने-दो महीने में फिर इसी घर आना पड़ेगा। नहीं, मैं किसी की आश्रित न बनूँगी। क्या मैं अपने गुजर-बसर को भी नहीं कमा सकती? उसने स्वयं भाँति-भाँति की कठिनाइयों की कल्पना की; पर आज उसकी आत्मा में न जाने इतना बल कहाँ से आ गया। इन कल्पनाओं को ध्यान में लाना ही उसे अपनी कमजोरी मालूम हुई।

सहसा उसे इब्राहिम अली की वृद्धा विधवा का खयाल आया। उसने सुना था, उनके लड़के-बाले नहीं हैं। बेचारी बैठी रो रही होंगी। कोई तसल्ली देने वाला भी पास न होगा। वह उनके मकान की ओर चली। पता उसने पहले ही अपने साथ की औरतों से पूछ लिया था। वह दिल में सोचती जाती थी—मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उन्हें किन शब्दों में समझाऊँगी। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह इब्राहिम अली के घर पर पहुँच गई। मकान एक गली में था, साफ-सुथरा; लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थी। उसने धड़कते हुए हृदय से अंदर कदम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर वह वृद्धा बैठी हुई थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान दिया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से बातें कर रहा था। मिट्ठन उस युवक को देखकर चौंक पड़ी—वह बीरबल सिंह थे।

उसने क्रोधमय आश्चर्य से पूछा—तुम यहाँ कैसे आए?

बीरबल सिंह ने कहा—उसी तरह जैसे तुम आईं। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ!

मिट्ठन के गोरे मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्ज्वल विभूति नजर आई, वह अकथनीय थी! ऐसा जान पड़ा, मानो उसके जन्म-जन्मांतर के क्लेश मिट गए हैं, वह चिंता और माया के बंधनों से मुक्त हो गई है।

वह दिल में सोचती जाती थी—मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उन्हें किन शब्दों में समझाऊँगी। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह इब्राहिम अली के घर पर पहुँच गई। मकान एक गली में था, साफ-सुथरा; लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थी। उसने धड़कते हुए हृदय से अंदर कदम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर वह वृद्धा बैठी हुई थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान दिया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से बातें कर रहा था। मिट्ठन उस युवक को देखकर चौंक पड़ी—वह बीरबल सिंह थे।

पाँच की पंचायत

• उमा शंकर चतुर्वेदी

अपने देश, अपने जीवन, अपनी संस्कृति, वेद पुराणों, शास्त्रों, समाज और राजनीति में पाँच का बड़ा महत्त्व है। अब यों ही लीजिए कि हमारा शरीर ही पंच तत्त्वों—आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि से बना है और अंत में इन्हीं पंच तत्त्वों में विलीन हो जाता है। इन पाँच तत्त्वों को पंचभूत भी कहते हैं। हाथों और पाँवों की उँगलियाँ भी पाँच-पाँच होती हैं। हमारे शरीर में पाँच कर्मेंद्रियाँ और पाँच ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं। अपने शास्त्रों में पाँच देवता प्रमुख माने गए हैं। ये पाँच देवता हैं—गणेश, शिव, विष्णु, दुर्गा और सूर्य। पूजा में भोग लगाने के लिए पंचामृत आवश्यक होता है, जो पाँच चीजों से मिलकर बनता है—गौ दूध, गौ दही, गौधृत, शहद और शक्कर। पाप के प्रायश्चित्त के लिए पंचगव्य पीने का विधान है, जो गौ मूत्र, गौ गोबर, घी, दूध और दही इन पाँच से मिलकर बनता है। अपने यहाँ पाँच पंचों को पंच परमेश्वर कहा गया है। पाँच जजों की पीठ का निर्णय सर्वमान्य होता है। देश की विधान सभाओं और लोकसभा का कार्यकाल भी पाँच साल का होता है। इसीलिए विधायक और सांसद पाँच साल के लिए चुने जाते हैं। श्रीराम का विवाह भी अगहन सुदी पंचमी को हुआ था। भगवान् शंकर का पंचाक्षरी मंत्र 'ओम् नमः शिवाय' सर्व संकट दूर करने वाला बताया गया है। गायन में पंचम स्वर श्रेष्ठ माना गया है। किसी दस्तावेज को पाँच लोग सत्यापित करते हैं तो उसे 'पंचनामा' कहा गया है। आयुर्वेद में पंच कर्म एक प्रमुख चिकित्सा पद्धति है। पंच सकार चूर्ण, जो पाँच रसायनों से मिलकर बनता है, पेट के लिए उपयोगी होता है। कामदेव के तरकस में पाँच बाण रहते हैं, इसीलिए कामदेव को पंचसर भी कहते हैं। पंजाब में पाँच बड़ी नदियों का पानी है, इसी से उसका नाम पंजाब पड़ा। वनवास काल में राम ने पंचवटी में निवास किया था।

अपनी संस्कृति में पाँच का सर्वाधिक महत्त्व है। भक्त, भूमि, गौ, ब्राह्मण और देवता इन पाँच के हित के लिए भगवान् मानव शरीर धारण कर लीलाएँ करते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अलावा पाँचवाँ पुरुषार्थ संतों ने भगवत् भक्ति को माना है। उज्जैन में प्रतिवर्ष पंचकोशी यात्रा होती है। नर्मदा मैया की भी पंचकोशी यात्रा करते हैं। द्रौपदी, जिन्हें पांचाली भी कहते हैं, उनके पाँच पति थे—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। सिक्ख धर्म में पंच प्यारों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। पंचमी की कई तिथियाँ महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे नाग पंचमी, ऋषि पंचमी, वसंत पंचमी आदि। यज्ञ हमारी सनातन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यज्ञों का आयोजन परिवार, समाज और देश की सुख, समृद्धि, वर्षा, आरोग्य और

साहित्यकार, व्यंग्यकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। अपर संचालक, लोक शिक्षण मध्य प्रदेश (से.नि.)। साहित्य में अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

शांति इन पाँच उद्देश्यों के लिए किया जाता है। यज्ञ में आहुति के लिए हवन सामग्री भी पाँच चीजों से मिलकर बनाई जाती है। ये पाँच चीजें हैं—औषधि वाले और पवित्र पेड़ की लकड़ियाँ, जौ, तिल, गाय का घी और शक्कर। हनुमानजी का एक प्रिय स्वरूप पंचमुखी हनुमान का है, जिनके पाँच मुख हैं। उनका पूर्वाभिमुख वानर का है, दक्षिणाभिमुख नरसिंह भगवान् का, पश्चिमाभिमुख गरुड़ का है तथा उत्तराभिमुख वाराह अवतारी विष्णु के समान और आसमान की ओर लक्ष किया हुआ है। अश्वनी कुमार देवों तथा भगवान् हयग्रीव का सा घोड़े की आकृतिवाला मुख है। ऐसे पाँच मुँह वाले ग्यारहवें रुद्र कहलाने वाले हनुमानजी बड़े कृपालु हैं। हनुमानजी के सहस्र नामों में उनका एक नाम पंचमातृका है। वे पाँच माताओं वाले हैं, और उनकी पाँच माताएँ हैं—अंजनी माता, सीता माता, उर्मिला माता, मांडवी माता और माता श्रुतिकीर्ति। पाँच कन्याएँ बताई गई हैं—कुंती, द्रौपदी, तारा, अहल्या और मंदोदरी। किसी खाद्य वस्तु या फलों को परखने के पाँच तरीके होते हैं और वे हैं—सुनकर, देखकर, स्पर्शकर, सूँघकर और चखकर। हमारा जीवन पाँच चीजों में अटका हुआ है। ये पाँच चीजें हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। भागवत पुराण में सौनक ऋषि ने शुकदेवजी से पाँच प्रश्न पूछे थे। श्रीराम जैसे राष्ट्र नायक के जीवन की पाँच विशेषताएँ संतों ने बताई हैं। ये विशेषताएँ हैं—सज्जनों, ऋषियों की रक्षा अर्थात् धर्म रक्षा, दलितों को गले लगाना, सदाचरण, जंगली जानवरों से सहायता लेना ओर सभी भाषाओं, प्रांतों में समन्वय। व्रत में पाँच बातें आवश्यक हैं—अस्वाद, अक्रोध, अनिंदा, अवैर और इष्ट ध्यान।

पूजा का कलश, जिसे अमृत कलश भी कहते हैं, उसके पाँच भागों में विभिन्न देवताओं का वास बताया गया है। पूजा के कलश के पाँच भाग हैं—मुख भाग, कंठ, नीचे मूल भाग, बीच का भाग और कुक्ष। वेदों में पाँच लोकपाल बताए गए हैं। ये हैं—गणेशजी, दुर्गाजी, वायु, आकाश और अश्वनी कुमार। पंचोपचार में देवताओं की पूजा पाँच चीजों से की

जाती है—पुष्प, गंध, धूप, दीप और अक्षत। वेद शास्त्रों में हिंदू संस्कृति में पाँच मंत्र बताए गए हैं—नवार्ण मंत्र, पंचाक्षरी मंत्र, द्वादश अक्षरी मंत्र, महामृत्युंजयी मंत्र और सिद्ध मंत्र। पाँच इष्ट देव बताए गए हैं—माता, पिता, गुरु, ऋषि और देवता। पूजा विधान में पाँच पल्लव सर्वोतम माने जाते हैं—आम, बरगद, पीपल, गूलर और पाकड़। पंच धातुओं में सोना, चाँदी, ताँबा, काँसा और पीतल माने गए हैं। बड़ी पूजाओं में, यज्ञ आदि में पाँच स्थानों की मिट्टियों का प्रयोग होता है—गौशाला की मिट्टी, हाथीसार की मिट्टी, श्मशान की मिट्टी, वापी की मिट्टी और राजदरबार की मिट्टी। पंचकाशी में वाराणसी, गुप्तकाशी, उत्तरकाशी, दक्षिण काशी और शिवकाशी सामिल हैं। अपने देश में पंचनाथ हैं—उत्तर में श्रीबदरीनाथ (उत्तराखंड), दक्षिण में श्रीरंगनाथ (रामेश्वर), पूर्व में श्रीजगन्नाथ (उड़ीसा), पश्चिम में श्रीद्वारकानाथ (गुजरात) और मध्य में श्रीगोवर्धननाथ। अपने यहाँ पाँच सरोवर हैं—बिंदु सरोवर (सिद्धपुर), पंपा सरोवर (मैसूर), नारायण सरोवर (कच्छ-गुजरात), पुष्कर सरोवर (अजमेर-राजस्थान) और मानसरोवर (कैलाश पर्वत)। उज्जैन नगरी में पाँच विशेषताएँ हैं—श्मशान अर्थात् शिवजी के रमण करने का स्थान, 'उर्बर' अर्थात् मृत्यु के बाद मोक्ष, 'क्षेत्र' अर्थात् जहाँ सब पापों का विनाश होता है, 'पीठ' है अर्थात् हरसिद्धि देवी की पीठ है और जहाँ महाकाल का स्वयं निवास है। तुलसीबाबा ने श्रीराम सीताजी के विवाह के समय पाँच शब्दों का उल्लेख किया है। ये पाँच शब्द है—तंत्री, ताल, झांझ, नगाड़ा और तुरही। वे लिखते हैं—"पंच शब्द धुनि मंगल गाना/पट पांवड़े परहिं विधि नाना।" इसी प्रकार उन्होंने पाँच ध्वनियों का भी उल्लेख किया है। पाँच ध्वनियाँ हैं—वेद ध्वनि, वन्दि ध्वनि, जय ध्वनि, शंख ध्वनि और हुलू ध्वनि। कहा गया है कि पाँच मंत्रों—प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा का उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास (कौर) लेकर भोजन प्रारंभ करना चाहिए। तुलसीबाबा ने रामविवाह की पंगत में भोजन की इसी रीति का वर्णन किया है—"पंच कवल कर जेवन लागे/गारि गान सनि अति अनुरागे।" श्रीराम और उनके तीनों भाइयों के विवाह के पश्चात् जब विश्वामित्रजी अयोध्या से विदा होकर अपने आश्रम गए तो रास्ते में पाँच बातों की सराहना करते हुए गए—श्रीराम के रूप की, राजा दशरथ की भक्ति, चारों भाइयों का विवाह, सब के उत्साह और अयोध्या का आनंद। गोस्वामीजी ने लिखा है कि श्रीराम, नीति में निपुण, शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र, इन पाँच गुणों से संपन्न हैं।

तुलसीबाबा दोहावली में लिखते हैं कि पाँच स्थितियाँ दुखदायी होती हैं—दूसरे गाँव की खेती, राहगीर से आसक्ति, अधिक ब्याज की कर्जदारी, रास्ते पर खेत और अपने से बड़े से वैर। वे आगे लिखते हैं कि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मंत्री और सुंदर स्त्री ये पाँचों अगर अपने स्वामी को छोड़ दूसरे के प्रति आसक्त हों तो जाँच कर सही पाने पर इन्हें त्याग देना चाहिए। भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं कि जिसे श्रीराम और जानकीजी प्रिय न हों, उसे इन पाँच की तरह उसी प्रकार त्याग देना चाहिए, जैसे पह्लाद ने अपने पिता को, विभीषण ने अपने भाई को, भरतजी ने अपनी माता को, राजा बली ने अपने गुरु को और बृज वनिताओं ने अपने कंतों को। श्रीराम ने वनवास जाने के पूर्व सीताजी को इन पाँच अर्थात् पर्वतों की गुफाएँ—खोह (दरे), नदियाँ, नद और नाले तथा इन पाँच जानवरों—रीछ, बाघ, भेड़िया, सिंह और हाथी का भय बताकर वन में साथ जाने से रोका था। वे लिखते हैं—"कंदर, खोह, नदी, नद, नारे/अगम अगाध न जाहिं निहारे। भालु, बाघ, वृक, केहरि, नागा/करहिं नाद सुनि धीरज भागा।" श्रीराम, सीता और लक्ष्मण वनवास काल में प्रयागराज में भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुँचे तो पाँच प्रकार के संत जन उनसे मिलने आए—ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी। निषाद राज ने पाँच प्रकार से अपने मरण को श्रेष्ठ मानकर भरतजी और उनके साथ गए अवधवासियों को गंगा पार करने से रोकना चाहा था—युद्ध में मरण, गंगाजी का तट, श्रीराम का कार्य, क्षणभंगुर शरीर और श्रीराम के भाई भरतजी द्वारा मरण। भरतजी द्वारा राम को मनाने की स्थिति स्पष्ट होने पर निषादराज ने भरतजी और अवधवासियों के ठहरने की व्यवस्था पाँच जगह की थी घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों पर, बगीचों और जंगल में।

धर्म और संस्कृति में यम और नियम का बहुत महत्त्व है। यम में अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह शामिल हैं। नियम में भी पाँच बातें शामिल हैं—शौच (पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान। तुलसीबाबा ने लिखा है कि पाँच ग्रह टेढ़े चलते हैं—मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, लेकिन राहु इनका कुछ नहीं बिगाड़ पाता जबकि चंद्र, सूर्य ग्रह सीधे चलने पर भी राहु ग्रसित करता है। सीधे को सभी परेशान करते हैं। दोहावली में तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनको देश, काल, कर्ता, कर्म और वचन इन पाँच बातों का विचार नहीं है, वे सदा दरिद्री और पापी ही रहते हैं। पाँच गुणोंवाला व्यक्ति अर्थात् सामर्थ्यवान, बुद्धिमान, पुण्यात्मा, साधु और चतुर वहीं होता है, जो अपनी आय के हिसाब से ही व्यय करता है। गोस्वामीजी लिखते हैं कि कलयुग में पाँच बातें अर्थात् रसायन विद्या, अवाधित वरदान, सद्गुरु की प्राप्ति, सच्चे मित्र और देवता के प्रत्यक्ष दर्शन, पुस्तकों में ही मिलते हैं, साक्षत् नहीं दिखते। बुरा समय ही दुष्ट राजा के द्वारा प्रजा का नाश करता है। इसे सिद्ध करने के लिए तुलसीबाबा पाँच स्थितियों का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि काल (समय) ही गोलंदाज है, पृथ्वी ही तोप है, अनीति ही बारूद है, पाप ही पलीता है और राजा ही कठोर गोला है। काल (समय), सूर्य, राजा, प्रजा और बुद्धिमान पुरुष, ये पाँच किस प्रकार आचरण करते हैं, इसके लिए तुलसीबाबा कहते हैं कि काल, ईश्वर का रुख देखता है, सूर्य काल का अनुगमन करता है, राजा सूर्य का अनुसरण करता है, प्रजा राजा का अनुकरण करती है और बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धि का अनुसरण करते हैं। जिनमें ये पाँच गुण—सुंदर शरीर, सद्गुण, पर्याप्त धन, बड़ाई और धर्म में निष्ठा न होने पर भी जो झूठा अभिमान करते हैं, उनका जीवन विडंबना मात्र है।

आचार्य चाणक्य लिखते हैं कि मनुष्य के शरीर में आत्मा निवास

करती हैं, लेकिन इन पाँच की तरह दिखती नहीं है, जैसे फूल में गंध, तिलों में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी और गन्ने में मिठास नहीं दिखती है। चाणक्य नीति कहती है कि बैलगाड़ी से पाँच हाथ दूर रहना चाहिए। इन पाँच के बीच से नहीं गुजरना चाहिए—दो ब्राह्मणों के बीच से, अग्नि और ब्राह्मण के बीच से, पति-पत्नी के बीच से, स्वामी और सेवक के बीच से तथा हल और बैल के बीच से। बुद्धिमान व्यक्ति वही है, जो इन पाँच बातों को दूसरे से नहीं कहता है—धन के नशे को, मन के संताप को, गृहिणी के दोषों को, किसी धूर्त द्वारा ठगे जाने को तथा अपने अपमान को। कौवे से पाँच बातें सीखना चाहिए—इच्छित वस्तुओं का संग्रह, छिपकर चलना, स्त्री संभोग गुप्त स्थान पर करना, सभी कार्यों में सावधानी और किसी पर जल्दी विश्वास न करना। अपनी माता, गुरु पत्नी, पत्नी की माँ, राजा की पत्नी, मित्र की पत्नी इन्हें माता या माता समान मानना चाहिए। इसी प्रकार जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत संस्कार कराने वाला, विद्या देने वाला आचार्य, अन्न देने वाला तथा रक्षा करने वाला ये पाँच पिता बताए गए हैं। खेती पाँच के साथ ही उत्तम होती है। कहा गया है कि आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये गर्भ काल में ही निश्चित हो जाते हैं। चाणक्य नीति में ब्रह्मा की पाँच भूलें बताई गई हैं। उन्होंने सोने में सुगंध, ईख में फल, चंदन में फूल, विद्वान् को धनी और राजा को चिरंजीवी नहीं बनाया। विद्यार्थी के पाँच लक्षण बताए गए हैं। विद्यार्थी को कौवे जैसी चेष्टा, बगुले जैसा ध्यान, कुत्ते की तरह नींद, अल्पाहारी और गृहत्यागी होना चाहिए। कहा गया है कि भले ही पाँच परिस्थितियों में जीवन ज्ञापन कर लें, लेकिन भाई-बंधुओं के बीच निर्धन होकर न जिए। जंगल में वृक्ष का कोट रूपी घर अच्छा है, पके फल खाना, जल पीकर रहना, तिनकों पर सोना, पेड़ों की छाल पहनना, ये पाँच परिस्थितियाँ सह लेनी चाहिए, पर निर्धन होकर अपनों के बीच न रहे। चाणक्य ने लिखा है कि बावड़ी, कुआँ, तालाब, बगीचा और देवस्थान इन पाँच को तोड़ने वाला व्यक्ति नीच समझा जाना चाहिए। दोनों हाथों से दान न देने वाला, वेदशास्त्र सुनने का विरोधी, महात्माओं के दर्शनों से वंचित नेत्रवाला, तीर्थों से दूर रहने वाला, अन्याय से धनार्जन करनेवाला, ऐसे पाँच प्रकार के व्यक्ति निंदा के योग्य होते हैं। जो अधर्म पर चलता है, उसके लिए कहा गया है कि उसे दरिद्रता, रोग, दुख, बंधन और व्यसन ये पाँच दुख भोगना पड़ते हैं। दुनिया में ऐसे अनेक नर रत्न भी हैं, जिनमें दान, तपस्या, वीरता, नम्रता और ज्ञान ये पाँच गुण होते हैं। चाणक्य नीति कहती है कि धर्म, धन, अन्न, गुरु का उपदेश और गुणकारी औषधि, ये पाँच अच्छी प्रकार संग्रहित करके रखना चाहिए। नीति कहती है कि गंदे वस्त्र धारण करनेवाले, गंदे दाँतवाले, अधिक भोजन करनेवाले, कठोर वचन बोलनेवाले और सूर्योदय से सूर्यास्त तक सोने वाले इन पाँच को लक्ष्मी त्याग देती है। चाणक्य नीति दर्पण में कहा गया है कि जहाँ धनिक, विद्वान्, राजा, नदी और वैद्य नहीं हों उस स्थान पर एक दिन भी नहीं ठहरना चाहिए।

मनुस्मृति कहती है कि दूषित भावना वाले व्यक्ति के ये पाँच कार्य—वेदाध्ययन, त्याग, यज्ञ, नियम और तपस्या कभी सिद्ध नहीं होते हैं। आगे लिखा है कि जो मनुष्य इन पाँच क्रियाओं अर्थात् सुनकर, देखकर, स्पर्श कर, सूँघकर और भोगकर न हर्षित होता और न दुखी होता है, वही जितेंद्रिय है। इसी प्रकार धर्मज्ञ, कृतज्ञ, संतुष्टि, अनुरक्त, निश्चित कार्य को प्रारंभ करने वाला, इस प्रकार इन पाँच गुणों बाला छोटा मित्र भी प्रशंसा योग्य है। शुक्र नीति कहती है कि विद्या, शूरता, दक्षता और धैर्य, ये पाँच गुण मनुष्य के सहज मित्र होते हैं, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष इन्हीं से ही जीवन वृत्ति चलाते हैं। अथर्ववेद कहता है कि हे नववधू, तुम पाँच के लिए कल्याणकारी बनो—पुरुषों के लिए, गायों के लिए, सब स्थानों के लिए और हमारे लिए भी। अथर्ववेद में आगे लिखा है कि जिस प्रकार समर्थ सागर ने नदियों का सामाज्य उत्पन्न किया है, उसी प्रकार हे नववधु, तुम भी पति के घर जाकर पति, ससुर, सास, ननद और देवर इन पाँच पर सामाज्य करो। वाल्मीकी रामायण के बालकांड में महामुनि के आगमन पर राजा ने अपनी प्रसन्नता पाँच उदाहरण देकर व्यक्त की। वे कहते हैं कि जैसे अमृत की प्राप्ति से, जल विहीन स्थान पर वृष्टि से, निस्संतान व्यक्ति को पुत्र प्राप्ति से, नष्ट संपत्ति की पुन: प्राप्ति से तथा हर्ष के अतिरेक से जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, उसी प्रकार हे महामुनि आपके आगमन से प्रसन्नता हुई। मनुस्मृति में पाप मुक्ति के पाँच उपाय बताए हैं—पाप को कह देने से, पश्चात्ताप कर लेने से, तपस्या से, अध्ययन से और आपत्ति काल में दान देने से। अथर्ववेद में पाँच से शांति की प्रार्थना की गई है—पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यूलोक, औषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा सभी देवताओं से।

कहावतों और मुहावरों में भी पाँच ने अपना विशिष्ट स्थान बना रखा है। पंचों के लिए कहा गया है कि 'पाँच पंच से बड़ा कौन' अर्थात् पंच ही परमेश्वर होते हैं। 'पंचों के लड़का भूखों मरत' का अर्थ है कि कई बड़े आदमियों की संतान निकम्मी निकलती है। एक कहावत है कि 'पाँच बेटा राम के, तो एक न भयो काम के' अर्थात् अनेक बच्चे भी काम के नहीं होते हैं। 'पाँच जने मिल कीजे काजा, हारे जीते आय न लाजा' का मतलब है कि बहुमत के अनुसार कार्य करना चाहिए। एक अन्य कहावत है कि 'पाँच मरे, पर पाँच का पालनहारा न मरे' जिसका तात्पर्य है कि पोषण करनेवाले का जीवन महत्त्वपूर्ण होता है। 'पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में' इस कहावत का मतलब है—चारों ओर सुख-सुविधा और सब तरफ से लाभ। एक अन्य कहावत—पाँच उँगलियाँ बराबर नहीं होती हैं, का मतलब है कि सभी जगह सभी लोग एक से नहीं होते हैं। एक प्रचलित कहावत तो सभी जानते हैं कि 'पंच कहैं बिल्ली सो बिल्ली' अर्थात् पाँच का फैसला ही सही माना जाता है। लालच के संबंध में एक कहावत है कि 'पाँच पचासे ले गया, पाँच ले गया एक', इस कहावत का अर्थ है कि ब्याज के लालच में आदमी मूल भी खो बैठता है। जब कोई बड़ा-चढ़ाकर बात करता है तो उसके लिए कहावत हैं कि 'पाँच की सात लगाना'। एक कहावत—'पाँच सवारों में नाम लिखाना' का मतलब होता है, बड़े लोगों की श्रेणी में आना। 'तीन पाँच करना' का अर्थ है, टालमटोल करना। कोई बहकता है तो कहा जाता है कि 'सात पाँच मत करो।'

अपने यहाँ पंचशील के पाँच सिद्धांत भी चलाए गए, लेकिन अब कौन मानता है। पाँच की पंचायत बड़ी लंबी है, अत: पंचों को हाजिर-नाजिर करते हुए पाँच की पंचायत यहीं समाप्त करते हैं।

सा अ

पारिजात बँगला,
सर्वधर्म-बी-सेक्टर/२९८ सी,
कोलार रोड, भोपाल-४६२०४२ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२६५५३४८४

प्रतिबंधित साहित्य : विदेशों में जब्त रचनाएँ

• मदनलाल वर्मा 'क्रांत'

विदेशों में रह रहे भारतीयों ने भी हिंदुस्तान से प्रकाशित साहित्य के आदान-प्रदान की व्यवस्था कर रखी थी। यह साहित्य समुद्री जहाज से पार्सल द्वारा या प्रवासी भारतीयों के द्वारा चोरी-छिपे भेजा जाता था। व्यवस्था इस प्रकार रहती थी कि पुलिस और अन्य अधिकारियों की दृष्टि उस पर न पड़े। फिर भी कुछ न कुछ और कभी न कभी यह साहित्य पुलिस के हत्थे चढ़ ही जाता था। इस प्रकार के जब्तशुदा साहित्य की संख्या भी अच्छी खासी है, किंतु हम यहाँ पर कुछ प्रमुख पुस्तकों की ही चर्चा करेंगे।

यह बात प्राय: सभी इतिहासकारों ने स्वीकार की है कि स्वातंत्र्यवीर सावरकर का लिखा हुआ '१८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य समर' विदेशों में ज़ब्त हुआ। अभिलेखागार में प्रतिबंधित साहित्य की सूची में लंदन से १९०९ में प्रकाशित 'इंडियन वार ऑफ १८५७' के शीर्षक से ४५१ पृष्ठों की एक पुस्तक का उल्लेख मिलता है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लेखक के रूप में 'एन इंडियन नेशनलिस्ट' का नाम दिया गया है। यह नाम सावरकर ने जान-बूझकर दिया था। बाद में यह पुस्तक हिंदी, मराठी व अन्य भारतीय भाषाओं में छपी और जब्त हुई। भगतसिंह ने इसे पंजाबी में अनूदित करवाकर पंजाब से प्रकाशित करवाया था।

इसी प्रकार पूना से ही रघुनाथ भागवत द्वारा १९०९ में प्रकाशित ९३ पृष्ठों की एक पुस्तक 'वंदे मातरम्' का उल्लेख मिलता है। इसका दूसरा भाग १०० पृष्ठों का प्रकाशित हुआ था। भारतीय राष्ट्रवाद पर आधारित ये दोनों पुस्तकें विदेश में जब्त की गईं। अब इन्हें राष्ट्रीय अभिलेखागार में मँगा लिया गया है और वहाँ पर इन्हें अवाप्ति क्रमांक ३२-३४ तथा १६० के अंतर्गत देखा जा सकता है। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी तारकनाथ दास ने कलकत्ता की सरस्वती लाइब्रेरी से १९३१ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी—'इंडिया इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स'। लगभग तीन सौ पृष्ठों की यह पुस्तक विदेशों में रह रहे भारतीयों के बारे में लिखी गई थी। इसे भी ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में अवाप्ति क्रमांक १४८-४९ के अंतर्गत इसे आप देख सकते हैं। १९४२ में ज्योति पब्लिकेशन, बड़ौदा से प्रकाशित करके एक पुस्तक भेजी गई थी—'रिवोल्ट ऑफ १८५७'। मात्र ५२ पृष्ठों की यह पुस्तक भी जब्त कर ली गई। अभिलेखागार में अवाप्ति क्रमांक २५-२६ के अंतर्गत इसे सुरक्षित रखा हुआ है।

'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' द्वारा १ जनवरी, १९२५ को एक बुलेटिन प्रकाशित किया था। 'दि रेव्यूलशनरी' शीर्षक से प्रकाशित

जाने-माने लेखक। लालबहादुर शास्त्री के जीवन पर लिखी उनकी पहली कृति 'ललिता के आँसू' विश्व के १०० शीर्षस्थ प्रबंध काव्यों में शामिल हैं। क्रांतिकारियों पर उनका उल्लेखनीय कार्य है, इसके लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा 'सीनियर फेलोशिप' प्रदान की गई, इसके अलावा अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त।

४ पृष्ठों का यह बुलेटिन ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया। राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ, नई दिल्ली में इसे अवाप्ति क्रमांक १२२/२३ के अंतर्गत देखा जा सकता है। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध विचारक और क्रांतिकारी वीर मानवेंद्रनाथ राय ने जे.बी. टार्गेट, जिनेवा से कुछ पुस्तकें १९२२ में प्रकाशित करके भारत भेजी थीं, उन्हें भी जब्त कर लिया गया। इनके नाम हैं—'इंडिया इन ट्रांजीशन' (अवाप्ति क्रमांक १२५-२६), 'इंडियाज प्रॉब्लम ऐंड इट्स सोलूशन' (अवाप्ति क्रमांक १२८), 'व्हाट डू वी वांट' (अवाप्ति क्रमांक १२७)। ये सभी पुस्तकें राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित राखी हुई हैं और देखी जा सकती हैं।

लाला हरदयाल और उनकी गदर पार्टी से संबंधित कुछ इतिहास राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित हैं। अवाप्ति संख्या ७४ के अंतर्गत उनकी पुस्तिका 'सोशल कॉन्क्वेस्ट ऑफ द हिंदू रेस' में उनके विचार पढ़कर ही ब्रिटिश सरकार ने उसे जब्त कर लिया था। बाद में यह पुस्तक बड़े प्रयत्नपूर्वक भारत को ट्रांसफर की गई। हरदयाल का बहुत सारा साहित्य तो यहाँ आने ही नहीं दिया गया। ठीक उसी प्रकार जैसे रासबिहारी बोस का लिखा साहित्य जापान में सुरक्षित है, लाला हरदयाल का साहित्य जर्मनी और अमेरिका तथा इंग्लैंड में मिल जाएगा, भारत में नहीं। अगस्त १९२३ में पैसिफिक कोस्ट हिंदुस्तानी एसोसिएशन, सैन फ्रांसिस्को (अमेरिका) से प्रकाशित मात्र ८ पृष्ठों की एक पुस्तिका, जिसका नाम था—'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इंडिया', महज इस कारण जब्त कर ली गई, क्योंकि ब्रिटिश सरकार को उसमें 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन' के संविधान की गंध सी अनुभव हुई और उसने उसे अपने अभिलेख में सुरक्षित कर लिया। राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में अवाप्ति क्रमांक १५० के अंतर्गत इसका उल्लेख तो मिला, किंतु मुझे यह पुस्तक देखने को नहीं मिली।

शचींद्रनाथ सान्याल के छोटे भाई जितेंद्रनाथ सान्याल ने भगतसिंह की आत्मकथा 'सरदार भगतसिंह' के नाम से अंग्रेजी में इलाहाबाद से

प्रकाशित करके बाहर भेजने का प्रयास किया था। उसे भी ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया। प्रतिबंधित साहित्य की सूची में अवाप्ति क्रमांक ९६९ के अंतर्गत इस पुस्तक का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार पंडित विद्याभास्कर शुक्ल के छद्म नाम से युगांतर पुस्तक भंडार, इलाहाबाद से सन् १९३० में प्रकाशित पुस्तक 'आजादी के दीवाने' के बारे में जब्ती का आदेश भी मुझे देखने को मिला। इस पुस्तक में प्रकाशित अधिकांश लेख रामप्रसाद 'बिस्मिल' की अप्रकाशित पुस्तक 'क्रांतिकारी जीवन' से लिये गए लगते हैं। ब्रिटिश सरकार ने इसी संदेह में इसे जब्त करने के निर्देश दिए थे। मूल पुस्तक अवाप्ति क्रमांक १९९-२०० तथा जब्ती के आदेश अवाप्ति क्रमांक १८४२-४३ के अंतर्गत अभिलेखागार में देखे जा सकते हैं। क्रिप्स मिशन को लेकर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने स्थान-स्थान पर ओजस्वी व्याख्यान दिए थे। इन भाषणों का संग्रह मनोरंजन एन. भौमिक ने नादिया (बंगाल) से सन् १९४२ में 'फेज ऑफ इंडियन स्ट्रगल' के नाम से प्रकाशित करके विदेशों में भेजा था, जिसे ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। यह पुस्तक भी राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में जब्तशुदा अंग्रेजी पुस्तकों के अवाप्ति क्रमांक १०६ के अंतर्गत उपलब्ध है।

होम पॉलिटिकल (डिपॉजिट) फाइल संख्या ४८ (मार्च १९१६) में गुप्तचर विभाग के डायरेक्टर द्वारा २६ जनवरी, १९१५ को जारी रिपोर्ट के अनुसार गदर पार्टी द्वारा उर्दू में प्रकाशित पुस्तिका 'जिहाद' (धर्मयुद्ध) की प्रतियों के पंजाब और उत्तरी भारत में पहुँचने पर रोक लगाने की सिफारिश की गई थी। इसी प्रकार एक और उर्दू पुस्तिका 'ऐलान-ए-जंग' (युद्ध की घोषणा) मेरठ में जब्त की गई। यह प्रवासी भारतीय सिक्खों द्वारा लाई गई थी। इसे गदर पार्टी के तत्त्वावधान में अमेरिका से प्रकाशित किया गया था। उपरोक्त फाइल के पृष्ठ ४ पर दिए गए विवरण के अनुसार सी कस्टम्स ऐक्ट १८७८ की धारा १९ के तहत लाला हरदयाल द्वारा लिखित 'दि न्यू एरा' जो उर्दू और गुरुमुखी में प्रकाशित करके गदर पार्टी, सैन फांसिस्को (अमेरिका) से हिंदुस्तान भेजी जा रही थी, जब्त करने के आदेश दिए गए थे।

होम पॉलिटिकल (डिपॉजिट) फाइल सं. ३५ (अप्रैल, १९१९) में दिए गए विवरण के अनुसार बी.डब्ल्यू. ह्यूब्श, न्यूयॉर्क द्वारा प्रकाशित लाला लाजपतराय की अंग्रेजी पुस्तक 'इंग्लैंड्स डेट टू इंडिया' को सरकारी नोटीफिकेशन संख्या ३८९ डी. दिनांक १२ जनवरी १९१८ के अनुसार भारत आने से रोका गया और उसे विदेश में ही जब्त कर लिया गया। यह पुस्तक हमें अभिलेखागार में भी देखने को नहीं मिली। होम पॉलिटिकल (डिपॉजिट) फाइल संख्या ३४ (अप्रैल, १९१९) में दी गई १९१७ की घटनाओं की डायरी के अनुसार गदर प्रेस, सैन फ्रांसिस्को, (अमेरिका) द्वारा प्रकाशित 'युगांतर' की जब्ती के आदेश ११ अगस्त, १९१७ को सी कस्टम्स ऐक्ट १८७८ की धारा १९ के तहत जारी किए गए और इसी ऐक्ट के तहत २४ नवंबर, १९१७ को लाला लाजपतराय द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तिका 'ऐन ओपेन लेटर' (एक खुला खत) जब्त कर ली गई। इसे न्यूयॉर्क से बी.डब्ल्यू. ह्यूब्श ने प्रकाशित किया था। यह खुला खत लाला लाजपतराय ने ग्रेट ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री डेविड लायड जॉर्ज को लिखा था। इसी प्रकार २९ दिसंबर, १९१७ को इंडियन नेशनलिस्ट कमेटी (यूरोपियन सेंटर) द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'सेल्फ गवर्नमेंट फॉर इंडिया' की जब्ती के आदेश दिए गए।

होम पॉलिटिकल फाइल संख्या ४८-VI-३१ (गोपनीय) में पृष्ठ संख्या ४९ पर दिए गए विवरण के अनुसार एच.एस.आर.ए. (हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन) द्वारा प्रकाशित पैंफलेट 'काल टू द मदर', रामप्रसाद द्वारा लिखित पुस्तक 'कत्ले-बेगुनाह उर्फ शहीदाने-वतन' (सनातन धर्म स्टीम प्रेस, हॉस्पिटल रोड, लाहौर द्वारा प्रकाशित), हिंदी पत्रिका 'युवक' (भाग-२, संख्या ४), 'भारत की राष्ट्रीय गजलें' (प्रथम भाग) 'जख्मी-जिगर', 'गांधीजी की ग्यारह शर्तें', 'प्यारा भगतसिंह', 'विलाप' तथा 'एन अपील टू द पब्लिक' (सुखदेव राजगुरु भगतसिंह मेमोरियल कमेटी, लाहौर द्वारा प्रकाशित) आदि पुस्तकें जब्त की गईं। इसी प्रकार होम डिपार्टमेंट (पब्लिक डिपॉजिट) फाइल सं. ४५ (अगस्त, १९१५) में दिए गए एक विवरण के अनुसार लाला लाजपतराय द्वारा लिखित पुस्तक 'आर्य समाज' को तत्काल भारत से मँगाकर इंग्लैंड भेजने के बारे में पत्राचार किया गया था। उसके अनुसार थैकर स्पिंक ऐंड कंपनी, पोस्ट बॉक्स ५४, कलकत्ता से इस पुस्तक का विवरण सहित पुस्तक भेजी गई। पब्लिशर्स द्वारा पुस्तक के बारे में उपलब्ध कराए गए संक्षिप्त ब्रोशर के अनुसार इस पुस्तक का मूल्य ढाई रुपए था। लालाजी की इस अंग्रेजी पुस्तक की भूमिका प्रो. सिडनी वेब द्वारा लिखी गई थी।

मैं जब इस प्रकार की प्रतिबंधित पुस्तकों के बारे में फाइलों से जानकारी जुटा रहा था तो उस समय मुझे एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण फाइल हाथ लगी। शोधार्थियों का ध्यान मैं उस ओर भी अवश्य ही ले जाना चाहूँगा। होम डिपार्टमेंट पॉलिटिकल (आई) सेक्शन, फाइल संख्या ४१/७/४६ (पॉलिटिकल इंटेलिजेंस) १९४६ के अंतर्गत अर्धशासकीय पत्र दिया गया है। उसका हिंदी रूपांतर मैं यहाँ पर दे रहा हूँ :

डी ओ लेटर सं. ७९४१-डी/४६ पॉलिटिकल (आई) होम डिपार्टमेंट, नई दिल्ली, ९ अगस्त, १९४६

वायसराय हाउस से पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' के प्रतिबंध के बारे में मुझसे जानकारी तत्काल माँगी गई है। उस संबंध में मुझे यह निवेदन करना है कि वाणिज्य भाग के नोटिफिकेशन संख्या ९१-सी डब्लू (आई) ४४ दिनांक २९ जनवरी, १९४४, जो २६ अगस्त, १९४४ को दुबारा जारी किया गया था, के तहत इस पुस्तक पर लगाया गया प्रतिबंध एक अन्य नोटिफिकेशन संख्या ९१-सी डब्ल्यू (आई) ४५ दिनांक ३ नवंबर, १९४५ के द्वारा हटा दिया गया था। यह हो सकता है कि कुछ डाकघरों की जानकारी में यह नोटिफिकेशन न आया हो।

प्रति : आई. डी. स्कॉट आई.सी.एस.
माननीय वायसराय के डिप्टी प्राइवेट सेक्रेटरी
भवदीय
जी.वी. वेडेकर, डिप्टी सेक्रेटरी, होम डिपार्टमेंट

उपरोक्त पत्र जी.वी. वेडेकर द्वारा अपने हाथ से लिखकर भेजा गया था। अंग्रेजी जमाने में इस प्रकार के पत्र अतिविशिष्ट गोपनीय संदेश भेजने

के उद्देश्य से ही लिखे जाते थे, ताकि किसी भी प्रकार यह सूचना लीक न हो। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब यह पत्र मुझे उस फाइल में यथावत् लगा हुआ मिल गया। मैंने इस पत्र को फोटोस्टेट कराकर इस पुस्तक के अंत में दिया है। पाठक चाहें तो उसे देख सकते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि ब्रिटिश सरकार पंडित जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी के प्रति कितनी उदारता बरतती थी। सुंदरलाल द्वारा लिखित 'भारत में अंग्रेजी राज' की भूमिका में सुंदरलाल ने स्वयं लिखा है कि जब उन्होंने इस पुस्तक के जब्त किए जाने की सूचना गांधीजी को पत्र द्वारा दी तो उन्होंने पोस्ट कार्ड लिखकर सुंदरलाल को सूचित किया—"मैंने वायसराय से बात की ली है, प्रतिबंध तो उसे हटाना ही पड़ेगा।" इतनी कड़ी बात, वह भी वायसराय के बारे में, गांधीजी द्वारा लिखने के निहित अर्थ समझे जा सकते हैं कि दोनों (गांधीजी ओर ब्रिटिश वायसराय) में कितनी जबरदस्त साँठ-गाँठ थी। इसी साँठ-गाँठ के तहत बेचारे राष्ट्रभक्त फाँसी चढ़ते रहे। उनके साहित्य को जब्त किया जाता रहा और गांधी गुट के लोगों की पुस्तकों पर से प्रतिबंध हटाया जाता रहा। ऐसा इसलिए किया गया, ताकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् पाठकों को केवल वही जानकारी मिले, जो सत्ताधारी पार्टी चाहे। अन्य किसी क्रांतिकारी का कोई दस्तावेज उपलब्ध ही न हो। अभी भी इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में अकूत सामग्री भरी पड़ी है, जो भारत लाई ही नहीं गई। शायद कभी भविष्य में ऐसा हो सके।

ई-५५, बीटा-१
ग्रेटर नोएडा-२०१३१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८११८५१४७७

कविता

रक्षाबंधन

• रोहित प्रसाद पथिक

मैंने पूछा ईश्वर से—
एक बहन तो हो मेरे पास
जिसे मैं पुचकारूँ, प्यार करूँ, खुब बातें करूँ
इस समाज के अंदरूनी जख्मों के बारें में
तो कभी बलात्कार, उत्पीड़न, भर्त्सना आदि के चीखों में
दब गई उन बहनों के बारे में जो कभी मेरी बहन थी ही नहीं
पर हमेशा वह मेरी बहन तुमसे भी पहले होंगी।

मैं उनसे ही राखी बँधवाना चाहता हूँ
रक्षा करना चाहता हूँ उनके आत्मा की
जो कई दशक पहले दफन हो गई है किसी खेत के अंदर
आज भी चित्कार अनसुनी करके कई भाई सोए हुए हैं,
और क्या आज भी सोए ही रहेंगे··· ?
उठो, बाहर निकलो, सड़क के किनारे,
मंदिर के बाहर, स्टेशनों पर
बैठी हुई है एक भारत माता, बहन और माँ के रूप में

ढूँढ़कर बातें करों उनसे
कलाई पर बँधवा लो लाल धागा
वचन दे दो तुम उन्हें
कि 'मैं तुम्हारे खयालों में भी दर्द को दस्तक देने नहीं दूँगा।
अब से मैं तुम्हारा भाई और तुम मेरी बहन'

उस बहन को स्वार्थ स्वरूप कुछ उपहार नहीं चाहिए
उसे तो बस एक अंग रक्षक चाहिए
जो एक भाई, पति व पुत्र दे सकता है।

अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ, पुस्तक समीक्षा व रेखाचित्रों का निरंतर प्रकाशन। एक काव्य संग्रह 'ईश्वर को मरते देखा है' हाल ही में प्रकाशित। संप्रति अनुगूँज अर्धवार्षिक साहित्यिक पत्रिका के संपादक।

मन मैं इस सोच को रखकर
आज निकल गया घर के बाहर
मिला उन बहनों से और जाना उनकी व्यथा
हृदय से खून चू पड़ा मेरे
आँखों में लाल अँगारों ने जन्म लिया
और मैं जब लौटा तो
भारत माता के रूप में अनगिनत स्त्रियाँ
सड़क पर रो रही थीं,
गौर से सुना तो वह बहनें थी मेरी।

आज के दिन कुछ उपहार भेंट दूँ क्या ?
मैंने स्वयं को ही भेंट कर दिया उनके चरणों में
और कभी लौटा ही नहीं अपने घर!

के.एस. रोड रेल पार
डीपू पाडा क्वार्टर नंबर (७४१/सी),
आसनसोल-७१३३०२ (पश्चिम बंगाल)
दूरभाष : ८१०१३०३४३४

मानकर दाजी

• सुमन चौरे

छोटी कक्षा में गुरुजी ने सिखाया था, "कहीं भी, कुछ भी, लिखा हुआ दिखाई दे, तो उसे हिज्जे करके पढ़ो, भाषा सुधरेगी।" फिर तो यह सीख आदत सी बन गई। अभी भी बाजार से लाया सामान खोलती हूँ, तो पुड़िया के कागज में क्या लिखा है, उसे पढ़ने लगती हूँ। हाल ही में सामान आया, एक बड़ी पुड़िया खोली, पुड़िया वाला कागज एक अखबार का हिस्सा था। उसमें एक बड़े चित्र के साथ एक खबर छपी थी। वह चित्र नीली वर्दी यानी नीला कुर्ता, नीली टोपी में लोगों की जमीन पर बैठी सभा का था। मैं उसे पढ़ने लगी। पता लगा, कोटवारों और मानकरों का अपनी माँगों को लेकर एक प्रदर्शन हो रहा था। सहसा मैं उस चित्र को गौर से देखने लगी कि क्या कहीं मेरा मानकर दाजी भी है इसमें? मेरा मानकर दाजी, अरे! वह तो बीते जमाने की बात हो गई।

'मानकर' शब्द से आज की पीढ़ी परिचित होगी क्या! किंतु मेरे मन में तो अभी भी अपने मानकर दाजी की एक आदर्श छवि विराजित है। कर्तव्यनिष्ठा, देशभक्ति, गाँवभक्ति और स्वामिभक्ति वाले स्वाभिमानी मानकर दाजी को भगवान् ने न जाने किस मिट्टी से गढ़ा था, जहाँ मानकर दाजी में मानवीय गुण तो सभी भर दिए थे, किंतु लगता है कि शारीरिक रचना गढ़ते-गढ़ते भगवान् के पास माटी कुछ कम पड़ गई। उसका एक हाथ आधा और एक पैर आधा ही रह गया। मानकर दाजी याद आता है, उसका एक आधा हाथ, यानी कोहनी के नीचे से एकदम छोटा और अंदर की तरफ मुड़ा हुआ तथा एक पैर घुटने के नीचे से एकदम छोटा और अंदर की तरफ आड़ा मुड़ा हुआ ही रह गया। हमारे छोटे आजा, मुंशी दाजी अपने दैनिक कार्यों और पूजा-पाठ से निवृत्त होकर, सूरज की पहली किरण के साथ ही ओटले पर बैठ जाते थे गाँव के लोगों की खैर-खबर लेने के लिए। फिर वहाँ से निकलते किसी एक व्यक्ति से कहते, "जरा मानकर को हाक तो पाड़ऽ।" और हाक पड़ते ही पलभर में अपनी लाकड़ी टेकते-टेकते खट-खटकर मानकर हाजिर हो जाता और 'पाँय लागूँ मालिक' शब्दों से अभिवादन करता। "खुश रहो", कहकर दाजी पूछते थे, "भाई मानकर, आधी रात गाँव के दक्षिण द्वार पर कुतरे खूब भूँक रहे थे, कईं अंदेशो?" मानकर दाजी डेढ़ हाथ जोड़कर कहता था, "मालिक एक-लो कुतरो भूकऽ की कान सरया ल।" (अर्थात् कुत्ता भौंककर सबको सावधान करे कि आने वाले खतरे की टोह ले।) मालिक गाँव बढ़ रहा है। फिर भी मैं तो पूरे गाँव को 'जागते रहो' की चेतावनी देता ही रहता हूँ रात भर। दाजी कहते थे, "मानकर, तू तो भलो मानुष छेऽ, पर लोग भला नी हाँई रेऽ।" मानकर दाजी अपने लंबे डंडे के सहारे वहीं खड़ा रहता था।

सुपरिचित लेखिका। 'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' पुस्तक एवं अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक और शोध-पत्रिकाओं में लेख एवं संस्मरण प्रकाशित। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से लोक-संस्कृति, कविताओं, बालकथाओं का प्रसारण। म.प्र. लेखक संघ, म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति एवं हिंदी भवन साहित अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मानकर दाजी में क्या ताकत थी, दैवी शक्ति ही थी क्या? आज ऐसी शारीरिक संरचना वाले लोग तो अपने आपको मोहताज समझते हैं। एक हाथ पूरा, एक हाथ कोहनी के पास से छोटा और अंदर की ओर मुड़ा हुआ लटकता सा। हाथ का पंजा बंद फूल जैसा, कली के समान बंद। एक पैर पूरा तो दूसरा पैर घुटने के पास से अंदर की ओर आड़ा मुड़ा हुआ। इतनी सारी शारीरिक सीमितताओं के साथ उसके पास काम की असीमित जिम्मेदारियाँ। पूरा गाँव चैन से सोता था और मानकर दाजी एक लंबे डंडे पर आधा पैर फँसाकर, एक पैर से पूरे गाँव की रखवाली करता था। चाँदनी रात हो तो ठीक, नहीं तो वह अँधेरी रात में एक हाथ में सहारे के लिए डंडा लिये और दूसरे हाथ में छोटा सा सरकारी कंदील फँसाकर पूरे गाँव की घूम-घूमकर चौकसी करता था। गाँव के इस छोर से उस छोर तक उसकी तेज पुकार सुनाई देती थी—"जागता रह्यजो रेऽ लोग नंऽ होणी···।"

पाछली रात का तारा उगता, तब तक मानकर दाजी पूरे गाँव में

इधर से उधर और उधर से इधर लगातार दौड़ता रहता था। मुँह झाकळा होते ही वह अपने घर के ओसरे में पड़ी खाट पर अपने शरीर की गठरी बाँधकर सो जाता था।

मानकर दाजी पूरे गाँव में बड़े मान-सम्मान के साथ रहता था। उसका अपनी सरकारी नौकरी का रुतबा और नगद सात रुपए महीने की तनख्वाह। वह मानता था कि भील जनजाति में वह सरकारी नौकरी पाने वाला पहला व्यक्ति था। इसलिए आसपास के भील समुदाय में भी उसका बड़ा मान था। दाजी की दो पत्नियाँ थीं। एक, जिनको हम बड़ी मानकर माँय कहते थे, वह बड़ी ही सुंदर गोरी-नारी थी। भील होने के बाद भी वह किसी राजरानी से कम नहीं दिखती थी। छोटी मानकरेण माँय बिल्कुल विपरीत थी। उसके नाक-नक्श भीलों की ही तरह थे और वह पूरी भीलनी माँय ही लगती थी। बड़ी मानकरेण माँय बड़े ठस्से से रहती थी। वह कान में सोने के सुंदर और भारी टोडर पहनती थी। मानकर दाजी का घर कच्चा था। कवेलू की खपरैल और माटी की दीवालों वाला ही था। उस एक कमरे में चूल्हे के पास ही तोर-काठी की एक कच्ची दीवाल थी। उसके एक तरफ बड़ी मानकरेण माँय का चूल्हा था और दूसरी तरफ छोटी मानकरेण माँय का चूल्हा था। मानकर दाजी एक जोर का रोटा छोटी मानकरेण माँय के साथ खाता था और दूसरी जोर का रोटा बड़ी मानकरेण माँय के साथ खाता था। दोनों मानकरेण माँय के एक-एक बेटे थे। जैसे कि राजकाज में बड़े पुत्र को ही गद्दी सौंपी जाती थी, ऐसे ही मानकर दाजी ने बड़ी मानकरेण माँय से जन्मे बेटे 'नैन्या' को अपना नीला कुर्ता, नीली टोपी और डंडा सौंप दिया था। उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया था।

नैन्या मानकर भले ही नीली वर्दी पहन लेता था, किंतु उसकी पूरी जिम्मेदारी का काम मानकर दाजी ही करता था। मानकर दाजी को अपने गाँव से बड़ा प्रेम था। काँजी हौस (हाउस) के जानवर की नीलामी की सूचना भी मानकर दाजी ही डोंडी पीटकर गाँव को देता था—"चलो रेऽ भाई नंऽ होणी, ढोर लिल्लाम हुई रह्याज, न्याय पंचात का समोर पौयचो।"

वह दिन निकलते-निकलते न्याय पंचायत के सामने मैदान में काँजी हौस के पशु लाकर नीलामी के लिए बाँध देता था। मानकर दाजी अपनी नीली वर्दी और अद्धी धोती पहनकर लकड़ी टेक-टेककर इतना दौड़ता था, जैसे सब कुछ जवाबदारी उसी की रहती थी।

न्याय पंचायत के ओटले पर लोहे की टीन की कुरसियाँ लग जाती थीं। पटेल दाजी, मुंशी दाजी और न्याय पंचायत के सभी सदस्य उपस्थित रहते थे। कभी मानकर दाजी उनका रजिस्टर उठाता था, और कभी लोगों की भीड़ को काबू में करता था। बोली शुरू होती तो वह अधिकारी और खरीदारों के बीच बोली लगाता—"ये गाय के पाँच रुपया, पाँच रुपया पाँच रुपया, बोलें भाई। ये गाय जाती है··· सात रुपया, सात रुपया, सात रुपया···।" इस तरह वह बड़ी तेजी से जबरदस्त बुलंद आवाज में बोली लगाता था। जबकि शारीरिक संरचना से तो वह दुबले-पतले डील-डौल का तो था ही, कपड़े उतारे तो हड्डियाँ गिना जायँ, किंतु उसकी फुरती देखते ही बनती थी। ऐसे ही सप्ताह में एक दिन और मानकर दाजी की छवि दिखाई देती थी। बुधवार के दिन, जब न्याय पंचायत का न्याय कार्य होता था, तब भी वह ऐसे ही जोश-खरोश से हाँक लगाता था—"फरियादी कचरू वासावळ हाजिर हो, हाजिर हो, हाजिर हो···" दूर से यह आवाज सबको खींचकर ले आती थी।

मानकर दाजी जब तेज आवाज देता था, तो उसके दोनों गाल फूल जाते थे। हम लोग उसके गालों को देखकर खूब हँसते थे। क्योंकि सामान्य स्थिति में उसके गाल अंदर की ओर से चिपके और पिचके रहते थे और बाहर से कटोरी जैसे गहरे दीखते थे। हम बच्चों के लिए मानकर दाजी के गालों का फूलना-पिचकना एक अच्छा मनोरंजन जैसा ही था।

न्याय पंचायत की काररवाई समाप्त होते ही, मानकर दाजी दौड़-दौड़कर सारी काररवाई की रिपोर्ट पर अँगूठा लगवाता, हस्ताक्षर करवाता और जो काम होता, उसे पूरा करके, यहाँ की रिपोर्ट बैलगाड़ी में बैठकर धनगाँव थाना भी पहुँचा देता था।

मानकर दाजी का हमारे घर आना-जाना तो सरकारी महकमे की वजह से था ही, किंतु घर के भीतर के काम भी मानकर दाजी निपटा देता था। दोनों ही मानकरेण माँय खेत-खलिहान तो नहीं जाती थीं, किंतु छोटी मानकरेण माँय हमारे घर के अनाज के दलने-पीसने, कूटने-फटकने आदि सब कामों के साथ ही पानी का काम भी कर देती थी। और बड़ी मानकरेण माँय हमारे घर के कपड़े-लत्ते, बरतन वगैरह का काम करती थी।

जब कभी बड़ी मानकरेण माँय रूठ जाती या मानकर दाजी से कहासुनी हो जाती थी, तब बिचारा मानकर दाजी गश्त देने जाने से पहले रात में आकर स्वयं ही बरतन माँज जाता था। डेढ़ हाथ का मानकर दाजी इतनी सफाई से पीतल और काँसे के बरतन माँजता था कि सूखे बरतन चमचमाने लगते थे। पहले हमारे घरों में बरतन माँजकर धोए नहीं जाते थे, बल्कि कंडे की सूखी राख से घिसकर सूखे बरतन माँजे जाते थे। इन्हें बाद में कपड़े से पोंछ लेते थे। किंतु मानकर दाजी बरतन माँजकर, फूँक मार-मारकर सूखी राख निकालकर बरतन ऐसे चमका देता था, जैसे ब्रासो से मोठा भाई अपने बिल्ले चमका लेता था।

हम अपने बाल सुलभ मन से उनसे पूछते थे—"मानकर दाजी, तुम भगवान् पर गुस्सा नहीं करते कि सबको स्वस्थ शरीर दिया और तुम में क्यों कमी रख दी।" इसके उत्तर में वह कहता, "बेटी, कई बुरे करम किए होएँगे, तो यह कमी रख दी भगवान् ने, पर कोई अच्छे करम-वरम भी किए होएँगे, तभी तो भगवान् ने डेढ़-डेढ़ हाथ-पैर साबूत दिए। यदि उनकी किरपा नहीं होती और चारों ऐसे आधे होते तो क्या करता।" वह कहते थे, कि भगवान् ने सरकारी नौकरी, वह भी 'मान' मतलब आदर इज्जत कर 'मानकर' दी, सभी मेरा मान करते हैं। हर महीने नगद पगार मिल जाती है।

आम परिभाषा में तो ऐसे लोगों को सकल विकलांग मानते हैं; किंतु मानकर दाजी इसे भी ईश्वर की कृपा बताकर अपने को धन्य मानता है, सकलांग मानता है, सबको अच्छे काम करने की नसीहत भी देता है। मैं तबकी बात कर रही हूँ, जब विकलांग और दिव्यांग शब्दों की परिभाषा नहीं बनी थी। न ही नौकरी में आरक्षण था। वह तो मानकर दाजी के साहस को देखकर स्वतंत्रता पूर्व से ही उसे यह नौकरी मिली थी।

मानकर दाजी शुद्ध आचरण का एक व्यावहारिक व्यक्ति था। वह कहता था, "अपनी जिम्मेदारी को मन से निभाओ। भगवान् की बहुत आँखें हैं।" इसका कितना सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानकर दाजी का निजी जीवन था। मानकर दाजी को रात में गश्त देने के लिए सरकार से कंदील और घासलेट का तेल मिलता था। अगर उजेली रात होती, तो मानकर दाजी कंदील नहीं जलाता था। अँधेरी रात में घर से निकलते ही कंदील जलाता था और घर के द्वार पर आते ही बत्ती बुझा देता था। सरकारी घासलेट के तेल की एक भी बूँद वह अपने घर के काम के लिए खर्च नहीं करता था। जहाँ तक वर्दी की बात है, तो दाजी को सालभर में दो जोड़ नीले कुर्ते, नीले पायजामे और नीली टोपियाँ मिलती थीं। दाजी अपनी ड्यूटी समय में ही यह वर्दी पहना करता था। घर आते ही वह उन्हें उतारकर खादी का कुर्ता और धोती बाँध लेता था। बाँध लेना इसलिए कहा कि अपने शरीर की बनावट के कारण वह पूरी धोती सलीके से नहीं पहन पाता था। हमारे दादा खादी का अपना पुराना कुर्ता और धोती उसे दे देते थे। वे सर्दियों की शुरुआत में एक गलाबंद कोट भी दाजी को देते थे। वह टोपी भी तुरंत खूँटी पर टाँग देता था। उसे सदा लगता रहता था, कहीं यह घिस न जाए, सरकारी वर्दी जो है। सरकारी नौकरी में कर्तव्यनिष्ठा और देश हित में सूक्ष्म चिंतन मानकर दाजी की रंगों में भरा था।

रात में गाँव की चौपाल पर भजन, कथा-प्रवचन आदि होते रहते थे। भगवान् में आस्था रखने वाला मानकर दाजी अपनी ड्यूटी छोड़कर कभी भी इनमें नहीं बैठता था। ऐसे आयोजनों में कभी कोई वरिष्ठजन कहता कि "मानकर तू चाल्याजऽ करजऽ रेऽ, घड़ी दुई घड़ी बठी नऽ भगवान् को नाव तो सुण लिया कर।" उत्तर में मानकर दाजी चलते-चलते कह देता था, "भगवान् का नाम सुना है, तभी तो चलते-चलते सबको 'जगता रह्यजो लोगऽ नऽ होणी' कहता हूँ।"

अनपढ़ मानकर दाजी इतनी गूढ़ बात कर लेता था और उसे अपने आचरण में उतार लेता था। उसकी कथनी करनी में जरा भी अंतर नहीं था। सच्चे में मेरे कालमुखी गाँव की माटी ने कैसे-कैसे गृहस्थ संतों को पैदा किया है। मेरी साढ़े तीन सौ पृष्ठों से अधिक पृष्ठोंवाली पुस्तक 'मोहि ब्रज बिसरत नाही' में मेरे गाँव के ऐसे ही अनेक ग्रामीणों, संतों और साध्वियों के जीवन शामिल हैं। कहाँ मिलेंगे ऐसे देशभक्त, ऐसा आचरण भी तो देशभक्ति की मिसाल है। कोई बाबू काका, तो कोई दामा दाजी, कई साधू काका तो माँगीलाल भाई। सभी लोगों का आचरण 'निर्मल जस, जस नीर सुभावा' जल सी प्रवृत्ति का सबमें मिल जाने का। सबको समा लेने का था। यहाँ निमाड़ की प्रकृति का उल्लेख कर देती हूँ। निमाड़ में आत्मीयजन हो तो उसके साथ त-तूकारा ही बात की जाती है। जैसे कि माता-पिता को भी तू ही संबोधित किया जाता है। ऐसे ही मानकर दाजी से भी हमारा वैसा ही आत्मीय भाव भाषा का भी रहा।

सा.अ.

१३, समर्थ परिसर, ई-८ एक्सटेंशन,
बवाड़िया कला, पो.-त्रिलंगा,
निकट एक्सटॉल कॉलेज, भोपाल-४०००३९ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८१९५४९९८४

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC–BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

आजादी के तराने

• सं. राजेंद्र पटोरिया

गूँज आजादी की
• उदय शंकर भट्ट

ओ दानी, भर दो आग अमर,
मेरे मन में आजादी की।
यह मुक्त बने, अति मुक्त अवनि
सब ओर गूँज आजादी की।
गरजे बादल से आजादी,
बिजली में स्वर आजादी का।
कण-कण से देश पुकार उठे,
स्वर-तार उठे आजादी का।
लोथों पर लोथ गिरें कट-कट,
फिर भी धुनि उठे एक यही—
'हम आजादी के दीवाने
परतंत्र रहेंगे कभी नहीं!
है प्राण अमर बलिदानी के,
रे नहीं छीनता काल उन्हें,
वे अजर, अमर, उन्मुक्त, अचल,
इतिहास सजेगा माल उन्हें।

कौम पर लुटाए जा
• कप्तान रामसिंह

कदम-कदम बढ़ाए जा
खुशी के गीत गाए जा,
यह जिंदगी है कौम की
तू कौम पर लुटाए जा।
तू शेरे-हिंद आगे बढ़
मरने से फिर भी तू न डर,
उड़ाके दुश्मनों का सर
जोशे-वतन बढ़ाए जा।
कदम-कदम···
तेरी हिम्मत बढ़ती रहे
खुदा तेरी सुनता रहे,
जो सामने तेरे अड़े
तू खाक में मिलाए जा।
कदम-कदम···
चलो देहली पुकार के
कौमी निशान सँभाल के,
लाल किले पे गाड़ के
लहराए जा लहराए जा।
कदम-कदम बढ़ाए जा
खुशी के गीत गाए जा,
यह जिंदगी है कौम की
तू कौम पर लुटाए जा।

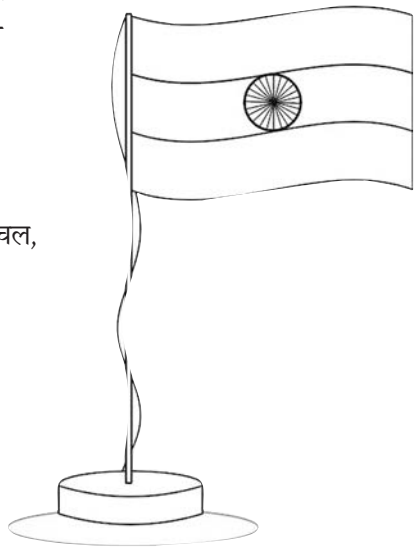

आया प्रभात
गई रात आया प्रभात, हम निद्रा से जागे,
जय-जय जननी जन्मभूमि, हम बालक हैं तेरे।
गई रात···
नवयुग आया जीवन लाया, दया का घन अंबर पे छाया,
विजय भई सत रन की भीतर, शत्रु उर भागे।
गई रात···
पाप गुलामी के बंधन से, छूटेंगे हम भारतवासी,
तन-मन-धन अरपन चरनन में, माता के आगे।
गई रात···
चरन कमल पर बल-बल जाऊँ, गांधी, नेहरू और मौलाना,
सुभाष माता की गोदी में, अति सुंदर लागे।
गई रात···

वतन की राह में
वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हों,
पुकारते हैं यह जमीन-आसमाँ शहीद हों।
शहीद तेरी मौत ही तेरे वतन की जिंदगी,
तेरे लहू से जाग उट्ठेगी चमन की जिंदगी।

वतन की लाज रखना है अजीज अपनी जान से,
वह नौजवान जा रहा है आज कितनी शान से।
पाक वतन की खाक पर, हर एक जवाँ शहीद हो।
गुलाम उठ वतन के दुश्मनों से इंतकाम ले,
इन अपने बाजुओं से खंजरों को थाम ले।
पहाड़ तक भी काँपने लगे तेरे लो खून से,
वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो।

रह जाएगा आखिर निशाँ हमारा

मायूस हो रहा क्यूँ हिंदोस्ताँ है तेरा
ऊँचा रहेगा सबसे कौमी निशान तेरा,
मारें उड़ान एक दिन आजाद बुलबुलें ये
है देर से सिसकता, ये गुलसिताँ तेरा।
मायूस हो रहा है···
मर जाऊँ लड़ता-लड़ता, मैदाँ के अमल में,
बाकी रहा है दिल में, यही अरमान मेरा।
मायूस हो रहा है···
क्या हुआ मिट गया मैं, अपने वतन के खातिर
रह जाएगा कुछ-न-कुछ तो, आखिर निशान मे
पूजा वतन की सबसे ऊँची मैं जानता हूँ
वही है पुरान मेरा, वही है कुरान मेरा।
मायूस हो रहा है···

हँसते-हँसते जीना

नेताजी हमारे, हँसते-हँसते जीना।
जंजीर गुलामी तूने तोड़ा, एशिया से नाता जोड़ा
प्रेम न टूटे तेरा हँसते-हँसते जीना॥ नेताजी···
सूरज ऐसा चमका तेरा, कल था अँधेरा आज सवेरा।
अब न रहेगा मन का अँधेरा, हँसते-हँसते जीना॥ नेताजी···
बिजली बनकर घर में आया, बादल बन पूर्व में छाया।
प्रेम की बरसा तूने बरसाई, मिल के सभी ने गाया॥ नेताजी···
सूरज कभी न डूबे तेरा, जब तू जागे तभी सवेरा।
तेरा बदले रंग कभी ना, हँसते-हँसते जीना॥ नेताजी···

नेताजी का फरमान

• **कर्नल गुरबख्श सिंह**

उठो, सोए भारत के नसीबों को जगा दो,
आजादी यूँ लेते हैं, जवाँ लेके दिखा दो।
खूँखार बनो शेर मेरे हिंदी सिपाही,
दुश्मन की सफें तोड़ दो, एक तहलका मचा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
हिंद के बदले में अदू चीज ही क्या है,
गर रास्ते में हो भाई तो उसे मार मिटा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
मीनार कुतुब देखता है राह तुम्हारी,
चल उसकी बुलंदी को तिरंगे से सजा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
कर याद शहीदों का लहू देश की खातिर,
एक टोली भी हो दुश्मनों की हजारों से लड़ा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
क्यों लाल किला यूँ रहे दुश्मन के हवाले,
हर लश्करे हिंदी की वहाँ धूम मचा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
भूख हो तकलीफ रुकावट हो थकावट,
ख्वाह जख्मे गिराँ, मौत को भी हँसके दिखा दो।
आजादी यूँ लेते हैं···
और कोई ख्वाहिश न तमन्ना मेरे दिल में,
आजाद वतन हिंद में जय हिंद बुला दो।
आजादी यूँ लेते हैं···

बाँध ले बिस्तर, फिरंगी इनकालब आने को है

• **कुँवर प्रतापचंद्र 'आजाद'**

बाँध ले बिस्तर फिरंगी, राज अब जाने को है,
जुल्म काफी कर चुके, पब्लिक बिगड़ जाने को है।
गोलियाँ तो खा चुके, अब तोप भी हम देख लें,
मर मिटेंगे मुल्क पर, फिर इनकलाब आने को है।
वीर तो इस जेल में हैं, कौम के वह नाखुदा,
जेलखाना तोड़ देंगे, यह हवा चलने को है।
कह रहे हैं बाबा गांधी, मान लो शर्तें तमाम,
वरना फिर नक्शा हुकूमत का पलट जाने को है।
आ गए हैं पटेल भी अब, कारज़ारे-हिंद में,
देख लेना, राजशाही बेनकाब होने को है।
लिख दी गांधी ने ये चिट्ठी, आखिरी इरविन के नाम,
अब सँभल जा फिरंगी, वरना निशाँ मिटने को है।
मालवीय ने वार अपना, कर दिया इंग्लैंड पर,
देखना अब मानचेस्टर भी उजड़ जाने को है॥

नवेदे-आजादि-ए-हिंद[9]

• **जफर अली खाँ**

वह दिन आने को है आजाद जब हिंदोस्ताँ होगा,
मुबारकबाद उसको दे रहा सारा जहाँ होगा।
अलम[2] लहरा रहा होगा हमारा रायसीना पर,

और ऊँचा सब निशानों से हमारा यह निशाँ होगा।
जमींवालों के सर खम[३] इसके आगे हो रहे होंगे,
सलामी दे रहा झुक-झुक के उसको आसमाँ होगा।
ब्रह्मन मंदिरों में अपनी पूजा कर रहे होंगे,
मुसलमाँ दे रहा अपनी मसजिद में अजाँ होगा।
जिन्हें दो वक्त की रोटी मयस्सर[४] अब नहीं होती,
बिछा उनके लिए दुनिया की हर नेमत[५] का ख्वाँ[६] होगा।
मन-ओ-तू[७] के यह जितने खर्खशे[८] हैं मिट चुके होंगे,
नसीब[९] उस वक्त हिंदू और मुसलमाँ का जवाँ होगा।
तवाना[१०] जब खुदा के फज़्ल[११] से हम नातवाँ[१२] होंगे,
गुरूर[१३] उस वक्त अंग्रेजी हुकूमत का कहाँ होगा।

---

१. भारत की आजादी की शुभ सूचना, २. ध्वजा, पताका, ३. नतमस्तक, ४. प्राप्त, ५. स्वादिष्ट पदार्थ, ६. थाली, ७. मैं और तू, ८. विघ्न, बाधा, ९. भाग्य १०. शक्तिशाली, ११. दया, १२. दुर्बल, १३. घमंड।

उठो नौजवानो!

चलो नौजवानो, बढ़ो नौजवानो!
उठो नौजवानो, बढ़ो नौजवानो!!

हुकूमत का परचम गिरा जा रहा है,
तिरंगा हवाओं में लहरा रहा है,
वो एक लाल झंडा बढ़ा आ रहा है,
चलो नौजवानो, बढ़ो नौजवानो!

ये गंगा की लहरें, ये जमुना की धारा,
ये संगम की साँझों का दिलकश नजारा,
ये सबकुछ हमारा, ये सबकुछ हमारा,
चलो नौजवानो, बढ़ो नौजवानो!

हिमालय की चोटी खुली जा रही है,
ये बंगाल की जुल्फ लहरा रही है,
कमर नर्मदा संग बल खा रही है,
चलो नौजवानो, बढ़ो नौजवानो!

(स्वतंत्रता-संग्राम सेनानी गणेश प्रसाद नायक की डायरी से।)

स्वदेशी

• **दिनेश प्रसाद बाथम**

अब तो खादी से प्रेम बढ़ाओ पिया,
कहा मानो, विदेशी न लाओ पिया!

अब विदेशी वस्त्र से मुझको भी नफरत हो गई,
देश की संपत्ति विदेशों में बहुत सी ढो गई,
जरा भारत की दौलत बचाओ पिया!
अब स्वदेशी वस्त्र से अपना शरीर सजाइए,
और मेरे वास्ते साड़ी स्वदेशी लाइए,
मुझे खादी की चादर ओढ़ाओ पिया!

दीन-दुखियों का यही दु:ख दूर कर सकती पिया!
गर्व भी परदेसियों का चूर कर सकती पिया!
लाज अंगों की मेरे बचाओ पिया!

जब तलक जिंदा रहें, तन पर रहे देशी वसन,
बाद मरने के उसी का चाहिए हमको कफन,
यह सँदेशा सभी को सुनाओ पिया!

चाहते हो देश की गर कुछ भलाई तो 'दिनेश',
तुम स्वदेशी वस्त्र पहनाकर स्वदेशी हो सुवेश,
वीरता आप अपनी दिखाओ पिया!

रणभेरी

• **बलवीर सिंह 'रंग**

फिर से गूँज उठी रणभेरी।
शांत दृगों में धधक उठी फिर यहाँ क्रांति की ज्वाला,
प्यासी धरती माँग उठी फिर हृदय-रक्त का प्याला।
समय स्वयं जपने बैठा फिर महामृत्यु की माला,
इनकलाब की बाट जोहते क्या अदना, क्या आला॥
जनता के आवाहन पर नवयुग ने करवट फेरी।
फिर से गूँज उठी रणभेरी॥

पूर्व आज स्वीकार कर उठा, पश्चिम का रण-न्योता,
पराधीनता औ' स्वतंत्रता में कैसा समझौता?
हमें राह से डिगा न सकते, अरि के दमन-दुधारे,
आजादी या मौत यही बस, दो प्रस्ताव हमारे।
शूर बाँधते कफन शीश से, कायर करते देरी।
फिर से गूँज उठी रणभेरी॥

आज देश की मिट्टी बोल उठी है

• **शिवमंगल सिंह 'सुमन'**

लौह-पदाघातों से मर्दित, हय-गज-तोप-टैंक से खौंदी,
रक्तधार से सिंचित-पंकिल, युगों-युगों से कुचली रौंदी।
व्याकुल वसुंधरा की काया, नव-निर्माण नयन में छाया॥

कण-कण सिहर उठे, अणु-अणु ने सहस्राक्ष अंबर को ताका,
शेषनाग फूत्कार उठे, साँसों से नि:सृत अग्नि-शलाका।
धुआँधार नभ का वक्षस्थल, उठे बवंडर आँधी आई,
पदमर्दिता रेणु अकुलाकर छाती पर मस्तक पर छाई।
हिले चरण, गति हरण, आततायी का अंतर थर-थर काँपा,
भू-सुत जगे, तीन डग में, बामन ने तीन लोक फिर नापा।
धरा गर्विता हुई सिंधु की छाती डोल उठी है।
आज देश की मिट्टी बोल उठी है॥
आज विदेशी बहेलिये को उपवन ने ललकारा,
कातर कंठ क्रौंचिनी चीखी, कहाँ गया हत्यारा?
कण-कण में विद्रोह जग पड़ा, शांति क्रांति बन बैठी,
अंकुर-अंकुर शीश उठाए डाल-डाल तन बैठी।
कोकिल कुहुक उठी चातक की चाह आग सुलगाए,
शांति-स्नेह-सुख-हंता, दंभी पामर भाग न पाए।
संध्या स्नेह संयोग सुनहला, चिर-वियोग-सा छूटा,
युग-तमसा तट खड़े मूक कवि का पहला स्वर फूटा।
ठहर आततायी हिंस्र पशु, रक्त-पिपासु प्रवंचक,
हरे-भरे वन के दावानल, क्रूर कुटिल विध्वंसक।
देख न सका सृष्टि शोभा वर, सुख-समतामय जीवन,
ठट्ठा मार हँस रहा बर्बर सुन जगती का क्रंदन।
घृणित लुटेरे शोषक, समझा पर-धन हरण बपौती,
तिनका-तिनका खड़ा दे रहा, तुझको खुली चुनौती।
जर्जर कंकालों पर वैभव का प्रासाद बसाया,
भूखे मुख से कौर छीनते तू न तनिक शरमाया!
तेरे कारण मिटी मनुजता माँग-माँगकर रोटी,
नोची श्वान शृगालों ने जीवित मानव की बोटी।
तेरे कारण मरघट-सा जल उठा हमारा नंदन,
लाखों लाल अनाथ, लुटा अबलाओं का सुहाग धन।

चलो दिल्ली, चलो दिल्ली

• **श्याम नारायण पांडेय**

रगों में खूँ उबलता है, जोश कहता है,
जिगर में आग उठती है, हमारा रोष कहता है,
उधर कौमी तिरंगे को सँभाले जोश कहता है,
बढ़ो तूफान-से वीरो, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली!
हमारे जन्म की धरती, हमारे कर्म की धरती,
हमें रो-रो बुलाती है, हमारे धर्म की धरती।
बुलाती है हमें गंगा, बुलाती घाघरा हमको,
हमारे लाड़ले आओ, बुलाता आगरा हमको।
जवानी का तकाजा है, रवानी का तकाजा है,
गुलामी की कड़ी तोड़े, तड़ातड़ हथकड़ी तोड़ें,
लगाकर होड़ आँधी से, जमीं से आसमाँ जोड़ें।
उधर आगे पहाड़ों के अभी आसाम आता है,
हमारा नव गुरुद्वारा अभी बंगाल आता है।
वहाँ से दस कदम दिल्ली, वहाँ से दीखती दिल्ली,
चलो लें खून का बदला, व्यथा से चीखती दिल्ली।
जलाया जा रहा काबा, लगी है आग काशी में,
युगों से देखती रानी, हमारी राह झाँसी में।
शिवा की आन पर गरजो, कुँवर-बलिदान पर गरजो,
बढ़ो दरते पहाड़ों में, भगत की शान पर गरजो।
बढ़ो जयहिंद नारों से, कलेजा थरथरा दें हम।
किले पर तीन रंगों का फरेरा फरफरा दें हम॥

भगतसिंह नाम कर गया

• **सीताराम पाठक 'विद्यार्थी'**

सीताराम पाठक 'विद्यार्थी'
भगतसिंह नाम कर गया
आज भगतसिंह हिंद में निज नाम कर गया,
हँसते-हँसते फाँसी पर कुरबान हो गया।
लॉर्ड इरविन न्याय नहिं अन्याय कर दिया,
शूर बहादुर भगत का खूँखार बन गया॥
शोक फैला हिंद में सरदार चला गया,
फाँसी का देना जालिम को आसान हो गया।
धन्य बहादुर भगतसिंह कुरबान हो गया,
बलिदान होना वीरों को आसान कर गया॥
अब भारतीयो, उठ पड़ो बलिदान का समय,
जालिम भी अपने सिर को तलवार बन गया।
कहते हैं 'सीताराम' भारत हो गया आजाद,
वेदी पर चढ़ने के लिए तैयार हो गया॥

भारती-वंदना

• **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'**

भारति जय-विजय करे, कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल-शतदल, गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता तव चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे,
भारति जय-विजय करे।
तरु-तृण-वन-लता-वसन, अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण,
धवल-धार हार गले!
मुकुट-शुभ्र हिम-तुषार, प्राण-प्रणव ओंकार,
ध्वनि दिशाएँ उदार,
शतमुख, शतरव मुखरे।
भारति जय-विजय करे॥

प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'आजादी के तराने' (दो खंड) से साभार

मेरा आजीवन कारावास

• विनायक दामोदर सावरकर

मृत्यु शय्या पर

युद्ध के उत्तरार्ध की इस सार्वजनिक उथल-पुथल के चलते पीछे जिस पत्र से परिच्छेद उद्धृत किया था, उसमें किए गए उल्लेख के अनुसार हमारा स्वास्थ्य दिनोदिन गिरता जा रहा था। जब अतिसार का विकार अपनी सीमा पार कर चुका और प्रतिदिन सौ डिग्री तक ज्वर शरीर में रहने लगा, तब कहीं हमें रुग्णालय में भरती करते हुए उपचार की व्यवस्था की गई। रुग्णावस्था में कारागृह में आए किसी भी बंदी के रुग्ण होते ही उसे अस्पताल में भेजा जाता, जहाँ उसे थोड़ा-बहुत आराम मिलता, पर हमें यह सुविधा आठवें वर्ष—हमारा रोग हद से ज्यादा बढ़ जाने पर—दी गई, अन्यथा रुग्णावस्था में भी हमारी कोठरीबंदी कभी छूटी ही नहीं।

एक बार रुग्णालय में भरती होने के पश्चात् पर्यवेक्षक ने कारागृह में जितना संभव था, हमारी अच्छी व्यवस्था की। भोजन में बार-बार परिवर्तन करके वही अन्न दिलाया जो हमें हजम हो। इस परिवर्तन का मूल कारण हमारे पत्र से हिंदुस्थान में विधानसभा और समाचार-पत्रों में आरंभ की हुई चर्चा थी। परंतु यह व्यवस्था इतने विलंब से हुई कि स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो पा रहा था। शरीर में ज्वर चढ़ता, उसे उतारने के लिए सतत कुनैन दी जाती। उससे बार-बार अतिसार और खूनी दस्त की पीड़ा होने लगी। कभी-कभी दस्त से चावल और दूध ज्यों-का-त्यों निकल जाता, पाचनशक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी। पोर्ट ब्लेअर अर्थात् अंदमान में तपेदिक, अतिसार और मलेरिया प्राय: एक साथ हाथों में हाथ डालकर चलते थे। हमपर अतिसार तथा मलेरिया की कृपा हो ही गई थी। छह-सात महीनों के पश्चात् हमें ही नहीं, डॉक्टरों को भी तपेदिक का संदेह होने लगा, जो स्वाभाविक ही था। इस रुग्णालय में जहाँ अच्छे हृष्ट-पुष्ट, दृढ़काय राजबंदी और साधारण बंदी भी जो हमारे आस-पास रहते, तपेदिक, अतिसार तथा मलेरिया के शिकार बनते थे, वहाँ हमारे स्वास्थ्य की, जो आठ-आठ वर्ष तक कारागृह की विषाक्त छाया तले प्रतिहत हुआ था, की क्या बिसात? अतिसार के कारण अन्न वर्जित। अन्नाभाव से दुर्बलता में बृद्धि, मज्जा तंतु बिलकुल क्षीण। कारागार में मनोरंजनार्थ ही नहीं अपितु आत्मतुष्टि के लिए एकमात्र साधन था पुस्तक-पठन। परंतु उस तांतविक क्षीणता (nervous debility) के कारण पुस्तक पढ़ना अथवा बौद्धिक संवाद भी सहना कठिन होता। जरा पढ़ने अथवा बौद्धिक संवाद करने से ज्वर झट से दो अंश ऊपर चढ़ जाता, एतदर्थ पढ़ना ही छोड़ दिया। पुस्तकें पास रखना ही बंद किया। खटिया पर ही पड़ा रहता। अत: समय की लंबाई, जो कारागार में पहले ही कठिन प्रतीत होती थी, ऐसी उकताहट भरी और प्रदीर्घ बन जाती कि पूछिए मत। फिर वह शैतान की आँत जैसा प्रदीर्घ समय अतिसार की वेदना और ज्वर की भन्नाहट में तड़पकर काटना पड़ता, तथापि उस अवस्था में भी पिछले प्रकरण में वर्णित सार्वजनिक कार्य यथासंभव कर ही रहा था।

पंद्रह दिन तो सुख प्राप्त होता

रुग्णालय में लगभग एक वर्ष बिताने के पश्चात् पुन: जब पाँचवें नंबर की इमारत में तीसरे तल के सर्वथा एकांत में हमें रखा गया तब हम उस विजनवास में 'प्रति प्रसव' विचारों से कारागृह में मन के उद्वेग से तथा देह की क्षीणता से लड़ते रहते। कभी-कभी प्रतिदिन एक-न-एक बीमारी पीछे लगने से महसूस होता कि अब यह देह-वस्त्र इतना जीर्ण-शीर्ण हो गया है कि इसे ओढ़ना असंभव है। आगे चलकर किंचित् स्वास्थ्य सुधरेगा भी, परंतु कितनी प्रतीक्षा करें? छह महीने, वर्ष-डेढ़ वर्ष बीता। आज अतिसार, कल रक्तातिसार, परसों ज्वर, नरसों और कुछ सहता गया। अंत में निश्चय किया कि इस कारागार से तो हमारे छूटने की संभावना नहीं और तब तक कारागार छूटता नहीं, जब तक स्वास्थ्य में सुधार नहीं। आगे काम आएगा, इसलिए जैसे-तैसे सँभालकर रखा यह शरीर फेंक दो। सुख के लिए तो सारा घटाटोप, कहाँ तक दु:ख में आँसू बहाएँ, यह निश्चय करने के लिए महीने में कितने दिन देह धारण सुसह्य होता है, और कितने दिन कष्टप्रद—दीवार पर यह गणना करता। प्रतिदिन बीमारी या पीड़ा होने पर अथवा दिन ठीक बीता तो उसे दीवार पर दर्ज करता। ऐसे ही दो महीने व्यतीत हुए। उसके बाद जोड़ा। देखा तो साठ दिनों में पंद्रह-एक दिन स्वास्थ्य इतना ठीक था कि जिजीविषा जाग उठती। तो फिर अभी तक सबकुछ दु:खमय नहीं है। पंद्रह दिन तो यह देह सुखमय होती है। चलो, देख लेते हैं कुछ और जीकर।

परंतु इस तरह केवल मनोमीनार पर कोई नित्य थोड़े ही रह सकता है? वास्तव का गुरुत्व उसे खींचकर नीचे लाता ही है। उसी तरह एक बार खींचते हुए हम मृत्यु की खाई के छोर पर लटकते रहे। रुग्णालय में अत्यंत क्षीण वजन ९५ पौंड पर आया हुआ, पेट में अन्न जाता ही नहीं। तपेदिक के लक्षण, शरीर में हमेशा हरारत, कोई भी अपना निकट नहीं, उस बंदीखाने में जहाँ हमें शत्रुवत् देखा जाता है, अपमान, निराशा की अवस्था

में किसी से प्रेम भरे दो शब्द बोलने पर रोक-टोक, तनिक नीचे उठने-बैठने पर पाबंदी। ऐसी अवस्था में हमारा स्वास्थ्य इतना हद से अधिक गिर गया कि इसका भी भरोसा नहीं था कि कब मृत्यु का झटका लगे और जीवन की डोर टूट जाए।

तब ऐसा प्रतीत होता था कि अब इस रुग्णालय में ही मृत्यु आएगी। प्रतिदिन बौद्धों के शून्यवाद, ज्ञानवाद, विज्ञानवाद से हेनकेल हर्बर्ट के 'सब्स्टंस' और विकासवाद तक मरणोपरांत की सभी उपपत्तियों की मन-ही-मन विवेचना करके देखता। मीमांसा से लेकर 'मिल' के उपयोगितावाद तक 'धर्म' अर्थात् कर्तव्य कर्म के स्वरूप के ऊहापोह का विवेचन करता। ऐसे ही एक सर्वथा क्षीण दिन जीवन से अंतिम विदाई लेने 'मरणोन्मुख शय्या पर' शीर्षक कविता लिखी। इसकी रचना करते हुए सचमुच ही हमें आशा नहीं थी कि हम उसे पढ़ने के लिए भी जीवित रहेंगे।

मैं जब इंग्लैंड में पकड़ा गया तब फाँसी की छाया में 'मेरा मृत्युपत्र' और फाँसी का दंड दिया जाना जिस दिन संभव था, उस दिन 'पहली किश्त' कविता की रचना की थी। उसके पश्चात् मृत्यु की दहलीज पर खड़े रहकर उससे दो शब्द संवाद साधने का प्रसंग इस 'मरणोन्मुख शय्या पर' तीसरी कविता में आया था। ये तीनों कविताएँ Echo from the Andaman पुस्तक में प्रकाशित हो चुकी हैं।*

प्राप्त हुई, वह भी ढेर सारे तिकड़म करने के बाद। एक बार तो मेरे अनुज अनुमति प्राप्त करके मेरी पत्नी के साथ कलकत्ता आने के लिए तैयार हो गए थे कि पुनः अनुमति रद्द करने का तार पहुँच गया। यही निर्मम ठिठोली सतत चल रही थी। बंबई सरकार से पूछें तो वह लिखती, पोर्ट ब्लेअर से पूछिए। और पोर्ट ब्लेअर के कमिश्नर से पूछते तो वे लिखते, हिंदुस्थान सरकार से पूछिए। हिंदुस्थान सरकार से पूछा जाय तो वह कहती, यह समस्या बंबई सरकार के अनुरोध, सिफारिश पर निर्भर करती है। इस तरह चलते-चलते सन् १९१८-१९ में भेंट हो पाई। वह भी कारागार में अन्य लोगों की तरह साथ रहना तो दूर, सिर्फ साथ बैठना और वह भी पर्यवेक्षक के सामने।

तीनों बंधुओं का भरत-मिलाप

इस वर्ष मुझे और मेरे बंधु को अपने परिवार से मिलने की अनुमति आखिरकार मिल गई। अंदमान में अन्य कैदी पाँच वर्षों में अपने घर-परिवार के लोगों को बुलाकर एक-दो दिन और कभी हफ्तों उनके साथ रह सकते थे। हमें यह सुविधा आठ वर्षों बाद

*अब ये सारी कविताएँ 'सावरकर समग्र', खंड-७ में उपलब्ध हैं।

प्राप्त हुई, वह भी ढेर सारे तिकड़म करने के बाद। एक बार तो मेरे अनुज अनुमति प्राप्त करके मेरी पत्नी के साथ कलकत्ता आने के लिए तैयार हो गए थे कि पुनः अनुमति रद्द करने का तार पहुँच गया। यही निर्मम ठिठोली सतत चल रही थी। बंबई सरकार से पूछें तो वह लिखती, पोर्ट ब्लेअर से पूछिए। और पोर्ट ब्लेअर के कमिश्नर से पूछते तो वे लिखते, हिंदुस्तान सरकार से पूछिए। हिंदुस्थान सरकार से पूछा जाय तो वह कहती, यह समस्या बंबई सरकार के अनुरोध, सिफारिश पर निर्भर करती है। इस तरह चलते-चलते सन् १९१८-१९ में भेंट हो पाई। वह भी कारागार में अन्य लोगों की तरह साथ रहना तो दूर, सिर्फ साथ बैठना और वह भी पर्यवेक्षक के सामने। उस पर इस भय से कि न जाने कोई क्रांतिकारी षड्यंत्र तो नहीं रचा जा रहा, परदे के पीछे यह जानने के लिए कि हमारा वार्तालाप किस विषय पर चल रहा है, एक समझदार वॉर्डर को छिपाया गया। ऐसी अवस्था में आठ वर्षों के पश्चात् मैं अपने अनुज, छोटी भौजी तथा धर्मपत्नी से मिला। कनिष्ठ बंधु का सुदृढ़ स्वास्थ्य देखकर मुझे संतोष हुआ।

उस भेंट का यथासंभव अधिक-से-अधिक आनंद उठाने के लिए हम अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की सारी चिंताएँ एवं दुःख-स्मृतियाँ बलात् हृदय की तलहटी में दबाकर घंटा-डेढ़ घंटा तक सहजतापूर्वक बतियाते रहे, मानो निर्विघ्न रूप से संपन्न विवाह के पश्चात् लग्न-मंडप में बैठकर हँसते-खेलते बातें कर रहे हैं। परंतु मेरी भाभी, मेरे ज्येष्ठ बंधु की पत्नी, वह क्यों नहीं आई? राजनीतिक संकट काल में जिसके कोमल कंधों पर हमारे पूरे परिवार के दुःख का भारी बोझ पड़ा और जिसने उसे अत्यधिक धीरज तथा एकनिष्ठ भाव से सहन किया, वह मेरी बालसखी, ममतामयी माँ, राजनीति की अत्यंत विश्वसनीय सहयोगिनी, मेरी और अपने निर्वासित पति से भेंट के लिए सात बरसों से जिसने सतत पलकें बिछाई थीं, अब ऐन मौके पर मिलने के लिए क्यों नहीं आई? सिर्फ इसीलिए, क्योंकि बरसों से उस भेंट की राह पर अपने दीपक की बाती उकसाकर टकटकी लगाए उसके वे वत्सल विरहाकुल नेत्र अपने जीवनदीप का आशामय तेल तथा जीवन-ज्योति समाप्त होने के कारण ऐन समय पर बंद हो गए। स्वराष्ट्र के कल्याणार्थ जलाए गए विरह के अग्निकुंड में कुढ़ती, जलती, सिसकती, अंत में आज वह भस्म हो गई और कल अंदमान में अपने पति से मिलने जाने को अधिकारियों का वह अनुमतिसूचक दयामय तार आ गया।

बंधु ने यह वार्त्ता कही और हमने चुपचाप उसे पचा लिया, जैसे हलाहल का एक घूँट। प्रत्युत यही कहा, यह विश्व परिवर्तनशील है, एक-न-एक दिन संयुक्त का वियोग होगा ही होगा। ईश्वर का यह बड़ा उपकार है कि आज तक उसने साथ रहने दिया, अब पुनः अपने जीवन-नाट्य का उत्तररंग आरंभ होनेवाला है। अब कथ्य से इस तरह एक-एकचरित्र निकल जाएगा, यह दृश्य रंगमंच से इसी तरह तिरोहित होगा। और इस अदृश्य के रंगमंच पर? यह देखो, बाबा की पुनर्जन्म पर नितांत श्रद्धा है, निष्ठा है। अतः उनकी निष्ठा के अनुसार किंचित् नहीं, प्रायः निश्चयपूर्वक भाभी की आत्मा इस समय सूक्ष्म रूप से अपने इस पारिवारिक सम्मेलन में समाविष्ट हुई होगी, सबकुछ सुन रही होगी। अच्छा, हमारे जैसे किसी की उसपर उतनी निश्शंक निष्ठा न हो तो बात समाप्त हो गई। वह वीरांगना धारातीर्थ पर ही विश्राम लेती है जो राष्ट्र-हिताय रणभूमि में वीरों के जूझते समय उन्हें प्रोत्साहित करती-करती संकट की धार से काटी जाती है और धराशायी होती है—अर्थात् समस्त दुःखों से, कष्टों से मुक्त होती है, जैसे अग्निशलाका देखते-देखते मिट जाती है, मुक्त होती है, सुख-दुःखातीत होती है। अतः उसके लिए शोकसंतप्त होना अकारण है, व्यर्थ है। हम उसे पार नहीं कर सके, बस उतना ही दुःख करना कर्तव्य है। इतना कहते हुए वह विषय छोड़ दिया और राष्ट्रीय तथा धार्मिक, पारिवारिक, विनोद

संभाषण निर्धारित समय की कक्षा में जितना अधिक भर सकते, उतना भर दिया। एक घंटे में इतनी बातें करने की शक्ति मेरे जैसे बातूनी, गप्पीदास के भाग में भी कदाचित् ही आई होगी। हम त्रिवर्ग बंधुओं का यह मिलाप बारह बरसों बाद हुआ। पहला सन् १९०६ में जब बंबई से विलायत गया तब जहाज घाट पर तीनों खड़े थे, उसके पश्चात् आज अंदमान के कारागार में पुन: मिले हैं सन् १९१९ में; और वह भी इस शर्त पर कि केवल एक घंटा ही भेंट होगी।

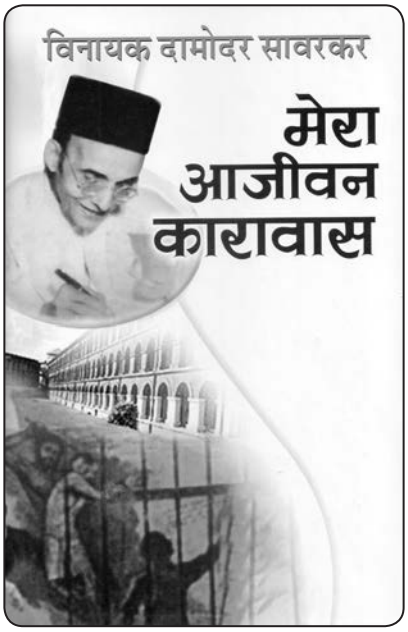

मुझे अपनी पत्नी से भी आध-एक घंटे के लिए एकांत में बातें करने की अनुमति प्राप्त हो गई थी। तुरंत मेरे बंधु और अन्य परिवारवालों को पोर्ट ब्लेअर से नौयान पर सवार कराया गया। सप्ताह भर भी द्वीप देखने के लिए यहाँ नहीं रहने दिया। डर था कि कहीं टोह लेकर मेरी मुक्ति के लिए कोई नौका या हवाई जहाज भेजने का व्यूह न रचाएँ। मेरे बंधु के आगमन से पूरे उपनिवेश में सनसनी फैल गई थी, सभी उनके दर्शनार्थ उत्सुक थे, परंतु कोई भी उनसे मिल नहीं सकता था। तथापि इन भावुक, सुबुद्ध बंदियों में से कई उस पाबंदी की परवाह न करते हुए उनसे मिलने गए और सस्नेह उन्हें फल-फूलों के उपहार देने में भी नहीं सकपकाए।

काव्य रचना बंद

मैं जब पहले-पहल कारागार में आया तब इसी प्रकार कड़े एकांत में बंद था। परंतु उस समय काव्य रचने में मेरा समय बीतता था। आठ बरसों के पश्चात् भी मेरे साथी बंदी बाहर स्वतंत्र रूप से घूमते-फिरते, दस लोगों पर अपना रोब जमाते, सापेक्षत: बहुतेरी मनमानी करते रहते, तब भी मैं उसी तरह कठोर एकांत में बंद था। परंतु अब समय बिताने के लिए काव्य रचना करने की शक्ति भी शेष नहीं रही। प्रथमत: दंड प्राप्त होने के पश्चात् यह देखकर कि अंदमान में संगठन और प्रचार कार्य हाथ में लेना संभव है, मैंने काव्य रचना के निश्चय को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया था, उसके पश्चात् तंत्रिका (नाड़ियों) की दुर्बलतावश वह काम लगभग छोड़ ही देना पड़ा। जो हजार-डेढ़ हजार कविताएँ हो गई थीं, उन्हें कंठस्थ करने में ही कठिनाई होने लगी, फिर नव-रचना तो दूर ही रही। प्रति सप्ताह कुछ देर उन्हें दोहराना, जिन्हें पहले कंठस्थ किया था। एक बार मैंने इस तरह गणना की कि यदि मैं सतत उस बंदीशाला में विरचित कविताएँ गाने लगूँ तो प्रात:काल से आरंभ कर संपूर्ण दिवस और संपूर्ण रात्रि, भोजन का कुछ समय छोड़कर, सतत गा सकता हूँ। इतनी काव्य रचनाएँ हो गई थीं। वह सारी कंठस्थ भी थीं। परंतु इसी दुर्बलता के कारण उस बीमारी के वर्ष-दो वर्षों में स्मृति की छलनी से कितनी सारी कविताएँ पठनाभाव में निकल गईं।

इस तरह एकांत कालकोठरी यद्यपि इतनी कष्टप्रद और कठोर थी, फिर भी उससे मेरे कारागारीय सार्वजनिक आंदोलन बंद नहीं हुए थे। किसी-न-किसी मार्ग से शुद्धि, संगठन, शिक्षा तथा राजनीतिक जागृति आदि उपांगों के आंदोलन पूरे उपनिवेश में फैल ही रहे थे।

इस एकांत इमारत में भी इस तीसरे तल पर आकर कारागारीय अधिकारियों का कोपभाजन बनकर प्रसंगवश हथकड़ियों में खड़े रहने का दंड सहकर भी जिन बंदियों—राजनीतिक एवं साधारण—ने मुझसे मिलना और मेरी सेवा करना नहीं छोड़ा, यहाँ उनका आभार प्रकट किए बिना नहीं रहा जाता।

मैंने पीछे भी उल्लेख किया है कि उस पाँचवें नंबर की इमारत में तीसरे तल पर मुझे रखने के पीछे एक उद्देश्य था कि सामने फैले हुए सागर की मुक्त एवं विशुद्ध हवा का मैं भरपूर सेवन कर सकूँ। इसी कारणवश तथा विशेषत: इन दो वर्षों में इस प्रकार मरणोन्मुख शय्या पर चिपक जाने पर मुझे स्वास्थ्यप्रद अन्न दिए जाने से मेरा स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा। थोड़ा-बहुत अन्न पाचन होने लगा और ज्वर, वजन घटना आदि तपेदिक के पूर्व चिह्न समाप्त होने लगे। लगभग डेढ़-दो वर्षों के पश्चात् मैं वह मरणोन्मुख शय्या समेट सका।

बाबा का दु:खद दर्शन

मैंने अपनी मरणोन्मुख शय्या समेटी ही थी कि उसे पुन: बिछाना पड़ा—वह भी अपने ज्येष्ठ बंधु के लिए, क्योंकि उनका स्वास्थ्य गिरते-गिरते मेरा स्वास्थ्य सुधरने के संधिकाल तक संपूर्ण गिर गया। उसपर भी दु:ख की बात यह कि अंत तक उनकी व्यवस्था ठीक नहीं रखी गई। मेरी दृष्टि के सामने अभी तक वह दु:खद दृश्य दिखाई दे रहा है—काले कंबल का कोट पहने हुए, पित्ताशय बिगड़ने से अत्यधिक वेदना से पीड़ित झुके हुए बाबा रुग्णालय की ओर जा रहे हैं—वहाँ एक उद्धत तथा घिनौना भारतीय मद्रासी मेडिकल असिस्टेंट आँखें तरेरकर जूते पटककर उनसे तनिक खींचातानी करते हुए कहता है, 'कहाँ दुख रहा है? इधर तो कुछ भी नहीं। सारी बंडलबाजी है।' और इस अपमान से खिन्न, उसका प्रतिवाद करने के लिए—पुन: रुग्णालय नहीं जाऊँगा, चाहे कुछ भी हो जाए—यह निश्चय करता हुआ वह कष्टभोगी देशप्रेमी, कंबल का काला कोट पहने, खाँसी की अविरल ढाँस से, जिसे सभी तपेदिक का लक्षण समझते थे, पीड़ित-कराहते हुए अपनी कोठरी की ओर जा रहा है। उस मद्रासी के उद्धत व्यवहार पर उसके कान उमेठे गए। पर्यवेक्षक ने भी तपेदिक की आशंका में भाई के थूक की जाँच की। अंत में 'चालाकी' के नाम पर जो बीमारी हद तक बढ़ गई थी, एक निर्भीक वरिष्ठ डॉक्टर ने—जिसे हिंदुस्थान से सोद्देश्य यहाँ की अवस्था में सुधार लाने के लिए भेजा गया था—उनकी रीढ़ की हड्डी में तपेदिक का दाग ढूँढ़ निकाला और यह सिद्ध हो गया कि उन्हें तपेदिक की बीमारी लग गई है। तथापि जब तक वे अंदमान में थे, तब तक उनके स्वास्थ्य की देखभाल ठीक-ठाक नहीं हो रही थी। खाँसी इतनी जोर से आती कि वे एक इमारत में यदि खाँसने लगते तो पड़ोस की दोनों इमारतों में उस

जानलेवा सूखी खाँसी को सुननेवाला घबरा जाता। उनके प्राण उड़ने लगते, ऐसा लगता कि दमघुटी हो रही है, फिर भी खाँसी नहीं रुकती। ऐसी खाँसी, प्रतिदिन १००ए से १०२ए तक ज्वर, पित्ताशय में इतनी तीव्र पीड़ा कि सीधा खड़ा रहना भी कठिन। अतिसार का घिनौना कष्ट—इन सारे कष्टों को झेलते हुए उस कर्मवीर ने अंदमान में अंतिम डेढ़ वर्ष बिताया।

उस डेढ़ वर्ष में सौ-डेढ़ सौ राजबंदी, जो आजन्म कारावास का दंड लेकर आए थे, चार-पाँच सौ चोर, डाकू, हत्यारे आदि साधारण बंदी, जिनमें से किसी-किसी ने एक वर्ष भी दंड नहीं भुगता था, फिर भी विजयोत्सव तथा राजक्षमा के (जिसका आगे चलकर हम उल्लेख करनेवाले हैं) कारण बरी किए गए। परंतु इस रोगजर्जर राजबंदी को, जो दस वर्षों से इस यंत्रणा में सड़ रहा है और अंत में राजयक्ष्मा जिसके जीवन की बोटी-बोटी नोच रहा था, उस राष्ट्रीय बंदी को बरी नहीं किया गया।

और विधि (कायदे-कानून) की भाषा में कहना हो तो उनपर इस भयंकर कोप के लिए जो महान् अपराध सिद्ध हो गया था, वह यह कि उन्होंने दस पन्नों की एक पुस्तिका प्रसिद्ध की थी, इसलिए आजन्म कारावास; और दूसरा अपराध यह कि वे मेरे बंधु थे, अत: तपेदिक होने पर मुक्ति नहीं।

तथापि उस कष्टभोगी कर्मवीर के आत्मविश्वास, तत्त्वनिष्ठा अथवा धैर्य में रत्ती भर भी कमी नहीं आई। मृत्यु भी मार्ग रोकने लगी, तब भी निश्चित मार्ग से तिल भर भी वे टले नहीं।

यह है अंदमान का वृत्तांत। वहाँ से हिंदुस्थान के कारागार वापस लाने के पश्चात् उनके भाग्य में जो कष्ट लिखे थे, उनके सामने अंदमान के शारीरिक कष्ट तथा मानसिक यंत्रणाएँ कुछ भी नहीं थीं। उनका सामना आगे चलकर उन्हें करना ही था।

सा/अ

कोरोना महामारी

कविता

● प्रणय श्रीवास्तव 'अश्क'

कवि एवं साहित्यकार। वैनगंगा अष्टक एवं स्तोत्र (संस्कृत में), माँ वैनगंगा चालीसा एवं माँ वैनगंगाजी की आरती (हिंदी में) कृतियाँ राष्ट्रसंत तरुण सागरजी महाराज द्वारा विमोचित। छोटे-बड़े दर्जनभर सम्मान-पुरस्कार प्राप्त।

जो बच गए कोरोना से, भाग्यवान समझ लो,
जो कर रहे सहायता, भगवान समझ लो।
आया है महा दौर कोरोना के प्रभाव का,
घर में ही रहो इसको महाज्ञान समझ लो।

न नेता न अभिनेता न मास्टर ने बचाया,
न क्रेता न विक्रेता न फास्टर ने बचाया।
कोरोना की जान लेवा महामारी जब आई,
भगवान बन के नर्स और डॉक्टर ने बचाया।

मंदिर नहीं, मसजिद नहीं, न तरण ताल बनाओ,
शादी नहीं, आबादी नहीं, न कोई हाल बनाओ।
कोरोना से मर रहे लोगों की आत्मा ने ये कहा,
हर गाँव और शहर में बड़ा अस्पताल बनाओ।

ऑक्सीजन संकट जब से गहराया है,
गाँव का पीपल और बरगद याद आया है।
कई अलविदा हो गए ऑक्सीजन के अभाव में,
सोचो हमने कब कोई पेड़ लगाया है।

कोरोना से मौत का यहाँ मंजर तो देखिए,
है किसके हाथ में यहाँ खंजर तो देखिए।
सोशल मीडिया में नित आ रही खबरें,
परिवार बन रहे यहाँ बंजर तो देखिए।

मंदिर, चर्च, मसजिद, गुरुद्वारा बंद है,
विद्यार्थी कह रहा स्कूल सारा बंद है।
बंद है बाजार और वीरान सी सड़कें,
नेताओ, बताओ क्या मुँह तुम्हारा बंद है?

कुछ बेवड़े फँसे हैं दारूबंदी में,
कुछ फँस गए हैं मनचले, नाकाबंदी में।
आई है जब से मास्क लगाने की जरूरत,
कुछ सेमड़े फँसे हैं तालाबंदी में।

कोरोना भी अजीब विषाणु है, बहुत सताता है,
हाथ मिलाते ही गले पड़ जाता है।
करता है चाहे जब हमारे घरों पर हमला,
चुनाव की सभाओं में बहुत शरमाता है।।

सा/अ

वार्ड नं. ०५, गांधी उद्यान के पीछे,
वारासिवनी, जिला-बालाघाट (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२४९७९६७८

रानी झाँसी रेजिमेंट

● ऊषा निगम

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के क्रांतिकारी जीवन को, भारत से बाहर रहकर देश को आजाद कराने के उनके सशस्त्र प्रयासों को एवं उन्हीं प्रयासों के बीच उनकी असामयिक मृत्यु को यह देश आज भी नहीं भूल पाया है। हम यह भी नहीं भूल पाए हैं कि नेताजी ने ही सर्वप्रथम आजाद हिंद फौज में 'महिला रेजिमेंट' बनाने की घोषणा की थी। वस्तुत: सुभाष चंद्र बोस नारीशक्ति पर विश्वास करते थे, और इस धारणा के पोषक थे कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं हैं। उनके हृदय में महिला सैन्य दल का विचार १९२८ में ही जन्म ले चुका था। १९२८ में कोलकाता में अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में वे कांग्रेस के 'स्वयंसेवक दल' के कमांडर थे। इस अवसर पर उन्होंने 'महिला स्वयंसेवक दल' भी संगठित किया था, जिसका दायित्व कैप्टन लतिका घोष को दिया गया था। कांग्रेस अधिवेशन के बाद उन्हें अपने इस स्वप्न को पूरा करने का अवसर अनेक वर्षों के उपरांत प्राप्त हुआ।

१७ जनवरी, १९४१ को नेताजी ने गुप्त रूप से अपना देश छोड़ा। बर्लिन पहुँचे। अनेक कारणों से उन्हें ८ फरवरी, १९४३ को बर्लिन छोड़ना पड़ा। उनकी यह यात्रा भी गुप्त रही। पनडुब्बी से ९३ दिनों का सफर तय करने के बाद वे टोक्यो पहुँचे (१६ मई, १९४३)। इस पूरी यात्रा में केवल आबिद हसन उनके साथ थे। वे नेताजी की उस समय की सोच के एकमात्र साक्षी थे। इस लंबी एकाकी यात्रा में नेताजी ने अनेक विषयों पर गहन चिंतन किया था, जिनमें से एक विचार आजाद हिंद फौज में महिला रेजिमेंट की स्थापना करने का भी था, जिसका नाम रानी लक्ष्मी बाई के नाम पर 'रानी झाँसी रेजिमेंट' होना था। नेताजी का कहना था कि देश की आधी आबादी देश के स्वतंत्रता संग्राम से पृथक् नहीं रह सकती। आजादी की लड़ाई में उसकी भागीदारी आवश्यक है। सैन्य प्रशिक्षण महिलाओं को सशक्त बनाता है; परिणामस्वरूप वे युद्धकाल के तमाम कष्टों, असुविधाओं और कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना कर सकती हैं।

१९३७ में रास बिहारी बोस ने जापान में 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' की और कैप्टन मोहन सिंह ने 'इंडियन नेशनल आर्मी' की स्थापना की थी। सुभाष चंद्र बोस के जापान आ जाने के बाद रास बिहारी बोस ने इनकी जिम्मेदारी नेताजी को दे दी। अब नेताजी ने अपनी तरह से 'आजाद हिंद फौज' का गठन किया। शीघ्र ही उन्होंने अपनी सहयोगी लक्ष्मी स्वामिनाथन को आदेश दिया कि वे १२ जुलाई, १९४३ को एक महिला सभा का आयोजन करना चाहते हैं। लक्ष्मी स्वामिनाथन (बाद में कैप्टन लक्ष्मी सहगल के नाम से प्रसिद्ध हुईं) ने न केवल सभा की व्यवस्था की

सुपरिचित लेखिका। स्वतंत्रता सेनानियों पर विशेष लेखन। पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि निरंतर प्रकाशित। 'कानपुर : एक सिंहावलोकन' स्मारिका भी। सन् १९७०-७२ में पी.पी.एन. कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। संप्रति लेखन में रत।

वरन् २० महिला सैनिकों को प्रशिक्षित करके उनके द्वारा नेताजी को गार्ड ऑफ ऑनर भी दिलवाया। इस सभा में मलाया और थाईलैंड से बड़ी संख्या में महिलाएँ उपस्थित हुई थीं। नेताजी ने उनको संबोधित करते हुए कहा था कि 'मैं महिलाओं की क्षमता को जानता हूँ। वे बहुत कुछ कर सकती हैं। अत: बहनो, आपको आगामी संघर्ष में भाग लेना चाहिए।' उन्होंने कहा कि वे भारत के इस अंतिम निर्णायक स्वतंत्रता संग्राम की आजाद हिंद फौज की महिला रेजिमेंट में एक हजार प्रशिक्षित, सशस्त्र रानियों को देखना चाहते हैं।

इसी सभा में नेताजी ने रानी झाँसी रेजिमेंट की घोषणा की थी। १५ जुलाई, १९४३ से रेजिमेंट में भारतीय मूल की किशोरियों की भरती आरंभ हो गई थी। नेताजी के आह्वान का परिणाम अत्यधिक सकारात्मक रहा। सेना में भर्ती होने वाली महिलाएँ भारतीय मूल की अवश्य थीं, लेकिन अधिकांश ने अपनी मातृभूमि के दर्शन कभी नहीं किए थे। बावजूद इसके वे अपने गुलाम देश को आजाद करने के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तत्पर थीं। नेताजी ने उन महिला सैनिकों को 'रानी' कहा। रानियों ने नेताजी से कहा था कि 'युद्ध के कष्टों और दु:खों की जानकारी प्राप्त करने के बाद ही उन्होंने अपने घरों को त्यागा है। अब वे मौत का सामना करने के लिए तैयार हैं।' शीघ्र ही रानियों की संख्या १००० तक पहुँच गई। आगे चलकर इस संख्या में वृद्धि हुई।

रानी झाँसी रेजिमेंट का गठन और भर्ती हो जाने के उपरांत उनके सैन्य प्रशिक्षण का प्रबंध किया गया। २२ अक्तूबर, १९४३ को सिंगापुर में महिला प्रशिक्षण शिविर खोला गया। इस समय नेताजी ने कहा था कि रानी झाँसी रेजिमेंट प्रशिक्षण केंद्र पूर्वी एशिया में हमारे आंदोलन की युगांतकारी घटना है। उन्होंने रानी अहल्याबाई, रानी भवानी, रजिया सुल्तान, नूरजहाँ आदि इतिहास प्रसिद्ध महिलाओं की चर्चा करते हुए कहा कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि आने वाले समय में नारीवर्ग में ऐसे ही सुंदर पुष्प खिलेंगे। जिन रानियों को प्रशिक्षण के लिए चुना गया था, उन्हें इस बात पर बड़ा गर्व था कि नेताजी ने उन्हें प्रशिक्षण योग्य समझा था। नेताजी ने इस बात का भी ध्यान रखा कि इनके पुरुष प्रशिक्षक इन

रानियों के साथ उस भाषा का प्रयोग न करें, जिस भाषा का प्रयोग वे अपने पुरुष सैनिकों के लिए किया करते हैं। अर्थात् प्रशिक्षण के समय भाषा शालीन होनी चाहिए। धन्य है यह वीर, जिसने एक महान् मिशन में व्यस्त रहने के बाद भी इतने छोटे-छोटे विषयों का भी ध्यान रखा। शीघ्र ही रंगून और मेम्यो में भी प्रशिक्षण शिविर खोले गए। रानी झाँसी रेजिमेंट की लेफ्टिनेंट मानवी आर्या लिखती हैं कि इन सैनिक शिविरों का दिन सवेरे छह बजे झंडारोहण के साथ आरंभ होता था। फिर कुछ देर शारीरिक व्यायाम के बाद सवेरे का जलपान, उसके उपरांत परेड एवं ड्रिल होती थीं। इसके बाद रायफल, हथगोलों और संगीन चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। शाम तक यहीं कार्यक्रम चलता रहता था। दिन का अंत पुन: झंडारोहण तथा 'झंडा सलामी' के साथ होता था। महिला सैनिक अपने साथ पोटैशियम सायनाइड भी रखती थीं। कभी इसको खाने का अवसर आया हो, इस बात की जानकारी नहीं मिलती है। महिला सैनिकों को लंबे बालों की अनुमति नहीं थी।

लगभग २०० महिला सैनिकों को नर्सिंग प्रशिक्षण के लिए चुना गया था। सेना में घायल सैनिकों की देखभाल के लिए परिचारिकाओं को अत्यधिक माँग रहती थी। उन्हें स्वरक्षा के लिए छोटे-मोटे हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। इन्हें सैन्य नियमों की जानकारी भी दी जाती थी।

युद्धस्थल के बिल्कुल निकट के शिविरों में (रंगून और मेम्यो) जहाँ जंगल-ही-जंगल थे, उन्हें उसी के अनुसार प्रशिक्षित किया जाता था। गोरिल्ला युद्ध प्रणाली, युद्ध एवं सुरक्षा के लिए खाइयों को खोदना भी इन रानियों को सिखाया जाता था। मेम्यो शिविर में युद्ध के दौरान जब अधिक संख्या में नर्सों की आवश्यकता हुई, तब स्थानीय किशोरियों को परिचारिका विभाग में भर्ती किया गया। यह कार्य कैप्टन लक्ष्मी स्वामिनाथन ने किया था।

३० मार्च, १९४४ को रानी झाँसी रेजिमेंट की प्रथम पासिंग आउट परेड सिंगापुर के प्रशिक्षण शिविर में हुई थी। इस परेड के अवसर पर कैप्टन लक्ष्मी स्वामिनाथन मौजूद थीं। सुभाष चंद्र बोस ने इस रेजिमेंट का गठन अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए नहीं किया था। उन्होंने नारी शक्ति को युद्ध के लिए तैयार किया था। इस रेजिमेंट ने पहला युद्ध कैप्टन लक्ष्मी तथा दो अन्य अफसरों के नेतृत्व में १०० सैनिकों के साथ मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध मोल मिन (बर्मा) के पास लड़ा था, जिसमें उन्हें विजय प्राप्त हुई थी।

यहाँ पर लेफ्टिनेंट मानवती आर्या (विवाह पूर्व पांडे) की चर्चा आवश्यक प्रतीत हो रही है। ०८ जनवरी, १९४४ को २३ वर्ष की आयु में कैप्टन लक्ष्मी स्वामिनाथन ने उन्हें नेताजी से मिलवाया था। उस समय से लेकर आज तक वे नेताजी के व्यक्तित्व से अभिभूत रही हैं। मानवती पांडे के पिता बर्मा में काम करते थे। उन्होंने अपनी एकमात्र संतान में भारत और भारतीयता के प्रति जिस प्रेम और निष्ठा का संचार किया, उसका अंत कभी नहीं हुआ। नेताजी भी उनके कार्य और समर्पण भाव से प्रभावित हुए। अत: उन्होंने आजाद हिंद की अस्थायी सरकार के महिला विभाग में उन्हें नियुक्ति किया। कुछ ही समय बाद मानवती नेताजी से गुप्तचर विभाग या सेना से संबंधित किसी अन्य जिम्मेदारी से जुड़ने का आग्रह करने लगी। अत: जब नेताजी ने अपना हेडक्वार्टर रंगून से मेम्यो स्थानांतरित किया, तब उन्होंने मानवती पांडे को मेम्यो में महिला प्रशिक्षण शिविर खोलने का आदेश दिया।

रंगून से मेम्यो के मार्ग में वे पूरे समय नेताजी के बहुत निकट रहीं। मेम्यो में भी वे उनके आदेशों का पालन करती रही। प्रत्येक संध्या को वे दिन भर की कारवाइयों की रिपोर्ट नेताजी को देती थीं। यहाँ कैप्टन लक्ष्मी भी अपनी तरह से व्यस्त थीं। २९ अप्रैल, १९४४ को मेम्यो कैंप पर शत्रु पक्ष ने हवाई हमला किया था। इस स्थिति का भी रेजिमेंट की रानियों ने वीरतापूर्वक सामना किया था। मानवती आर्या ने अपनी पुस्तक 'Patriot' में इसका विस्तृत विवरण दिया है।

जापान ने द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन को हराकर बर्मा पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। आजाद हिंद फौज जापानी फौज के साथ थी। नेताजी की फौज नागालैंड, मणिपुर पर विजय प्राप्त करते हुए इंफाल रोड तक पहुँच गई थी। लेकिन जुलाई १९४५ आते-आते यह स्पष्ट हो गया था कि जापान की हार निश्चित है। अत: इंफाल पर आक्रमण करने से पहले नेताजी को आजाद हिंद फौज को वापस बुलाना पड़ा। पूरे दक्षिण पूर्वी एशिया पर युद्ध के बादल छाए हुए थे। पराजय सामने दिखाई दे रही थी। नेताजी को रानी झाँसी रेजिमेंट की बहुत चिंता थी। ब्रिटिश सेना ने पुनर्विजित प्रदेशों पर सैनिकों को बंदी बनाना आरंभ कर दिया था। मई १९४५ को सिंगापुर से कैप्टन लक्ष्मी स्वामिनाथन को गिरफ्तार कर लिया गया। महिला सैनिकों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए नेताजी ने १९४५ में ही रानी झाँसी रेजिमेंट को भंग कर दिया।

आजाद हिंद फौज की महिला रेजिमेंट का जीवन लगभग दो वर्षों का रहा। इन्हीं दो वर्षों ने रानी झाँसी रेजिमेंट को इतिहास में अमर कर दिया।

साअ
७४, कैंट, कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ९७९२७३३७७७

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति श्रीवास्तव

९ मार्च, १९८७ को हापुड़ (उ.प्र.) में जन्म। कविता, कहानी, लघुकथा, हाइकु, क्षणिकाएँ लेखन। अब तक 'बाल सुमन' (बालकाव्य-संग्रह), 'कतरा भर धूप' (काव्य-संग्रह), 'अपलक' (कहानी-संग्रह) एवं पुस्तकों और विभिन्न पत्रिकाओं में तीन सौ से अधिक कविताएँ तथा रेखांकन प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'साहित्य-श्री सम्मान', 'के.बी. नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'साहित्य मंडल' श्रीनाथद्वारा से 'संपादक शिरोमणि सम्मान' से सम्मानित।

संपर्क : एमएमए-२२ इंफ्रंट ऑफ रामलीला पार्क,
एडीए कॉलोनी, नैनी,
प्रयागराज-२११००८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९६९५०८३५६५

निम से गंगोत्तरी तक

● रुक्मणी संगल

ग्रीष्मावकाश होने को था, मैंने पहले से ही सपरिवार 'गोवा-यात्रा' का कार्यक्रम बनाया हुआ था। विद्यालय को सूचित कर अनुमति भी ले ली थी। पर कहते हैं न, मन सोचे कुछ, मालिक के मन कछु और।

हुआ यों कि विद्यालय-सत्र का अंतिम दिन, प्रत्येक कर्मचारी जल्दी-जल्दी अपना कार्य संपन्न कर ग्रीष्मावकाश का आनंद उठाने को उतावला। ज्ञात हुआ कि केंद्रीय विद्यालय संगठन के आदेशानुसार हमारे विद्यालय को केंद्रीय विद्यालय, नाभा की तीन छात्राओं और अपनी एक छात्रा को निम अर्थात् नेहरू पर्वतारोहण संस्थान, उत्तरकाशी, Nehru Institure of Mountaineering, Uttar Kashi, पहुँचना है।

छात्राओं के लिए एक महिला संरक्षक का होना आवश्यक है, लेकिन कुछ व्यस्तताओं के कारण यह दायित्व अभी तक किसी को दिया नहीं जा सका। चार दिन पूर्व ही प्राचार्य महोदय का स्थानांतरण, नए प्राचार्य का कार्यभार सँभालना, ग्रीष्मावकाश का होना आदि के कारण किसी भी शिक्षिका को नामित नहीं किया गया।

वरिष्ठ लिपिक ने अपने स्तर पर सभी अध्यापिकाओं से छात्राओं को 'निम' ले जाने की बात की, किंतु विभिन्न कारणों से सभी ने असमर्थता जता दी। कोई उपाय शेष न होने के कारण लिपिक महोदय ने मुझे यथास्थिति का ज्ञान कराया, साथ ही विद्यालय की गरिमा व सम्मान का प्रश्न भी था, वरिष्ठता सूची प्राचार्य महोदय के बाद मेरा ही स्थान है। वैसे भी प्राचार्यजी को कार्यभार सँभाले अभी चार ही दिन हुए थे, यह बात मैं पहले ही बता चुकी हूँ। सत्र समापन के अंतिम दिन किसी को विवश करना न उचित था, न तार्किक। फलत: इस दायित्व को वहन करना मेरा कर्तव्य था व प्रसन्नतादायक भी।

अगले दिन प्रात: मैं अपनी ग्यारहवीं की छात्रा रुचि को ले स्टेशन पहुँच गई, गाड़ी चल पड़ी, नाभा स्टेशन वहाँ के संगीत अध्यापक अपनी तीन छात्राओं के साथ उपस्थित थे, छात्राएँ मेरे पास गाड़ी में आ गईं, अब हम पाँच हो गए, यानी पंच परमेश्वर। मध्याह्न दो बजे गाड़ी हरिद्वार पहुँच गई, उतरे, बस स्टैंड आए, ऋषिकेश की बस में सवार हुए, पहुँच गए ऋषिकेश। अब उत्तरकाशी के लिए बस अगली प्रात: मिलेगी, अत: बस-पड़ाव के पास ही 'अरविंद लॉज' का एक बड़ा कमरा हमारा रात्रि-विश्राम स्थल बना।

सुपरिचित लेखिका। धार्मिक, सामाजिक एवं साक्षरता गतिविधियों में सहभागिता। भारत के कोने-कोने में भ्रमण। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख और कहानियाँ प्रकाशित।

सायंकाल के समय का सदुपयोग करते हुए छात्राओं धर्मनगरी के देवालयों के दर्शन कराए, जैसे श्रीराधाकृष्ण मंदिर सफेद संगमरमर से निर्मित अति सुंदर व आकर्षक, रामझूला होते हुए बाबा काली कमली वाले की समाधि, स्वर्गाश्रम, गीताभवन व चोटी वाला का ट्रस्ट आदि के दर्शन, मंदिर का प्रसाद ग्रहण करते हुए वापसी यात्रा कर अपने विश्राम स्थल के पास पहुँच रात्रि-भोज ग्रहण किया। तृप्त हो अपने विश्राम कक्ष की ओर प्रस्थान, कक्ष में भयंकर गरमी, फलत: कुछ देर ऊपर छत पर प्राकृतिक वायु में चहलकदमी कर, शीतल जलपान किया, कक्ष में आए, तीन-चार घंटे विश्राम कर, जल्दी ही जगकर, छात्राओं को जगाया, नित्य-क्रियाओं से निवृत्ति ले सभी ने अपने-अपने बैग सँभाले और कक्ष को अलविदा कह बाहर आ गए।

दो मिनट की दूरी पर उत्तरकाशी की 'बस' खड़ी थी, उसमें अपनी-अपनी सीट पर बैठ गए, थोड़ी देर में ही अन्य अनेक यात्री भी आए, बस अपनी गति से चल पड़ी। मध्याह्न में उत्तर काशी बस-पड़ाव पर बस पहुँची, उतर गए। अब 'निम' कहाँ है, हम वहाँ कैसे जाए, इसकी जानकारी हमने एक बिक्री केंद्र के मालिक से ली। विक्रेता उदार हृदय फतेह सिंह नेगीजी ने तुरंत निम फोन किया, हमारे आने की जानकारी दी, हमें बताया कि निम की विद्यालय बस आने वाली है, वही हमें निम ले जाएगी। तुरंत नेगीजी ने हम सबके लिए फ्रूटी मँगाई, मैंने छात्राओं को सामने के भोजनालय में भोजन कराया, फ्रूटी का पेमेंट नेगीजी ने कठिनाई से ही स्वीकारा, मैं उनके इस व्यवहार से प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

थोड़ी ही देर में बस से हम निम पहुँच गए, कार्यालय में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। छात्राओं को देखकर वे थोड़ा विस्मित हुए, शायद मात्र छात्राओं को बुलाया गया था, पर एक छात्रा मिस मालती पहले से वहाँ शिविर में आ चुकी थी, छात्रा एंग्लो इंडियन थी, माँ ताइवाली और

पिता अपेरिकन पत्रकार, पर मालती अमेरिका कभी नहीं गई। १९८९ से १९९५ तक वह चीन में रही, उसके बाद से भारत में, भाई बंगलौर में पढ़ रहा है, यह स्वयं आंध्र प्रदेश में। अब उन्होंने संयुक्त शिविर चलाने का उपक्रम किया। हम पाँचों को एक बड़ा सा सुविधा संपन्न कक्ष दे दिया गया। रात्रि में आठ बजे सभी छात्र-छात्राओं को एकत्र कर फॉर्म भरवाए। Do's करणीय व Not Do's बताए गए, अनुशासन का पालन करना तो अनिवार्य था ही। भोजन हुआ।

अगले दिन प्रात: की चाय के बाद रेस हुई, निम वापस आकर ट्रैकिंग की कुछ क्रियाएँ, जैसे रस्सी द्वारा ऊपर चढ़ना, उतरना, तंग रास्ते से निकलना, कृत्रिम चट्टानों पर चढ़ना, उतरना जैसे अभ्यास। भोजनोपरांत पहाड़ी पर बने एक मंदिर के दर्शन कराने ले जाना था, मैंने भी साथ चलने की अनुमति ले ली। ऊँचे-नीचे ऊबड़-खाबड़ रास्तों को पार किया, भागीरथी को भी पार किया, अब चढ़ाई थी, चढ़ाई की कठिन तो लगा किंतु निदेशक श्रीमान नेगीजी के उत्साहवर्धन से प्राचीन मंदिर श्री कुट्टी देवी के दर्शन हुए। यहाँ थोड़ा सा मैदान सा था, मैं यही रुक गई, बच्चों को तो और चढ़ाई कराई गई, मैं यहीं से अकेले निम वापस आ गई। विश्राम किया, कुछ समय बाद बच्चे भी आ गए। बच्चों ने ब्रेड खाई, मुझे भी खिलाई। थकान के कारण शीघ्र ही निद्रादेवी की गोद में चली गई।

अगली प्रात: छात्राएँ तो ट्रैकिंग टूर पर चली गई, मैं दायित्व मुक्त, मेरी तरह ही मोकामा, दानापुर (बिहार) के हिंदी टी.जी.टी श्री एम.पी. झा भी बच्चों के दायित्व से मुक्त हो गए थे। समय का सदुपयोग करते हमने गंगोत्तरी जाने का कार्यक्रम बना लिया था। बच्चों के जाने के बाद हम भी कुछ आवश्यक सामान ले विद्यालय वाहन से ही 'तिलोथ विद्युत् परियोजना' से पहले वाले मोड पर पहुँच गए, वहीं अपना के. वि. भी था, सोचा दर्शन करते चले, विद्यालय गए पर प्राचार्या श्रीमती अमिता सिरोही अभी उपस्थित न थी, तुरंत बाहर आकर बाजार गए, कुछ आवश्यक वस्तुएँ खरीदीं, नाश्ता भी किया, पहुँच गए बस-स्टैंड। गंगोत्तरी जाने वाली बस पौने दस बजे आई, चढ़ गए खचाखच भरी बस में भी हमें किसी तरह आगे सीट मिल ही गई। मार्ग में संस्कृत महाविद्यालय, कैलाश आश्रम, अवधूत आश्रम, सेवाश्रम व अन्य कई आश्रम दीख पड़े, लगा यह तो आश्रम-मार्ग ही है।

बस डोड़ीताल को एक ओर छोड़ते हुए नाटा के रास्ते भटवाड़ी पहुँच गई। अब हमारी बस चढ़ाई नहीं उतराई कर रही थी। घाटी में बसे बुके व गंगनानी जैसे ग्राम आए। इसके बाद आरंभ हुई चढ़ाई, २५ मिनट बाद पुन: उतराई जहाँ मिला गंगा मैया का साथ। दोनों ओर ऊँची पहाड़ियाँ, बीच में गंगा और हमारी बस दोनों की अठखेलियाँ सी शुरू हो गई, कभी गंगाजी बस के दाईं ओर तो कभी बस गंगा के दायीं ओर, मार्ग इतना संकरा कि सावधानी हटी, दुर्घटना घटी वाली उक्ति सार्थक हो रही थी, चट्टानें भी विभिन्न रंग, रूप धारण किए थे, उन चट्टानों पर भी कहीं-कहीं घर बने दीख रहे थे, जो मेरे विस्मय को बढ़ा रहे थे। इन घरों में रहने वाले लोग कैसे होंगे? जीवनयापन की आवश्यक वस्तुए कहाँ से और कैसे लाते होंगे? यह जिज्ञासा भी जग रही थी। इसी बीच वर्षा प्रारंभ हो गई। इधर बस कभी गंगा का किनारा छूती सी प्रतीत होती तो कभी घाटी के मैदान की ओर बढ़ जाती, कहीं-कहीं गंगा अपने जलरूपी दामन को समेट सिकुड़ सी जाती और वहाँ गोल-गोल तराशे हुए दुग्ध धवल छोटे-छोटे पड़े हुए पत्थर श्वेत संगमरमरी बिछे हुए कालीन का आभास कराते से प्रतीत हो रहे थे।

ढाई बजे बस धराली पहुँच गई, जहाँ खुला-फैला हरीतिमा सें संपन्न मैदान दिखाई पड़ा, जिस पर फसल लहलहा रही थी। कैंक, सरस्वती शिशु मंदिर का भवन, सी.आर.पी.एफ. के आवास भी दृष्टिगत हुए, यहाँ से पहुँचे भैरों घाटी। वर्षा होती रही, बस चलती रही और पहुँच गई अपनी मंजिल गंगोत्तरी पर।

बस से उतरते ही रेन कोट पहना, छाता खोला और चल पड़े रैन बसेरे की तलाश में। दो चार जगह से जवाब मिला यहाँ तो फुल है। दंडी आश्रम चले जाओ, दरअसल दंडी आश्रम बाजार से थोड़ा दूर भागीरथी के तट पर बसा है। हम वहाँ पहुँच गए, आठ यात्रियों के ठहरने वाला विशाल कक्ष सं. ४६ हमें मिल गया, जिसका एक ही दरवाजा था। हाँ, अंतिम बेड के साथ खिड़की थी, वहीं झा साहब ने अपना डेरा डाला और दरवाजे के साथ वाले अंतिम पर मैंने। अपने बिस्तर पर लेटते ही मार्ग के कुछ अद्भुत नजारें याद आने लगे, जैसे बर्फ से ढकी चोटियाँ, उन पर उठते ढेर सारे धुँए के बादल, कहीं-कहीं हिमखंड ही पाषाण खंड के रूप में नीचे खिसक आए थे, कहीं बहते झरने, जो चट्टानों को स्नान कराने के साथ-साथ सड़क को भी साफ-सुथरा कर रहे थे। मोड़ इतने ज्यादा कि गणना करना भी कठिन। यदि सामने से दूसरी बस आ जाए तो किसी को पीछे हटकर एक ओर को बचकर दूसरी को निकालना पड़ता था। कुल मिलाकर प्रकृति का सौंदर्य भी चारों ओर बिखरा था तो जीवन की कठिनाइयों का जखीरा भी।

वर्षा और शीत ने हम मैदानी भागों वालों को प्रभावित किया, मिस्टर झा तो ज्वरग्रस्त हो गए, पर मैं सुरक्षित थी, जितने भी गरम कपड़े साथ थे, सभी को पहन लिया, फिर भी ठंड की अनुभूति हो रही थी। थकान इतनी कि उठकर नीचे जाने का मन नहीं हो रहा था। लेटने का भी मन नहीं हो रहा था, सो उठकर नीचे महामंडलेश्वर श्री पूर्णानंद गिरि दंडीजी के पास गई, वहाँ कई अन्य तीर्थयात्री भी उपस्थित थे, सामान्य जीवन-व्यवहार की चर्चा हो रही थी, वर्षा भी जारी थी। दंडीजी को मैंने अपने परिचय में उत्तरकाशी में एक संरक्षिका के रूप में आई थी, मेरे साथ अध्यापक भी एक संरक्षक ही है। छात्र-छात्राओं का उत्तर दायित्व तो निम ले लिया, फलत: हमें ५-६ दिन के लिए दायित्व मुक्त कर दिया गया हमने इस समय का उपयोग गंगोत्तरी-यात्रा के लिए किया। दंडीजी योतो प्रसन्न हुए किंतु कहने लगे, 'अगली बार अपने पतिदेव के साथ आना'। अच्छा लगा। अगली बार जब मैं अपने पतिदेव के साथ वहाँ गई तो दंडीजी से भेंट नहीं हो सकी, क्योंकि वह अपने आश्रम से बाहर गए हुए थे।

यह यात्रा लगभग ढाई दशक पूर्व की गई थी। अगली प्रात: जब उठी तो बाहर अर्थात् हमारे कक्ष के सामने के कक्ष का एक यात्री बता रहा था कि कैसे उसने दस रुपयों के लिए झूठ बोल दिया था। "किसी

सहयात्री ने उसे बाजार जाते समय साबुन लाने के लिए उसे दस रुपए दिए, उसने रुपए अपने लिए खर्च कर लिए। काफी देर के बाद रुपए देने वाला उसे खोजता मार्ग में मिला तो उसने उसे देख वहीं रुपए ढूँढ़ने का नाटक किया, कहा, यहीं कहीं गिर गए।" इस कहानी को सुनकर पहले तो मुझे उस पर तरस आया 'बुभुक्षित: किम् न करोति पापम्' की उक्ति याद हो आई, पर यह भी लगा कि तीर्थस्थल पर आकर भी हम झूठ व पाप को नहीं छोड़ पाते, मेरी सारी करुणा कठोरता में परिवर्तित हो गई। फिर भी कहीं-न-कहीं उन दोनों की विवशता व दारिद्रय की अनुभूति होती रही।

अचानक हिमपात होने लगा, कुछ ही देर में आश्रम के कमरों की छतें, वृक्षों की डालियाँ, घर-आँगन सब हिममय हो गए। मैंने यह दृश्य पहली बार देखा था, मैं तो देखती ही रह गई, अवाक् सबकुछ भूल गई और खो गई उस हिम में। चहुँओर हिम की मोटी-श्वेत चादर बिछ गई, हिम में ही, सीढ़ियों से नीचे उतरी, चढ़ी, फिसलते-फिसलते बची, पर मेरे अंदर व्याप्त शिशु मुझे वैसा करने के लिए प्रेरित कर रहा था। छोटे-छोटे रुई के फाहों के रूप में गिरती बर्फ ने सबकुछ ढाँप लिया मेरे आनंद की सीमा न थी, बिहारी भाई ज्वरग्रस्त होने से इस आनंद से वंचित रहे। घर का कोई भी सदस्य साथ न होने से मुझे उनकी बड़ी याद सुनाई। तभी एक फोटो ग्रॉफर वहाँ आ गया, कक्ष की छत पर हिम की चादर पर बैठकर अपनी एक फोटो उतरवाई, कम-से-कम यह तो घर में जाकर सबको दिखाऊँगी।

आश्रम की इस पाठशाला में प्रतिदिन तीन से चार सौ तक साधु-संतों का भोजन बनता है। धीरे-धीरे रवि किरणों ने अपनी चमक छिटकाई, हिम की वे श्वेत चादरें आँगन व गलियारों में खिसकने लगी, पहले से पड़ी चादर को ऊपर से गिरी चादर मोटा करती जा रही थी, सूर्य किरणों के कारण उनसे जो चमक निकल रही थी, वह धधकते सूर्य के गोले से तेज व आँखों के रेटीना के लिए घातक थी, अत: उन्हें देखने का प्रयास नहीं किया, मुझे पहले ही किसी ने सचेत कर दिया था।

चहुँओर बर्फ और जल, फिर भी आश्रम के मुख्य द्वार को पार कर बाहर आई, भागीरथी के तट पर ही गरमागरम पराँठों का एक छोटा भोजनालय, बस वही नाश्ता संपन्न किया। वापस आई तो यात्रिओं के बच्चे सिंथैटिक जॉकेट व जूते-मोजे, टोपी पहनें बर्फ के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, जिन्होंने उत्तरी ध्रुव पर होने वाले एस्कीमो की याद ताजा करा दी। पक्षियों के नाम पर कठिनाई से कुछ कबूतरों के ही दर्शन हुए। एक कोने में साधु-समाज अपने लिए चाय बना रहा है, किसी तरह बिहारी भाई उनके पास आए, उनसे चाय लेकर पी, उन्हीं से जानकारी ले अपने लिए दवाई लाए।

चारों ओर फैली धूप कितनी सुखदायी लगर रही है, बता नहीं सकती, तभी समाचार मिला कि आज उत्तरकाशी की वापसी नहीं हो सकती, क्योंकि मार्ग को बड़ी-बड़ी चट्टानों ने अवरुद्ध कर दिया है। मैं फिर बाहर निकली भागीरथी पर बने पुल को पार किया पूछपाछ कर गंगा मंदिर पहुँच गई, मंदिर गंगा के तट पर ही है, वहाँ गंगा मैया की उत्तुल तरंगे उछल-उछलकर चल रही है, मंदिर प्रांगण में प्रवेश किया, लिखित निर्देशों का पढ़ा तभी किसी वृद्धमाता ने पुकारा—कहाँ ठहरी हो? मैं विस्मित व जिज्ञासु सी उनकी ओर देखने लगी, तभी उनके वृद्ध पतिदेव ने पूछा, जानती हो इन्हें? 'हाँ, कल ही तो हमारे साथ बस में आई हैं' उत्तर दिया वृद्ध माता ने। बड़ा ही अच्छा लगा, कोई तो परिचय हुआ, यों भी परिवार कानपुर (उ.प्र.) का था। पति महोदय भी अध्यापकत्व से सेवा निवृत्त हुए थे, पुत्र दीपक भी अध्यापन की कर रहा था। अध्यापक परिवार होने से बड़ा अपनत्व सा हो गया। आप लोग 'ईशावास्यम्' आश्रम में ठहरे थे, वापसी में दंडी आश्रम से काफी पहले था। उनके साथ मंदिर में प्रवेश किया। माँ गंगा की श्वेतधवल संगमरमरी पत्थर से निर्मित मूर्ति सजी सो प्रतीत हो रही थी, दर्शनमात्र शांति और सत्त्व प्रदान कर रहे थे। बाहर बाबा काली कमली वाले का आश्रम है, वहाँ भी गए। चाय के खोखे पर आकर हम सब ने चाय पी, उन्हें वहीं छोड़ मैं प्रसन्नचित्त अपने आश्रय स्थल वापस आ गई।

मध्याह्न हो गया है, प्रकृति नए शृंगार से सज्जित हो सब को लुभा रही है, सुहावनी धूप खिली हुई है, मेघाछन्न गगन मेघों को छुपा नीलिमा लिए उपस्थित है, पर भू पर अभी भी हिम बिखरी पड़ी है, कुछ पैरों से दब-दबकर कठोर हो गई, किंतु कहीं-कहीं अभी भी अछूती, नवनीत सा नरम-नरम पड़ी है। सूर्यास्त होने को है, आकाश बादलों से भरने लगा है, किंतु वर्षा होने की आशा कम ही है। चंद्रमा चमकने लगा है, तभी बाहर जाकर मारवाड़ी भोजनालाय से भोजन की तृप्ति कर अपने कक्ष में बिस्तर पर आ लेटी समय मात्र सात बजे हैं। विश्राम करूँगी, ऐसा सोचकर लेटी रही, प्रकृति के देखे नए-नए रूपों का बंद नेत्रों से आनंद लेने लगी। हो सकता है आनंद में खोई कुछ झपकियाँ भी ली हों।

रात्रि में साढ़े नौ बजे भोजन की पुकार आई, उठी रसोई तक गई, आलू की रेशेवाली (रसीली) सब्जी बनी थी, उसे लेकर कक्ष में आ गई, सूप की तरह उसे पिया, गिलास धो-माँजकर वापस करने गई, रात्रि व्यतीत हुई, काफी देर लेटे रहने पर कक्ष से बाहर निकली। एक ओर दैनिक क्रिया-कलाप प्रारंभ हो चुके थे, दूसरी ओर प्रकृति नई सज-धज के साथ उपस्थित थी, पर्वत-शिखर हिममय दीख रहे थे, उनकी सतह भी हिमाच्छादित थी, जो बड़ी आकर्षक लग रही थी। यहाँ जल ने भी ठोस रूप धारण कर लिया था, उसे गरमाकर ही जल रूप दिया जा रहा था, मैंने भी मात्र मुँह-हाथ धोने के लिए जल लिया, जिससे शरीर शोधन कर वस्त्र बदल स्नान की औपचारिकता संपन्न की। प्रकृति की ओर देखूँ तो लगता है, यहीं रह जाऊँ, लेकिन कर्तव्य कर्म अपनी ओर खींच रहे थे, रास्तों का अवरुद्ध हो जाना मन की उद्विग्नता को बढ़ा रहा था।

सहसा सूर्योदय हुआ। निर्मल, स्वच्छ, सुखद रवि किरणों ने सारा दृश्य बदल दिया। दस मिनट बाद ही मेघाच्छन्न आकाश दृष्टिगत होने लगा। समय व्यतीत करने की दृष्टि से कल परिचित हुए परिवार से मिलने ईशावास्यम् चल दी। वहाँ पहुँची, उनसे जानना चाहा कि उत्तरकाशी मार्ग कब तक खुलेगा। इतने में बादल बरसने लगे, देखते ही देखते खेत पुष्पों से रुई की तरह हिमपात होने लगा। साथ वाले कमरें में ऋषिकेश का एक व्यापारी परिवार ठहरा हुआ था, उनके साथ दो साधु जन भी

थे, उनमें से एक फ्रेंच आर्टिस्ट, जिसका भारतीय नाम केशवनंदन था, ये लोग भोजवासा व गोमुख तक जा आए थे, मैंने भी अपनी दूसरी गंगोत्तरी यात्रा में चीडवासा, भोजवासा व गोमुख के दर्शन किए। भोजवासा में तो रात्रि विश्राम भी।

आश्रम के स्वामीजी ने सभी यात्रियों को अपने-अपने कक्ष से बाहर न निकलने का निर्देश दिया, क्योंकि हिमपात का आनंद कल लिया जा चुका है। कोई बीमार हो गया तो सँभालना मुश्किल होगा। भोजन तैयार होने पर सूचित कर दिया जाएगा। मैं भी सबके साथ कमरे में बंद हो गई। कुल मिलाकर हम बारह लोग थे। मेरा परिचित परिवार शुक्ला अर्थात् ब्राह्मण था, सेवानिवृत्त हुए अध्यापक ने दाढ़ी बढ़ाकर किसी वैरागी बाबा का सा रूप बनाया हुआ था। चर्चा का विषय शेष तीनों धाम—केदारनाथ, बदरीनाथ व यमुनोत्तरी थे तो साधु बाबा ने कुछ विशेष जड़ी-बूटियों की जानकारी दी।

वापस अपने आश्रयस्थल आ गए, नीचे ही स्वामीजी के पास उनके कक्ष के बाहर ही रुक गई, कुछ अन्य तीर्थार्थी भी वहाँ बैठे थे। लोग विवेकानंदजी राज योग की चर्चा कर रहे थे। एक परिवार मुंबई से भी आया था, मैंने उसे उस महानगरी की कुछ जानकारी जुटाई, क्योंकि अगले महीने ही मुझे वहाँ की यात्रा पर जाना था। आश्रम से बाहर आ, गंगाजी की आरती में सहभागिता की रात्रि-भोजन से निवृत्ति ले अपने आश्रय स्थल के अपने कक्ष में आ विश्राम किया। शीघ्र ही निद्रा देवी ने अपना आवरण डाल दिया। निशा का अवसान हुआ, और हुआ सुखद सवेरा।

यद्यपि पर्वत शिखर अभी भी हिमाच्छादित है, वृक्षों पर भी जहाँ-तहाँ बर्फ के दर्शन हो रहे हैं, लेकिन चारों ओर चहल-पहल दीख पड़ रही है, जन-जीवन सक्रिय लग रहा है। परम पावनी माँ गंगा के तट पर स्थित यह आश्रम अनेक साधु-संतों की आश्रयस्थली है, अनेक यात्रियों की आवाजाही, फिर भी शांत, सुखद वातावरण मानव को असीम शांति प्रदान करता है। आश्रम के स्वामी दंडी मुनि को प्रणाम कर, शीघ्रता से बस-पड़ाव की ओर बढ़ने लगे। रास्ते में ईशावस्यम् जाकर शुक्ला परिवार को पूछा-ज्ञात हुआ कि वे चले गए। अब एक बोतल में गंगा जल लिया, दो घूँट पिया और पहुँच गए बस-पड़ाव पर।

मैरों घाटी में सात-आठ किलोमीटर मार्ग में भागीरथी ने अपने को सिकोड़ सा लिया है। लंका नामक स्थान पर पुल बनाया गया है। यहाँ यह 'जैट गंगा' के नाम से जानी जाती है। यहाँ चुंगी (आज का टोल टैक्स) भी लगती है। यहाँ पर्वत श्रृंखला न होकर अलग-अलग पर्वत शीश उठाए खड़े से जान पड़ते हैं। मध्य का सर्वोच्च शिखर पूर्णत: हिममय जिस पर पड़ती सूर्य किरणें उसे स्वर्णिम आभा प्रदान कर रही है। जांगला से धराली तक बीच-बीच में पड़ी हिमशिलाएँ ऐसी प्रतीत हो रही है कि हजारों हजार फेन एकत्र हो माँ के चरणों में समर्पित हो अपने अस्तित्व को उसी में विलीन होने को तत्पर हो। बस अपनी गति से चलती हुई झाला तक पहुँच गई, जहाँ तक कल हमें टैक्सी पहुँचाने वाली थी। यहाँ गगनचुंबी चट्टानें, पर निर्वस्त्र सी, न हरियाली और न हिम ही उनकी नग्नता को ढाँप रहा था। अचानक ही सूर्य किरणों ने आकर शीत को चुरा लिया था। शीत से राहत के कारण अच्छा लग रहा था। पर यह सुख क्षणिक ही था, फिर भी हम सूखी पहुँच गए, वहाँ से थोड़ा ही आगे बढ़े कि चार पहिया गाड़ियों की एक लंबी कतार दीख पड़ी। पंद्रह-बीस मजदूर भी सड़क पर कार्यरत। आगे का मार्ग अवरुद्ध, बस की गति भी रुक गई। यात्री भी बस से नीचे उतरे, मैं भी जिज्ञासा लिए उतर पड़ी, देखा एक विशालकाय चट्टान ने सारे मार्ग में अपने को पसारा हुआ है। आधा भाग सड़क में धँसा होने से फँसी पड़ी है। मजदूरों व मशीनों के घंटों के अथक् प्रयास से उसे हटाकर खड्डे में गिराया गया, तब कहीं वाहन गतिमान हुए।

चलिए बुकी आ गया। मध्याह्न में हम भटवाड़ी पहुँचे, यहाँ बस ने २०-२५ मिनट विश्राम किया। यात्रियों ने भी चाय आदि अन्य खाद्य पदार्थ लिये। मैं बस में बैठी रही, क्योंकि मेरे पास वाली सीट पर स्थानीय युवक बैठे थे, जिनसे मैंने कुछ जानकारी ली, जैसे ऊँचाई पर बने इक्का-दुक्का घरों की कठिनाइयाँ जानी। कितना लंबा और कठिन रास्ता पार कर उन्हें आवश्यक वस्तुएँ जुटानी पड़ती है।

गंगनानी गरम कुंड के लिए जाना जाता है, जिसमें स्नान करने से चर्म रोगों से छुटकारा मिल जाता है, हमारी बस गंगनानी को एक किनारे छोड़ पहुँची लाटा वहाँ से २५ मिनट की यात्रा कर 'मनेरी भाली बाँध', जो जल विद्युत् का प्लांट है, कर्मचारियों के आवास भी यहाँ है। यहाँ से आधा घंटा की यात्रा संपन्न कर बस ने अपना लक्ष्य पा लिया, पहुँच गई उत्तरकाशी बस-पड़ाव पर। मनेरी से ही गरम कपड़े उतारने की इच्छा होने लगी थी, यहाँ तो उसे क्रियान्वित भी किया।

अपना-अपना सामान उठा, बाजार की ओर चले, डाकघर से अंतरदेशीय पत्र ले, शीघ्रता से कुशल-मंगल लिख घर के लिए प्रेषित किया, पटियाला भोजनालय पर भोजन किया, फिर चल पड़े, आज अवकाश होने से निम की बस भी नहीं थी, चलना कठिन लग रहा था, तभी चार अध्यापक तीन दुपहिया वाहनों पर किसी विद्यालय से परीक्षा लेकर आ रहे थे, उन्होंने हमें लिफ्ट दी और आधा मार्ग पार करा दिया। हमारा गंतव्य अभी दो से ढाई किलोमीटर दूर था, चले ही थे कि किसी गाड़ी की आवाज सुनाई दी, उसे रुकवाया, देखा तो गाड़ी निम की ही थी, अब तो दस मिनट में निम पहुँच गए।

निम के अपने कक्ष में पहुँचकर बड़ा अच्छा लगा, अपने बिस्तर पर लेटी, छात्राएँ भी अपने अभियान से वापस आ गई थी, मुझे आया देख वे भी प्रसन्न, उनसे मिल मैं भी प्रसन्न। अपनी-अपनी कथा सुना हम सभी

सो गए। रात्रि सुख से बीती। अगली प्रात: उठी छात्राओं को जगाया, नित्य क्रियाओं से निवृत्ति ले छात्राएँ अपने-अपने लिए चाय लेने चली गई। मैं थोड़ी देर इधर-उधर घूमती रही फिर एक छात्रा से गरम जल मँगवाकर पान किया। छात्राओं को आज भी अपने निदेशक के साथ ट्रैकिंग के लिए जाना था, अपने-अपने भोजन के पैकेट व आवश्यक सामान ले चली गईं। मिस्टर झा शेष दिन कैलाश आश्रम ठहरने चले गए, क्योंकि उनके प्राचार्यजी ने कैलाश आश्रम के स्वामीजी के नाम कोई पत्र दिया था, पर मेरा तो वहाँ कोई परिचय न था, अत: निम में ही रही।

सबके जाने के बाद आराम से स्नान, ध्यान, वस्त्र-प्रक्षालन आदि कार्य संपन्न कर कैंटीन गई, चाय पी, भैया को मध्याह्न भोजन का भी आदेश दे दिया। अपने कक्ष में वापस आकर समकालीन भारतीय साहित्य-पत्रिका से कहानियाँ पढ़ी। लगभग बारह बज गए, कमरे से बाहर निकली, धूप अच्छी लगी, कुछ देर धूप से विटामिन 'डी' लिया, भला लगा। कैंटीन जाकर भोजन ग्रहण किया, भैया ने केवल दाल-चावल सब्जी तो बनाई पर चपाती नहीं। मैं यहाँ के पार्क में गई, जहाँ बच्चे झूला झूल रहे थे, कुछ फिसलने वाली पर फिसल रहे थे, साथ ही दो महिलाएँ भी वहाँ बैठी थी, ज्ञात हुआ कि सास-बहू हैं वे, उनके श्रीमानजी किसी उच्चतर विद्यालय के प्राचार्य। वहीं पार्क में कुछ बच्चे चीड़ के बीच इकट्ठा कर रहे थे, जिनकी गिरी चिलगोजे जैसा स्वाद देती है। अनेक मिठाइयों में भी उनका प्रयोग होता है। मैंने भी वहाँ से कुछ बीच बीने। रात्रि भोजन भैया ने कक्ष में ही ला दिया। खा-पीकर विश्राम कर, कुछ पढ़कर सो गई।

अगती प्रात: जल्दी जगकर पुन: पुस्तक पढ़ने लगी चारों ओर उजाला हो गया, क्रिया-कलाप आरंभ हो गए। मैंने भी कक्ष का कपाट खोला, बाहर झाँका, निकली हॉस्टल के स्टोरकीपर साहीजी से भेंट हो गई, थोड़ी ही देर में धुआँधार बारिश, सारे भ्रमणार्थी कैंटीन में शरण लेने चले गए, क्योंकि यहाँ अनेक शहरवासी प्रात: भ्रमण हेतु आए ही रहते हैं। थोड़ी ही देर में सब समाप्त, नाटक की यवनिका की भाँति दृश्य ही बदल गया, एकदम शांत, सुखद वातावरण। अब मिस्टर साही ने हमें निम के कई मुख्य स्थल, जैसे V.I.P Guest House दिखाया, जिसमें दो परिवार एक साथ आराम से रह सकते हैं, दोनों के लिए ही दूर दर्शन, Room Heater व अन्य आवश्यक सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई है।

सब जोर देखती हुई आगे बढ़ रही थी कि एक आवास के बाह्य परिसर में एक महिला दिखाई दी। परिचय की गरज से उसके पास गई, एक दूसरे से परिचय हुआ। संयोग से उस दिन वह भी अकेली सी थी। नाम था सविता सिंह। यहाँ उनके पति मेडिकल सुपरिंडेंट के रूप में कार्यरत थे, किंतु दो दिन से किसी दूसरे ग्रुप के साथ ट्रैकिंग पर गए हुए थे।

सामने के जंगल के एक पेड़ से अंजीर से छोटा एक जंगली फल खिलाया, जिसे मैं जंगली अंगूर कहना चाहूँगी, क्योंकि उस फल का स्वाद अंगूरों जैसा ही था। भोजन का आग्रह हुआ जिसे मैंने अगले दिन के सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसी वर्ष उनका स्थानांतरण भी संभावित था। मध्याह्न का समय हो चला, उनसे विदा ले मैं अपने कक्ष पर आई। भैया कक्ष में ही भोजन दे गए, आज उन्होंने मेरे लिए चपाती भी बनाई थी। भोजनकर विश्राम किया।

अगली प्रात: बड़ी ही सुखद व ताजगी भरी लगी। बाजार जाने का भी मन बनाया हुआ था। नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो जब कैंटीन गई तो वहाँ गणवेश धारण किए चार छात्र मिले, जिससे यह सुनिश्चित हो गया कि विद्यालय वाहन जाएगा। विद्यालय वाहन से बाजार गई, फोन कर घर से बच्चों के समाचार जाने, अपनी कुशलता का समाचार दिया। वापसी में केंद्रीय विद्यालय गई। प्राचार्य महोदया अमिता सिरोही से भेंट की। सबकुछ अच्छा लगा। वापस आकर सविता सिंह के आमंत्रण का सम्मान करते हुए वहाँ पहुँच गई। स्वादिष्ट भोजन किया, वहीं विश्राम भी। इसी बीच उनको ऊन-सिलाई से आसन बनाते देखा, बड़ा प्यारा लगा, घर आकर मैंने भी उनका अनुकरण किया और सफलता पाई।

अगली प्रात: दैनिक क्रियाओं से निवृत्ति ले निम की पूजा स्थली पहुँची। एक सौ इकत्तीस सीढ़ियों की ऊँचाई पर बना है मंदिर। बैठने के स्थान बनाए गए हैं। परिसर की स्वच्छता का पूरा ध्यान रखा गया है। फुलवारी भी लगाई गई है। यों तो यह शिव मंदिर है, किंतु केदारनाथ, बदरीनाथ, ईसामसीह, दुर्गा आदि के चित्रों से भी सज्जित किया गया है। यहाँ खड़े होकर संपूर्ण उत्तरकाशी का मनभावन दृश्य आँखों में उतर जाता है। प्रकृति का साम्राज्य उसकी छटा चारों ओर बिखरी पड़ी है, जिसे देखते रहने को मन करता है।

आज संगमचट्टी से बच्चों की वापसी भी है। निम का ज्ञान हॉल भी दर्शनीय है, यों यह छात्रों की प्रशिक्षण हॉल है, जिसमें कृत्रिम चट्टानें, स्टेज, बैठने के लिए कुरसियाँ, सोफा बीच-बीच में लाल टाट-पट्टियाँ भी बिछाई गई हैं। प्रथम दृष्टया चित्रपट गृह की छवि मानस-पटल पर अंकित कर देता है।

अगला दिन, निम में हमारा अंतिम दिन था, समापन समारोह के नाम रहा, जिसमें विभिन्न क्रिया-कलाप व प्रतियोगिताएँ हुईं। मैंने कल ही अपनी छात्राओं को कविता व एक छोटी सी नाटिका तैयार करा दी थी। दो छात्राओं ने प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त कर के.वि. का भी मान बढ़ाया। यहाँ के म्यूजियम में अनेक समर्पित पर्वतारोहियों की मूर्तियाँ, पर्वतारोहण में काम आने वाली वस्तुओं की प्रदर्शनी तथा पश्चिमी बंगाल, हिमाचल, मिजोरम, नागालैंड व पंजाब जैसे प्रांतों के युगल अपनी पारंपरिक वेशभूषा में दरशाए गए थे। बिक्री केंद्र भी था, जिस पर विभिन्न वस्तुएँ रखी गई हैं, मैंने भी स्मृति-चिह्न के रूप में धातु का एक बाउल खरीदा। म्यूजियम का भवन षट्कोणीय है, विभिन्न पहाड़ी स्थलों जैसे गंगोत्तरी, जम्मू-कश्मीर, नैनीताल व डोडीताल आदि की चट्टानों के नमूने भी यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं।

आज शाम तक विदाई की सारी औपचारिकताएँ संपन्न हुई, हम निम से गंगोत्तरी तक की सुखद यादें लिये निद्रा देवी के आगोश में चले गए। अगला दिन पटियाला पहुँचने का था, सायंकाल तक पहुँचे, रात्रि में छात्राएँ मेरे साथ मेरे आवास पर रहीं, अगली प्रात: उनके संरक्षकों के साथ उन्हें विदा किया। अनेक सुखद स्मृतियों लिए यह यात्रा आज भी मेरे मानस-पटल पर अंकित है।

२८-बी, प्रेमनगर, पटियाला (पंजाब)
दूरभाष : ९४१७०८८४६६

वीरों की है धरा

• राहुल

जाने-माने आलोचक-कवि। 'प्रजातंत्र, कहीं अंत नहीं', 'जंगल होता शहर', 'महानायक सुभाष', (कविता-संग्रह), 'युगांत' (प्रबंध काव्य) चर्चित; संपादित कृतियों के साथ-साथ दर्जन भर बाल-साहित्य और राजभाषा हिंदी से संबंधित पुस्तकें भी। हिंदी अकादेमी एवं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

कभी हिम्मत न हारो

कभी हिम्मत न हारो विपत्ति देखकर।
दुख आता है जाता, यथा बुलबुला
यह है परिवर्तन का एक सिलसिला
हमने झेले हैं कितने अँधेरे जदा
पर अडिग बन के रहना है सीखा सदा
जो चला है अकेला ही अपनी डगर।
कभी हिम्मत न हारो विपत्ति देखकर॥
होए विपदा या दुर्दिन या बीमारियाँ
हो कोरोना की जैसी महामारियाँ
हमने उनको हमेशा पछाड़ा यहाँ
संकल्प-शक्ति से बढ़कर हैं ऊर्जा कहाँ
चाहे जितना भी ढाए कोरोना कहर।
कभी हिम्मत न हारो विपत्ति देखकर॥
एक आस्था व विश्वास होवे अगर
नहीं झुकता, न रुकता है जीवन सफर
देखो दुनिया कहाँ से कहाँ जा रही
दो गज दूरी एकता से बचेंगे सही
कल को होगा हमारा सुनहरा सहर।
कभी हिम्मत न हारो विपत्ति देखकर॥

एक योद्धा सा तुम भी

है हमारी परीक्षा की आई घड़ी
एक योद्धा सा तुम भी लड़ो साथियो!
वीरों की है धरा, धीरों की है धरा
हमें हिम्मत व साहस का है आसरा
जब भी आया कभी आपदा का सितम
एक होकर लड़े हैं हमेशा ही हम
शंकर बन के जहर-घूँट संप्रति पिया,
एक योद्धा सा तुम भी लड़ो साथियो!
कितने रावण, दुराचारी आए यहाँ
किंतु अब न पता उनका है वे कहाँ
यह कोरोना भी एक आतंकी युद्ध है
या कहें कि विधाता ही अब क्रुद्ध है
गौतम-गांधी सो बनकर सदा तुम जियो,
एक योद्धा सा तुम भी लड़ो साथियो!
देखो इसने मचाया है ऐसा कहर
बन गए श्मशान से हैं कितने शहर
डॉक्टर-नर्सें-पुलिस वीर बन लड़ रहे
सफाईकर्मी सेवा में जिल्लत सह रहे
किंतु कहते हैं रक्षा में निज दुख सियो
एक योद्धा सा तुम भी लड़ो साथियो!

कोरोना का काट

तुम डरो नहीं कोरोना से
अपने दिल को मजबूत करो,
है वायरस का संक्रमिक रोग
मत घबराओ, धैर्य धरो।
अफवाहों को कर दरकिनार
एहतियात जरूरी जो बरतो,
मत छुओ तुम इक-दूजे को
बचने को है अपना घर तो।
भीड़ से बचें-बचाएँ, मत बाहर खाना खाएँ,
मत उत्सव-पर्व मनाएँ और कहीं न जाएँ-आएँ।
सैनिक सा रख हिम्मत-साहस
कोरोना को दूर भगाएँ,
उपचार करें आवश्यक
मत ताली-थाली बजाएँ।
मानव तन के अंदर हैं
कितने प्रकार के वायरस,
कोरोना को भी समझो
उनमें से ही एक अणु बस।
इसलिए तुम जाँचो-परखो,
फिर देखो कितनी मात्रा?
यदि स्वस्थ पूर्णत: पाओ,
तब शुरू करो निज यात्रा।

साहित्य कुटीर, साइट-२/४४
विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ९२८९४४०६४२

अंतिम समय की बातें

● रामप्रसाद बिस्मिल

आज १६ दिसंबर, १९२७ ई. को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ, जबकि १९ सितंबर १९२७ ई. सोमवार (पौष कृष्ण ११ संवत् १९८४ वि.) को साढ़े छः बजे प्रातः काल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी। यह सर्वशक्तिमान प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म-मरण के बंधन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन-सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करता होगा किंतु अपने लिए यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती संबंधी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूँगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मांतर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्रकृति पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हुकूमत न करे। सारे संसार में जनतंत्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है। अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतंत्र न हो जाएँ, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि उसकी पवित्र वाणी-'वेद वाणी' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकूँ। संभव है कि मैं मार्ग-निर्धारण में भूल करूँ, पर इसमें मेरा विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीव मात्र ही हूँ। भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही संभव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूँ, वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ, जो काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्तों के संबंध में सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात् घटित हुई। ६ अप्रैल सन् १९२७ ई. को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। १८ जुलाई सन् १९२७ ई. को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ सजाएँ बढ़ी और एकाध की कमी भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रांत के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था, जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि जब भविष्य में क्रांतिकारी दल से कोई संबंध न रखूँगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अंतिम दया-प्रार्थना पत्र में, जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था, किंतु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमें की बहस लिखकर भेजी जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी उन्हें बड़ा संदेह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यंत्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चाताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते, किंतु काकोरी षड्यंत्र का चीफ कोर्ट का आद्योपांत फैसला पढने से भलीभाँति विदित होता है कि मुझे मृत्यु-दंड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि राम प्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्ताओं पर लांछन लगाए हैं अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, अतएव रामप्रसाद सबसे बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में माँगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रांतीय गवर्नर तथा फिर वायसराय के पास दया-प्रार्थना की गई। रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खां के मृत्यु-दंड को बदल कर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रांत की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेंबरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन-पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना-पत्र भेजा, किंतु श्रीमान् सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी। उसी समय लेजिस्लेटिव असेंबली तथा कौंसिल आफ स्टेट के ७८ सदस्यों ने हस्ताक्षर करके

वायसराय के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि 'काकोरी षड्यंत्र के मृत्यु-दंड पाए हुओं को मृत्यु-दंड की सजा बदलकर दूसरी सजा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि ये लोग पश्चाताप करें तो सरकार दंड कम दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चाताप प्रकट कर दिया है।' किंतु वायसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं. मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेंबली के कुछ अन्य सदस्यों ने वायसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्यु-दंड न दिया जाए। इतना होने पर सबको आशा थी कि वायसराय महोदय अवश्यमेव मृत्यु-दंड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयदशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिए गए कि दया नहीं होगी। सबकी फाँसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिंटेंडेंट जेल ने तार सुनाया, तो मैंने भी कह दिया कि आप अपना काम कीजिए किंतु सुपरिंटेंडेंट जेल के अधिक कहने पर एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट् के पास भेज दिया, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम-सा बना रखा है कि प्रत्येक फाँसी के कैदी की ओर से जिसकी दया-भिक्षा की अर्जी वायसराय के यहाँ से खारिज हो जाती है, वह तार सम्राट् के नाम से प्रांतीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिंटेंडेंट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल इंग्लैंड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वायसराय द्वारा अपील खारिज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे-तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवी-कौंसिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से मालूम था। वहाँ से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएँ कीं? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं। मेरी समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के सामान है। शतरंज के खेलने वाले भलीभाँति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेस के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेंबली में पेश किए गए, तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेंस के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रांतिकारी आंदोलन से कोई संबंध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम केस आर्डिनेंस के बाद चले खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिंटेंडेंट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ, और भी कुछ हथियारों के मुकदमें खुली अदालत में चलाए गए, किंतु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यंत्र केस पूरे डेढ़ साल तक अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किए गए। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे, पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध बंधेज सरकार को दिया। सरकार के कथानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों के संबंध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेक को भयंकर षड्यंत्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यंत्रकारियों के लेखबद्ध-प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों न किया? बात यह है कि जबरा मारे रोने न देय। मुझे तो भलीभाँति मालूम था कि संयुक्त प्रांत में जितने राजनैतिक अभियोग चलाए जाते हैं, उनके फैसले खुफिया पुलिस के इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबलों की हत्या के अभियोग में नितांत निर्दोष नवयुवकों को फँसाया गया और सी.आई.डी. वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यंत्र में भी अंत में ऐसा ही हुआ। सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लंबी-लंबी बातों की पोल खोलने के लिए ही किए। काकोरी के मृत्यु-दंड पाए हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों के संबंध में जो कुछ कहा था, जो काकोरी वालों ने किया। मृत्यु-दंड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शांति भंग होने अथवा कोई विप्लव हो जाने की संभावना न थी। विशेषतया जब कि देश-भर के सब प्रकार के हिंदू-मुस्लिम असेंबली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यंत्रकारियों की इतनी बड़ी सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किंतु सरकार तो अपना पास सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहाँपुर तथा इलाहाबाद के हिंदू-मुस्लिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्यु-दंड रद्द किए हैं, जिनको कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्यु-दंड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन-दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजाएँ ऐसे समय माफ की गई थीं, जबकि नित्य नए हिंदू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्यु-दंड माफ करके, दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के संबंध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहाँ तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उनमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामेंट में भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड के

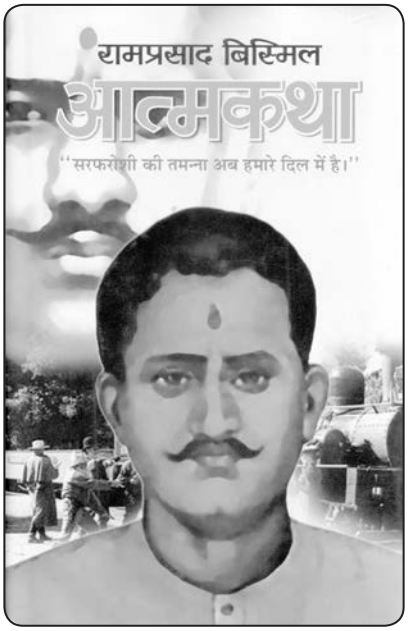

तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भलीभाँति समझ में आया है कि किस प्रकार भारत वर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूँ कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड का दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिंदुस्तान के हिंदू-मुस्लिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। गए थे रोजा छोड़ने नमाज गले पड़ गई। भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिंदुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिंदू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वायसराय ने जब हम काकोरी के मृत्यु-दंड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिंदुस्तानी नेताओं को तथा हिंदू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस पर एकत्रित को हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्य-समाजी रामप्रसाद का क्रांतिकारी दल के संबंध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतंत्रता के नाम पर हिंदू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजुर्बा था, जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फाँसी पर चढ़ने से जरा भी दुखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिंदू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से माने और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की माँग के सामने सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा। हिंदू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की मददगार तथा अंतिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूँ वही श्री अशफाकउल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फाँसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सजा बढ़ने तक श्री अशफाकउल्ला खां की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वही एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफाकउल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए, परंतु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाकउल्ला खाँ को दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुँचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फाँसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएँ उनके कार्य को देखकर सुखी हों।

श्री अशफाकउल्ला खाँ तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए, परंतु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाकउल्ला खाँ को दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुँचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फाँसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएँ उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति पुर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्तव्य समझने लग जाएँ।

प्रिवी-कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्यु-दंड उपयुक्त नहीं क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के ख्याल से मृत्यु-दंड दिया गया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रांत का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्यु-दंड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फाँसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएँ सब स्वीकार होती। पर ऐसा क्यों होने लगा? मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना

चाहता था कि यदि कोई राजनीतिक अभियोग चले तो वे कभी भूल कर के भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबीयत आए तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यंत्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी-कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फाँसी की तारीख टलवा कर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अंत में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके, तो जेल से निकल भागूँ। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फाँसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेक प्रयत्न किए, किंतु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यही तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रांतिकारी आंदोलन तथा षड्यंत्रकारी दल खड़ा किया था, वहाँ से मुझे प्राण-रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका। अंत में फाँसी पा रहा हूँ। फाँसी पाने का मुझे कोई भी शौक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूँ कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रांतिकारी षड्यंत्रों में भाग न लें। यदि देश-सेवा की इच्छा हो तो खुले आंदोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देश-सेवा हो सकती है, जो ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आंदोलनों में परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिए करो, वही बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अंत में मन-ही-मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देशवासियों से यही अंतिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

सा अ

सैनिक का संदेश

कविता

• शंकर लाल माहेश्वरी

घर की सब सुविधाओं से
वंचित रहकर जीना सीखा,
मातृभूमि की रक्षा के हित
कभी न हमने पीछे देखा।

रात-रात भर जगकर हमने
गहरी नींद में तुमको देखा,
चिंता मुक्त रहकर भी तुम
क्यों करते हो हमसे धोखा?

जब-जब भी दुश्मन ने वार किए
जान हथेली पर रखकर के,
तुम्हें सुरक्षित रखने को हम
सदा सर्वदा तैयार रहे।

घर का भेदी लंका ढावें
मत तुम ऐसा काम करो,
मातृभूमि की रक्षा के लिए
मिल-झुलकर सब साथ रहो।

सत्य अंहिसा के पोषक हो तुम
विश्वशांति के दूत रहो,
सीमावर्ती क्षेत्रों से अब तुम
अलगाववादियों से दूर रहो

राष्ट्र एकता के खातिर अब
संकल्पित होकर बढ़ते रहो
भेदभाव सब भूल भुलाकर
सही मार्ग पर चलते रहो।

भारत माँ की बलिवेदी पर
जितने सैनिक शहीद हुए,
सलाम है उनकी शहादत को
जो राष्ट्रहित में तने रहे।

रहो एकजुट होकर तुम अब
जैसे मणियों की माला हो,
जयचंदी लोगों के लिए अब
अपने घर में ताला हो।

देश हमारा सबसे प्यारा
विश्वगुरु कहलाता है,
सत्य, अहिंसा और शांति का
मार्ग यह बतलाता है

शान रहे और आन रहे
भारत माँ का बस मान रहे,
हमसब लोगों को अब
राष्ट्र अखंडता का ध्यान रहे।

सा अ

पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
पोस्ट-आगूंचा, जिला-भीलवाड़ा (राजस्थान)
दूरभाष : ९४१३७८१६१०

दोपहरी

● वंदना यादव

"दिन छोटे होते जा रहे। पहिले तो दोपहिया में घर जाती रही, अब यहीं फूल पत्तोंईन के संग बईठती हूँ पारक मा। साम का काम खतम करके एकही बार जाऊँगी घर।" ऊँची-ऊँची रिहायशी इमारतों के बीच बने बगीचे में बैठी शगुन मोबाइल पर किसी को अपनी दिनचर्या की ताजा जानकारी दे रही थी।

"ऐ सगुनी, तूँ बजार गई थी न, ले आई लछमी-गणेश?" सुबह-शाम साथ आने-जाने वाली प्रिया भी अपना काम खत्म करके बगीचे में जमने वाली मंडली में शामिल होने पहुँच गई।

"ना, अभी पगार कहाँ मिली? हाथ में पइसा होगा तबही ना खरदेंगे; क्यूँ तूँ ले आई का?"

"कब लाई? पैइसा हाथ-पल्ले होगा तबही लाएँगे, अभी पगार कहाँ मिली?" दोनों की परेशानी एक जैसी थी।

"कितनी भी कोशिश करके देख लेओ, सात-आठ तारीख से पहले ना मिलने की पगार।" कृष्णा अपने खालिस उत्तराखंडी लहजे में बड़बड़ाती हुई बगीचे के गहरी छाँया वाले नीम के पेड़ के नीचे आ पहुँची।

"कहने को ये लोग महँगे-महँगे फलेटन में रहती हैं, पर एक तारीख को इनकी जेब में पल्ली नहीं होती हमारे हाथ में धरने को···" कहती हुई वह धम्म से हरी घास पर बैठ गई। जितना गुस्सा उसे तनख्वाह न देने वाली फ्लैट में रहने वालियों पर आ रहा था, वह सब उसने धरती पर उतार दिया।

"इहाँ तो सब जगह दोनूं कमाने वाले लोग ही रहते हैं। करोड़, दो-करोड़ के फ्लेटन में रहते हैं जे लोग, पैईसे की कोनो कमी नहीं है इनके पास, पर उ जानती हैं कि इधर एक तारीख को पैइसे दिए उधर अगले ही दिन तुम बिन बताए उसका काम छोड़कर जहाँ दो पैईसा जादा मिलेगा ऊ घर पकड़ लेओगी। तुम्हारे लच्छन ऐसे हैं तबही ना।" शगुन ने उसे

लेखक, मोटिवेशनल स्पीकर, एंकर एवं समाज-सेविका। 'कितने मोर्चे' उपन्यास के साथ 'अब मंजिल मेरी है' मोटीवेशनल पुस्तक सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं में मानसिक स्वास्थ्य, महिला अधिकारों एवं समसामयिक विषयों पर निरंतर लेखन। 'सृजन साहित्य' सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

आईना दिखाया।

"मेरे लछन··· तुमको भी तो नहीं मिली पगार, फिर तुम्हारे लच्छनों को का हुआ, हूँ?" कृष्णा ने शगुन की आँखों में आँखें डालकर भौंहों को सवालिया अंदाज में घुमाते हुए कहा।

"गुस्सा तो तुम्हारे नाक पे धरो रहत है। तोहार बात ना कह रहे, उन फ्लैट वालियन की कह रहे। उ यही तो कहती हैं, हम सबके बारे में तबही पाँच-सात दिन ऊपर चढ़ाकर पैइसा देती हैं कि कोई बीच में काम ना छोड़ देवे।" तीनों के अतिरिक्त दोपहर को सुस्ताने पहुँची मंडली की कुछ ओर सखियाँ इस बात पर फीकी सी हँसी हँस दीं।

"तुम्हारे लिए दीबाली बड़ा त्योहार है, है ना।" सोमिष्ठा शुरुआत के मुद्दे पर लौट गई।

"क्यूँ तुम्हारा नहीं है? दीवा नहीं जलाओगी घर के बाहिर?" शगुन ने उसे आड़े हाथों लिया।

"दीबाली बाद में आएगा, हमारा तो उससे पहले ही पूजा शुरू हो जाता है··· दुर्गा पूजा। हमारे लिए एक दिन का त्योहार नहीं है ना, पूरा नौ दिन का पूजा होता है।" सोमिष्ठा ने अपने अंदाज में कहा।

"दस दिन दुर्गा पूजा उसके बाद दीपावली भी!" प्रिया ने चेहरे से पसीना पोछकर मास्क को दोबारा मुँह पर लगाते हुए कहा। वह त्योहारों की लंबी कतार पर हैरान थी।

"हाँ! हमारा बड़ा त्योहार दुर्गा पूजा है, जैसे तुम्हारा दीबाली! एतना

दिन का पर्व और किसी का नहीं होता।" सोमिष्ठा शायद अपनी संस्कृति के बारे में कुछ ओर भी बताती मगर उसकी बात बीच में काटना सुप्रिया के लिए जरूरी हो गया था।

"हमारा भी तो दस दिन का पूजा होता है गणपति बप्पा की स्थापना से लेकर बिसर्जन तक। सारा घर पीले रंग में रँग जाता है। मोदक का परसाद और सुबह-साम की आरती, भोग लगाना अउर सारा दिन लोगों का आना-जाना लगा रहता है।" इतना कहने के साथ ही "गणपति बप्पा मोरया अगले बरस तू जल्दी आ" का जाप ना जाने कब उसके मुँह से शुरू हो गया। सारी सहेलियों ने उसके साथ अपने-अपने अंदाज में गणपति बप्पा को अगले वर्ष जल्दी आने की याद दिलवाई।

"यहाँ मनाई तुमने गणेश चतुर्थी?" कृष्णा ने पूछा।

"ये लो, कौन सी दुनिया में रहती हो तुम? पूरे मोहल्ले ने मोदक का परसाद खाया, कीर्तन किए, फिर गणेशजी को जल में बिसर्जन करने के लिए सारा मोहल्ला इकट्ठा हुआ।" इस बार सुप्रिया का माथा जैसे गर्व से ऊँचा हो गया था।

"इसको कइसे मालूम होंगा, तब ये हमारे साथ नहीं ना थी।" शगुन ने टोका।

"क्यों सुपरिया, तुम कहाँ थी? आती-जाती तो अब भी नहीं हो हमारे साथ, कहाँ रहती हो?" यह मंडली की स्थानीय सदस्य लक्ष्मी थी।

"यहीं रहती हूँ।" सुप्रिया ने गहरा साँस छोड़ा।

"का हुआ, एको तुमही थोड़ी परसान हो, सबही को बरोबर मार पड़ी है। मन का बात को मन मा रखकर भी का कर लोगी? बता ही दो।" शगुन ने ठेठ बिहारी अंदाज में नसीहत दी।

"का बताएँगे, सब तो मालूम है। जो सबके साथ हुआ, वही हमारे साथ हो रहा है। बस किसी तरह रोटी का गुजारा कर ले रहे हैं।" आने वाले त्योहारों की रौनक जिस तरह आई थी, उसी तेजी से सबके चेहरों से गायब हो गई।

"का हुआ तुमरी नौकरी को? इहाँ कईसे पहुँची भाई!" मंडली से आवाज आई।

"ये इसकूल है ना (सुप्रिया ने उँगली के इशारे से विशालकाय इमारत की ओर सबका ध्यान खींचा) उहाँ छोटे बच्चों की किलास में एक मैडम पढ़ाती है और एक सहायिका रहती हैं, हम ओ ही थे, सहायिका। इसकूल बंद होने से मैडम के साथ-साथ हमारी नौकरिया भी जाती रही।"

किसी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। मौके पर मौजूद सभी सहेलियों की जीभ इस चिर-परिचित स्वाद से एक बार फिर कसैली हो गई। जिस सच्चाई को भुलाकर उनमें से कुछ अपने एक घंटे की छुट्टी का आनंद लेने पहुँची थीं, वे सभी इस स्वाद को गुटके की पीक के समान थूक देना चाहती थीं, मगर वह सबके मुँह में अर्थव्यवस्था पर कोरोना वायरस की तरह जमकर बैठ गया था।

"परिवार कहाँ है तुम्हार?"

"इस इसकूल में मेरा पति पिरिंसीपल ऑफिस का काम देखते रहे, हम दोनों की नौकरी एको साथ चली गई।" उसकी आवाज में मायूसी थी।

"तो कहाँ रहती हो अब? का काम करती हो?" गरीबी रेखा से नीचे का तबका भूख की इकलौती मार झेलता है, उनको मध्यम और उच्च वर्गीय लोगों के समान समाज में अपने मुकाम को लेकर झूठ, दिखावे और काम की सच्चाई छुपाने की दोहरी मार नहीं झेलनी पड़ती। इस मामले में यह तबका दिखावट और झूठ पर विजय हासिल कर चुका है।

"इस टेम आदमियों की नौकरियाँ चली गई हैं, औरतें फिर भी घरों में काम-धाम करके अपने घर का चुल्हा जला ले रहीं। अब मैं ही काम करती हूँ। जैसे-तैसे करके काम चला ले रहे। उम्मीद है कि बिमारी खतम होगी और इसकूल खुलेंगे तो हमको दुबारा काम मिल जाएगा।"

"आजकल यही हाल है सबका। बजार और काम बंद हुए हैं, तब से आदमियों की नौकरिएँ जाती रहीं, औरतें घरों में काम करके अपनी गृहस्थी खींच रही हैं। पहले कहते थे कि आदमी नहीं होगा, तब सब लोग भूखे मर जाएँगे। का खाएँगे? पर अब तो यही है कि जिस घर में औरत नहीं है, वही लोग भूखे मर रहे हैं।" लक्ष्मी ने कहा।

"ठीक कह रही हो, हर परसानी से, हर जुग में औरत ने ही पार लगाया है। अपने परिवार की नय्या हो या समाज की···दुर्गा की पूजा भी तो तब ही करते हैं, वह औरत है, शक्ति का रूप।" लक्ष्मी ने निराशा की ओर बढ़ते माहौल को उम्मीद का टिमटिमाता दीपक थमा दिया।

"औरत और धरती, दोनों एक्को ही हैं। अपनी देह पर धरती सबकी पैदावार और पालन-पोसन करत है, औरत भी पैदा करने से लेकर जिनगी भर परिवार का पालन-पोसण करती है। हम ही शक्ति हैं जिज्जी।" कृष्णा को अपने महिला होने पर गौरव की सी अनुभूति हुई।

"हाँ, औरत ही तो देवी हैं, जिनकी पूजा होती है लाल साड़ी में।" इस बार सब सहेलियों ने प्रिया की बात पकड़ ली।

"लाल साड़ी, बहुत मन है तुम्हारा लाल साड़ी पहिनने का।" एक-दो इस बात पर हँसने लगीं।

"औरत और धरती, दोनों एक्को ही हैं। अपनी देह पर धरती सबकी पैदावार और पालन-पोसन करत है, औरत भी पैदा करने से लेकर जिनगी भर परिवार का पालन-पोसण करती है। हम ही शक्ति हैं जिज्जी।" कृष्णा को अपने महिला होने पर गौरव की सी अनुभूति हुई। "हाँ, औरत ही तो देवी हैं, जिनकी पूजा होती है लाल साड़ी में।" इस बार सब सहेलियों ने प्रिया की बात पकड़ ली।
"लाल साड़ी, बहुत मन है तुम्हारा लाल साड़ी पहिनने का।" एक-दो इस बात पर हँसने लगीं।

"हाँ, करवा चौथ पर माँ-घर से आएगी हमारे लिए लाल साड़ी।" वह अपनी धुन में बोलती जा रही थी।

"हमारे त्योहारों की कथा तो हमको मालूम है पर तुम्हारे त्योहार की कोई खबर नहीं है। तुमको मालूम है क्या कि ये दुर्गा पूजा क्यों मनाई जाती है ? बाजार में इसकी कोई कथा-कहानी की किताब भी तो नहीं मिलती!" लक्ष्मी ने सोमिष्ठा से कहा।

"गजब! यही सवाल आज हम अपनी सास को पूछे। उ कह रही थी कि अंगरेजन ने लड़ाई लड़ी थी, तबही से मनाना सुरू हुआ।" शगुन के अल्पज्ञान ने उसे प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों द्वारा मुगल शासक को युद्ध में हराने के इतिहास से अनजान ही रखा था। जब उसे युद्ध के बारे में जानकारी नहीं थी तब जान-माल के भारी नुकसान और हुक्मरान अंग्रेजों के प्रार्थना स्थल ध्वस्त करने के बाद हिंदू राजा की सलाह पर ईश्वर को धन्यवाद करने के लिए विशालकाय आयोजन से दुर्गा पूजा की शुरुआत की बात भी अजूबा ही थी।

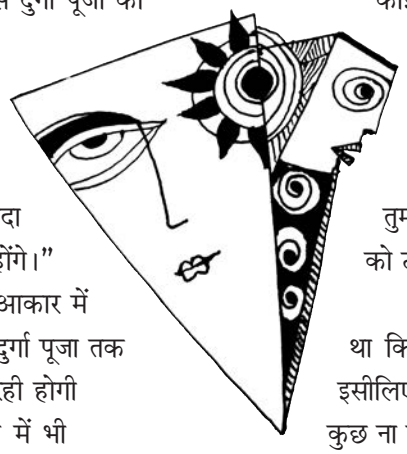

"मैंने किताब में पढ़ा था कि अंग्रेजों ने हमारे लिए कुछ अच्छा काम भी किया था, जैसे दुर्गा पूजा। वइसे हमारे वहाँ बड़े उमर के लोग बताते हैं कि कई पीढ़ियों से चल रहा है दुर्गा पूजा। ज्यादा भी नहीं तो भी दो-चार सौ साल से तो मनाते ही होंगे।" सोमिष्ठा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को और बड़े आकार में खोलते हुए कहा। उसकी शिक्षा में अंग्रेजों ने सिर्फ दुर्गा पूजा तक ही काम किया था, शायद यहीं तक उसकी रुचि रही होगी अन्यथा वह सती प्रथा और बाल विवाह के संबंध में भी जरूर कुछ कहती।

"हमारे गणपति पूजा का इतिहास भी ऐसा ही है, कई सौ साल पुराना। सुरू-सुरू में राजाओं के महलों में फिर मंदिरों में ऊँची जाति के लोगों ने मनाया। बहुत बाद में भाईचारे के लिए आम लोगों के बीच बप्पा आए। वैसे दो-चार सौ साल इसको भी हो गया है।" सुप्रिया ने परिवार में सुनी-सुनाई बातें दोहराते हुए दो सौ वर्षों के अंतराल को हवा में उड़ा दिया।

"ऐसो हुआ होगो तबही ना सब लोगन में त्यूंहार मनावे की मंशा बनी रही। त्यूंहार भी तो तबही जिंदा रहते।" बुंदेलखंडी लहजे में प्रिया ने आकलन किया।

"हाँ, हम गरीब लोग ही तो जिंदा रखे हैं त्यूंहारन को, और का। उनके लिए तो मनोरंजन के भौत साधन हैं एक हम हैं जो गाम आना-जाना, त्यूंहार मनाना करते हैं। बच गयो तुम्हारे गणपति बप्पा को त्यूंहार। मंदिरन में बंद होतो तो बंद ही हो गयो हतो।" प्रिया ने अनजाने में ही वर्ग आधारित समाज और जनसंख्या के आँकड़ों की तस्वीर खींच दी।

"त्योंहार तो सबही अच्छे पर छठ पूजा जैसा कठिन व्रत ओर नहीं। सबके यहाँ मूर्तियों की पूजा होती है, हमारे चार दिन की पूजा में सब परकरती के लिए पूजा करते। सूरज, पिरथवी, जल और धरती पर पैदा होन वाली सब्जी, अनाज, फल¨¨छठ मैया की पूजा में पूरा परिवार शामिल रहता है। सब बिहारियों का घर में पूजा होता ही है। ठेकुआ बनता है, नियम बहुत कठोर है पूजा का।" वह बोलती जा रही थी।

"मालूम है तुमको, सब लोग पीला रंग पहिनते हैं।" जरूरी बात जो बतानी छूट गई थी, बात खत्म करने से पहले उसे याद आ गई।

"हमारा दुर्गा पूजा में भी सब दिन अलग-अलग तरह से पूजा होता है। प्रसाद का खिचड़ी तो तुमने खाया ही होगा। एक दिन सात सब्जियों के अलग-अलग पत्ता डाल कर भी सिरफ पत्ता का शाक बनाते हैं।" बोलते समय अपनी बात को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सोमिष्ठा अपनी आँखों को ओर बड़ा खोल लेती थी।

"गणपति बप्पा की पूजा के दिनों में सोने जैसा रंग पहनते सब कोई। एकदम सुनहरी पीला रंग में रँग जाता है सबकुछ।" सुप्रिया के लिए सबकी बात बीच में काटकर अपनी बात रखना जरूरी हो गया था।

"ऐ तुम यहाँ काहे आईं भइ ? यहाँ पर रहने वाले लोगन तो अपने गाम को भग्ग गए और एक तुम हो कि उल्टी दिसा को दौड़ीं!" प्रिया ने सोमिष्ठा को टोका।

"मैं जब इसकूल में पढ़ती थी, किताबों में लिखा था कि दिल्ली जितनी बार उजड़ी, दोबारा बस गई। बस इसीलिए आई हूँ कि सबकुछ खतम हो जाएगा, तब भी यहाँ कुछ ना कुछ तो बचेगा जरूर। और जब कुछ-ना-कुछ जरूर बचेगा तो उसमें हो सकता है हम भी बच जाएँ।" वह मुसकरा रही थी।

"तुमको जकीन है कि इहां वाले लोगन बच जांगे।" एक गहरी आवाज उभरी।

"हूँ। लगता तो ऐसा ही है।"

"अगर बच गए ना, तब तो हम भी तोहरे साथ तुमरी दुर्गा पूजा मनावेंगे।" शगुन ने कहा, "तुम्हारे कौन सा रंग पहना जाता है पूजा में ?" लक्ष्मी की जिज्ञासा अब तक शांत नहीं हुई थी। निरक्षरता इनसान की प्रगति में बाधाएँ डालती है। जानकारी जुटाने की सीमा भी इन्हीं में से एक है अन्यथा हाथ में पकड़ा मोबाइल जो अक्षर ज्ञान के आभाव में उससे खाली समय में वीडियो दिखाकर मनोरंजन के लिए उकसाता है, उसी से वह अपनी जानकारी बढ़ा सकती थी।

"हमारे नौ दिन, नौ दुर्गा की पूजा में हर दिन अलग-अलग रंग पहिनते हैं।"

"सुन रही हो जिज्जी, हमको तो लगत है कि पहले-पहल दिल्ली में पुरानी फिल्मों की तरियाँ सिरफ तीन रंग होत। केसरिया-लाल लछमी पूजा अऊर दीबारी के लिए, सफेद गुरु पूरब के और हरा ईद के दिन

का। हमको तो पूरा जकीन है कि यहाँ के लोगन को रंग हम बाहिर से आ कर बसे लोगन ने ही दिए हैं। मने, सगरे रंग हमारे हैं।" वह अपनी बात खत्म कर चुकी थी।

"यही नहीं पूरे देस में एक-दूसरी जगह से आकर बसे लोगन ने रंग भरे हैं, नहीं तो कम से कम दिल्ली के लोगन तो सिरफ तिरंगे कपरे ही पहनते।" उसने अपनी बात दोहराई।

"दिल्ली सहर इहां आसपास के रहने बारे हिंदुओं, सिक्खों और मुसलमानों का था। इहां इन लोगों के रीति-रिबाजों के मुताबिक ही कपड़े-लत्ते मिला करते। अब सोचो कि अगर हमारे जैसे लोग यहाँ-वहाँ से आ कर इहां अपना घर ना बसाते तो का होता!" कृष्णा की बात पर सब हँस पड़ीं।

"इसका मतलब देश के झंडे का रंग था दिल्ली में। बाहर से आने वालों ने बाकी रंग दिए इसे।" लक्ष्मी ने अपना आकलन बताया।

"ब्लैक एंड व्हाइट फिल्मों की तरह देश की राजधानी दिल्ली, लाल सफेद और हरे रंग की रहती। जो गणपति और छठ पूजा के रंग हम लाए हैं, वो सोने से चमकते रंग यहाँ कभी ना आते।" लक्ष्मी की बात को अनसुना कर सुप्रिया ने अपनी संस्कृति पर गर्व करते हुए कहा।

"हम लोग नहीं आता तब हमारा दुर्गा पूजा का रंग भी तो''हेलो''हेलो मैडम।" सोमिष्ठा अपनी संस्कृति के बारे में बताना चाहती थी, मगर बीच में आए फोन के कारण उसका वहाँ से उठ कर दूर जाना जरूरी हो गया।

"इसका मतबल दिल्ली को हमीं ने रँगा।"

"हाँ, दिल्ली भी औऊर पूरा देश भी हमरे रंगो से रँगा है और का। नहीं तो जो जहाँ रहता, वहीं के रंग पहिनता, वहीं के त्यूंहार मनाता। काम की तलाश में निकरे हमारे जैसे लोगों ने सबको रंग दिया।"

इसी बीच मंडली की ओर तेजी से लौटती सोमिष्ठा की ओर एक-दो सहेलियों का ध्यान गया। इससे पहले कि कोई उससे कुछ पूछती, अपना बटुआ उठा कर उसने वहाँ से जाने के लिए कदम बढ़ा दिया।

"अरे बइठो तनिक, चली जाना। का जल्दी है जाने की? उ घर भी वहीं रहेगा अउर उ काम भी तुमरे इंतजार में वहीं पड़ा रहेगा। कोई अउर ना करिहें तुहार हिस्से का काम।" कहते हुए दोपहर में जमने वाली बैठक की धाकड़ ने सोमिष्ठा का हाथ मजबूरी से पकड़ लिया।

"मेरी मैडम का फोन था। उनके घर किसी का एक्सीडेंट हुआ है, वो हॉस्पिटल जा रही हैं। मुझे जाना है, मेरा हाथ छोड़ो, दीदी।"

"अरी चली जाना, तनिक सबर करो। इतनी हड़बड़ी अच्छी नहीं भाई। यह एक घंटा तुम्हार लिए है। आराम से जाओ, यह नहीं कि तनिक आवाज आई नहीं कि दौड़ी-दौड़ी पहुँच गई।" कद्दावर ने खिल्ली उड़ाते हुए मंडली की ओर देखा। जैसा हमेशा से होता आया है, उस परंपरा से नया बसा उपनगर महरूम नहीं था। रोबदार की मुसकराहट पर हँसी लुटाने वालियाँ तैयार थीं।

"दीदी, मेरी मैडम की बिटिया स्कूल से आने वाली है, मुझे जाना है। आधा घंटा बाद जाऊँगी, तब तक मैडम को हॉस्पिटल जाने में देर हो जाएगा।" सोमिष्ठा ने एक बार फिर मनुहार की।

"तुम लोगन ने ही मैडमों का सिर आसमान पर चढ़ाया है। जे नहीं कि अपने हक की बात करें। उ जब आबाज लगाएँगी तूम्हार जैसी पहुँच जाती हैं पूँछ हिलाती-हिलाती। तनिक सलीके से रहा करो। कम करने का भी ढंग होता है।"

"त्योहार और जन्मदिन पर वो लोग हमको अलग से गिफ्ट देती है वो ठीक है, पर हम उनके लिए कुछ नहीं करें, आप ऐसा कैसे सोचती हो दीदी?" इस बार उसने अपना हाथ छुड़वा लिया और बगीचे से बाहर जाने वाले रास्ते की ओर बढ़ गई।

बगीचे की सारी चहचहाट और चटख रंग सोमिष्ठा अपने साथ ले गई। मंडली में सन्नाटा पसर गया।

"जितना भी काम होवे, दुपहरिया के इस एक घंटे के पीछे सब जल्दी-जल्दी हाथ चलाकर खट-खट निपटा देती हूँ। ये एक घंटा कहाँ जाता है, मालूम नहीं लगता, ऊपर से आज तो मने बिल्कुल खबर ही नहीं हुई। चलो, चलती हूँ आज अगर पगार मिल गई तो जैसे हम लोगन ने सगरे देश को रँगा है, अपना घर भी रँग दूँगी। राशन भरवाऊँगी तो बच्चों के सूखे मूं पर चमक आजागी, रंग भर जांगे हम पर भी।" शगुन की बात के साथ ही दोपहर की एक घंटे के लिए जमने वाली बैठक समाप्त हो गई।

"बगीचा बेरंग हो गया।" लक्ष्मी ने मंडली को जाते देखकर कहा।

"हमारे गाम में इतना काम नहीं है, तबही अपना देश छोड़कर यहाँ आए हम। उधर मेहनत का उतना पइसा भी नहीं मिलता। आप कहती हैं कि यहाँ पइसा मिलता है तो भी हम काम ना करें! एक तो पहिले ही फुल टाईम बोलकर सिरफ आठ घंटे की नौकरी करते हैं, उस में भी घंटाभर की छुट्टी अउर फिर रोज-रोज थोड़ी देर से जाऊँ। उ लोग हम पर भरोसा करें भी तो कैसे दीदी?" सोमिष्ठा ने बगीचे से बाहर जाते हुए कहा था।

सोमिष्ठा के जाते ही सब चली गईं··· "सब रंग चले गए।" उसके कान में धीरे से आवाज आई।

४१०२, लॉर्डस अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. ७,
निकट ओपीजी स्कूल, सेक्टर-१९बी,
द्वारका-११००७५ नई दिल्ली
दूरभाष : ९८७११२८८६९
yvandana184@gmail.com

भगत सिंह और भाग्य

● राजशेखर व्यास

भगतसिंह और 'भाग्य'! निश्चय ही भगतसिंह के बारे में थोड़ी सी भी जानकारी रखनेवालों के लिए यह बात विस्मयजनक है। आम तौर पर भगतसिंह के बारे में यह एक निर्भ्रांत तथ्य है कि वह एक घोषित नास्तिक थे, फिर भला 'भाग्य' से उनका क्या वास्ता हो सकता है!

मगर हो सकता है नहीं बल्कि था।

तेईस वर्ष की छोटी सी जिंदगी के मालिक भगतसिंह का नन्हा सा जीवन भी सौभाग्य और दुर्भाग्य की एक लंबी यातना-कथा है।

इतिहास अपने चमत्कारपूर्ण किस्सों के लिए मशहूर है, पर क्या यह चमत्कार नहीं है कि केवल बाईस-तेईस वर्ष का एक नौजवान राष्ट्र-यज्ञ की पूर्णाहुति की तैयारी कर रहा था, जो साधनों के नाम पर शून्य था और साथियों के नाम पर 'आत्माहुति' ही जिसकी एकमात्र शक्ति थी।

हमारे लोकगीत गायकों ने लैला-मजनू, हीर-राँझा के समर्पणों को तो घर-घर पहुँचा दिया है, पर आत्मार्पण की यह कथा अछूत सी क्यों रही? स्वामी विवेकानंद उनतालीस वर्ष की उम्र में, महामानव ईसा तैंतीस वर्ष की उम्र में और महापुरुष शंकराचार्य तीस वर्ष की उम्र में अपना काम कर गए थे। मगर भगतसिंह ने बेहद तेजी से इन सबका रिकॉर्ड तोड़ दिया और सिर्फ तेईस वर्ष की उम्र में दुनिया को अपना चमत्कार दिखा दिया।

बचपन में जब भगतसिंह सगाई का नाम सुनकर घर से भाग खड़े हुए थे, तब माँ विद्यावतीजी पर मानो वज्रपात हो गया, उनके सपनों पर पानी सा फिर गया। वह लाहौर के ग्वालमंडी में एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास गईं। उसने उनसे भगतसिंह का कोई कपड़ा माँगा। इस पर जब उनकी पगड़ी पेश की गई तो कुछ देर मंत्र पढ़कर ज्योतिषी ने कहा, 'तुम्हारा बेटा कुछ दिनों बाद ही आ तो जाएगा, मगर फिर चला जाएगा। इस लड़के का भाग्य भी अद्‌भुत है। या तो यह तख्त पर बैठेगा या तख्ते पर झूलेगा।'

क्रांतिकारी परिवार की श्रीमती विद्यावतीजी के विचारों में 'तख्त' कहाँ से आता, तख्ता ही घूम गया और उन्हें लगा, जैसे एक साथ अनेक बिच्छुओं ने डंक मार दिए हों। अपने बुढ़ापे में जब वह इस घटना को सुनातीं तो मानो कहीं दूर खो जातीं और फिर निकल पड़ते उनके मुखारविंद से चमत्कारों के अजस्र संस्मरण और किस्से-पर-किस्से।

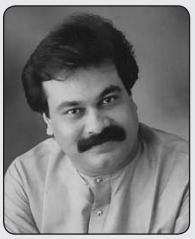

सुपरिचित लेखक, संपादक एवं निर्माता-निदेशक। केवल १२ वर्ष की वय में पितृविहीन हो चले 'यायावर'। ५९ से अधिक क्रांतिकारी ग्रंथ, ४००० से ज्यादा लेख देश-विदेश के सभी अखबारों में प्रकाशित; २०० से ज्यादा वृत्तचित्र, कार्यक्रम, रूपक, फीचर, रिपोर्ताज टी.वी. पर प्रसारित। भारतीय दूरदर्शन में सबसे अल्पायु के आई.बी.एस. अधिकारी 'अतिरिक्त महानिदेशक'।

□

उन दिनों भगतसिंह का मुकदमा चल रहा था। उनके गाँव के बाहर एक साधु आकर बैठ गया। उसने धूनी जलाई। दो-चार दिनों में ही उसकी सिद्धि की चर्चा गाँव भर में होने लगी। किसी ने विद्यावतीजी से कहा, 'उस साधु के पास जाओ, शायद भगतसिंह बच जाएगा।' उन्हें ऐसी बातों पर बहुत विश्वास तो नहीं था, मगर फिर भी माँ की ममता ने जोर मारा और वह रात के समय कुलवीर को लेकर उस साधु के पास गईं। उसने कुछ पढ़कर एक पुड़िया में राख उन्हें दी और कहा कि इसे भगतसिंह के सिर पर डाल देना।

जब मुलाकात का दिन आया तो वह राख साथ ले गई और भगतसिंह के पास बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरने की कोशिश करने लगीं, ताकि धीरे से राख उनके सिर पर डाल सकें। उनका हाथ अभी भगतसिंह के सिर तक भी न था, वह अभी कमर ही थपथपा रही थीं कि भगतसिंह बोले, 'बेबे, जो राख मेरे सिर पर डालना चाहती हैं, वह कुलवीर के सिर पर डालिए, ताकि वह हमेशा आपके पास रहे।'

माँ बताती थीं, 'मेरे लिए यह एक आश्चर्यजनक घटना थी। मैं बहुत दिनों तक यह सोचती रही कि मेरे मन की बात आखिर उसे पता कैसे चली?'

उन्हीं दिनों जब वे भगतसिंह को लेकर बेहद विकल, बेचैन और व्यथित थीं, उन्होंने अखंड पाठ करवाया, इसी कामना से कि मेरे बेटे को फाँसी न लगे।

अंत में ग्रंथी ने अरदास की तो उसके मुँह से निकला, 'वाहे गुरु! माताजी चाहती हैं कि उनका बेटा बच जाए, पर बेटा चाहता है कि उसे जरूर फाँसी हो जाए। दोनों ही बात मैंने आपके सामने रख दी हैं, इसलिए हे सच्चे पादशाह! न्याय करना।'

इस पाठ के बाद जब माँ भगतसिंह से मिलने जेल गईं तो उन्होंने गंभीरतापूर्वक माँ से पूछा, 'सच-सच बताइए बेबे, अरदास में ग्रंथीजी ने क्या कहा?'

माँ ने बताया, तो बोले, 'आपकी बात तो गुरु साहब ने भी नहीं मानी, अब मुझे कौन बचा सकता है?'

अपने न बचने की बात उन्होंने इतने उत्साह से कही, मानो उनकी कोई लॉटरी खुलनेवाली हो।

माँ परेशान थीं। तरह-तरह के लोग, तरह-तरह के सुझाव। ऐसे समय में जिसने जो बता दिया, वही करने चल पड़तीं। किसी ने सुझाया, किसी जेठे सुंदर से बच्चे का 'झगला' लेकर' भगतसिंह के पास रख देना, वह बच जाएगा, माँ ने ऐसा भी किया। जब वह 'झगला' लेकर भगतसिंह के पास गईं तो उन्होंने पूछा, 'क्या है यह?'

माँ ने कहा, 'यह छोटा सा झगला है, बेटा। इसे अपने पास रख ले।'

उन्होंने उसे वापस करते हुए कहा, 'इसे आप सँभालकर रखें, माँ। अंग्रेजों की जड़ें काटकर कुछ समय बाद मैं जब फिर जन्म लूँगा, तब इसे पहनूँगा, तब यह काम आएगा।'

□

२३ और १३ के अंक का भी अद्‌भुत महत्त्व था। जेल से लिखे उनके ज्यादातर पत्रों, लेखों या साहित्य में २३ और १३ तारीख ही अंकित है। उनकी फाँसी २३ तारीख, १९३१ की शाम को ही हुई, तब वह अपने जीवन के तेईस वर्ष पूर्ण कर चले थे।

उनकी पहली गिरफ्तारी भी लाहौर में दशहरा बम-कांड के सिलसिले में २३ अक्तूबर को ही हुई थी।

फाँसी से दो दिन पहले जब माँ उनसे अंतिम बार मिलने गई तो देखा, उसके खाना खाने के लोहे के बरतन में गुलाब के ताजे फूल रखे हैं। माँ ने पूछा, 'भगतसिंह, ये फूल कहाँ से आए?'

अपनी सदा की मस्तानी मुद्रा में उन्होंने कहा, 'मेरे लिए तो माँ, संसार में चारों तरफ फूल-ही-फूल हैं।'

साअ

अपर महानिदेशक
दूरदर्शन एवं आकाशवाणी, आकाशवाणी महानिदेशालय
संसद् मार्ग, नई दिल्ली-११०००१
rajshekhar.vyas@yahoo.co.in

ओ नवयुग के

कविता

• संतोष श्रीवास्तव 'सम'

ओ नवयुग के पथिक-श्रमिक
तुम मेरी इतनी बात सुनो,
हैं दो तथ्य यहाँ सुख व दुख
जो चाहे उसे तुम स्वत: चुनो।

याद रखो कंटकपथ से ही
राह कोई जाती उस लोक,
जहाँ नहीं पतझर कोई फिर
नहीं कही मिलता फिर शोक।
है विकट घड़ी इस जीवन का,
हर क्षण बस तुम इन्हें गुनो,
हैं दो तथ्य यहाँ सुख व दुख
जो चाहे उसे तुम स्वत: चुनो।

जब काँटों से तुम गुजरोगे
यह लहूलुहान तो होगा पग,
कष्टों का जो वरण करोगे
अहसास करोगे अपने रग।
जीवन की पीड़ाओं में तुम
अपने को इस कदर धुनो,
हैं दो तथ्य यहाँ सुख व दुख
जो चाहे उसे तुम स्वत: चुनो।

जीवन के इन आरामों में
मंजिल मिलती भला कहाँ
नहीं है मिलती वह आजादी
गर कष्टों को नहीं सहा।

जहाँ-जहाँ उनके पग पड़ते
सहर्ष उन्हें तुम मनन करो।
हैं दो तथ्य यहाँ सुख व दुख,
जो चाहे उसे तुम स्वत: चुनो।

ओ नव युग के पथिक-श्रमिक
तुम मेरी इतनी बात सुनो,
हैं दो तथ्य यहाँ सुख व दुख,
जो चाहे उसे तुम स्वत: चुनो।

साअ

बरदेभाटा काँकेर,
जिला-उ.ब. काँकेर-४९४३३४ (छ.ग.)
दूरभाषा : ९९९३८१९४२९

खरपतवार बनाम गरीब

• कर्नल पी.सी. वशिष्ठ

"भून डालो इन सबको, पूरा इलाका गंदा कर रखा है। जब भी सड़क से गुजरो, नंग-धडंग बच्चे, मैले-कुचैले कपड़े, औरतें, मर्द और उनके घरों के आस पास का सड़ाँध भरा वातावरण, उफ तंग आ चुके हैं हम इन गरीबों से।" मुँह बिचकाते हुए जमीदार साहब ने कहा।

"पर हुजूर, यह तो पहले कई बार किया जा चुका है, आप की कई पीढ़ियाँ यह कराती आई हैं और मेरे पिताजी ने मुझे अच्छी तरह समझा दिया था कि उन्होंने अपने पिताजी से इस विषय में क्या सुना था।"

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। पहले मुझे यह विवरण सहित बताओ कि फिर भी ये समाप्त क्यों नहीं होते, कौन है जो हमारी इच्छा के खिलाफ इन्हें जिंदा रखता है। बार-बार उखाड़ फेंकने पर भी ये पुन: कैसे आ बसते हैं? कौन करता है इनकी देखभाल? हम उससे भी हिसाब चुकाना चाहेंगे।"

"अब आप से क्या बताएँ हुजूर, जितना इन्हें नष्ट कर देने का प्रयत्न करते हैं, उतना ही इनमें जीने की इच्छा जाग्रत् होती है। दरअसल जिजीविषा इन्हें समाप्त नहीं होने देती।"

"पर तुम उन सबको नष्ट करने का प्रबंध क्यों नहीं करते?"

"हुजूर, वह भी कई बार किया जा चुका है, पर कुछ खेती वाले मजदूरों के परिवार, कुछ हवेली के कार्यकर्ताओं के परिवार, एक इस दास का परिवार (मेरा), कुछ अपने लठैतों के परिवार हर बार छोड़ने पड़ते हैं।"

"पर तुम इन सबकी इतनी देखभाल क्यों करते हो कि फिर धीरे-धीरे एक गाँव बनकर पुन: इलाके को गंदा करें।"

"हुजूर, यही बात हमारे समझ में भी नहीं आती। हम इन्हें पेट भर खाना भी नहीं देते। प्रयत्न यही करते हैं कि ये अपनी जनसंख्या वृद्धि न कर सकें। पर एक जून का खाना मिलने पर भी ये लोग बढ़ते ही रहते हैं। और तो और, इनकी संतानें भी कुछ कम नहीं।"

"संतानें क्या करती हैं?"

"हुजूर, कम खाना मिलने पर जंगलों में जाकर जो कुछ मिलता है, खा लेते हैं, चाहे वह फूल-पत्ते हों या छोटे-मोटे जंगली जानवर। ये तो साँपों तक को नहीं छोड़ते।"

सेना में शिक्षा अधिकारी के पद पर ३४ वर्षों की सेवा के बाद सेवानिवृत्त। सैन्य सेवा काल में हिंदी-अंग्रेजी, अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद कार्य तथा रेजिमंटल मैगजींस में हिंदी सेक्शन का संपादन कार्य। वर्तमान में जिला बुलंदशहर के विकास कार्य तथा सामाजिक सेवा में संलग्न, दोहा लेखन तथा कहानी लेखन में व्यस्त। सैन्य शिक्षा प्रशिक्षण में विशेषता।

"चलो इस पर कभी फिर बात करेंगे। आज हम अपने खेतों की ओर जाना चाहते हैं।"

"जी बहुत अच्छा।"

"अरे, इतने सारे मजदूर उस खेत में बैठे क्या कर रहे हैं?"

"हुजूर, खेत निरा रहे हैं। इस खेत में खरपतवार बहुत उगते हैं।"

"क्या उस समय सारे खरपतवार उखाड़कर नहीं फेंके थे? लगता है कि ये सब कामचोर मजदूर है और काम पूरा नहीं करते।"

"नहीं यह बात नहीं है, हुजूर।"

"तो फिर क्या बात है?"

"हुजूर काम तो ये सब ठीक करते हैं। खरपतवार भी जड़ से उखाड़कर फेंकते हैं, पर ये खरपतवार हैं कि समाप्त नहीं होते।"

"अजीब बेहया पौधे हैं ये।"

"हुजूर, मिट्टी, प्रकाश और वायु इनमें और फसल के पौधों में अंतर नहीं करते। वे इन दोनों की समान रूप से देखभाल करते हैं। यही कारण है कि ये समाप्त नहीं होते।"

"तुम एक बार पूरे खेत के खरपतवार उखाड़कर दूर क्यों नहीं फिंकवा देते?"

"वह भी करके देखा है, हुजूर।"

"फिर पूरे खेत को खुदवाकर धूप में क्यों नहीं सुखाते, जिससे ये सब झुलसकर मर जाएँ।"

"यह भी कराया था हुजूर। लगभग ८ माह तक पूरा खेत खुदा पड़ा रहा और एक तिनका भी हरा नहीं बचा, पर बरसात होते ही फसल बोने से पहले ये उग आए।"

"उफ, क्या मुसीबत है। आखिर इनकी देखभाल कौन करता है, जो ये नष्ट नहीं होते?"

"हुजूर, इनकी जिजीविषा का राज भी यही है। क्योंकि कोई देखभाल नहीं करता, इसीलिए ये ज्यादा पलते-बढ़ते हैं। और अच्छी देखभाल करने पर भी हमारी फसल अच्छी नहीं होती और कभी-कभी तो नष्ट भी हो जाती है।"

"पर ऐसा क्यों होता है?"

"हुजूर, अपनी फसल के लिए हम जो कुछ खाद-पानी जमीन को देते हैं, उसी से खरपतवारों की देखभाल होती है और इन्हें जमीन से अलग करना असंभव है।"

"क्या जमीन को ऐसा भी बनाया जा सकता, जिसमें कुछ भी न उगे?"

"किया क्यों नहीं जा सकता हुजूर, पर फिर उसमें फसल भी बिल्कुल नहीं उग सकेगी।"

"फिर हम जमींदारी कैसे चलाएँगे?"

"यही तो मुसीबत है, हुजूर।"

खेतों से वापस आते समय जमींदार साहब पुन: मजदूरों की बस्ती के पास से गुजरे और उनके गंदे इलाके को देखकर पुन: कारिंदे से पूछने लगे—"इनको भी समूल नष्ट किया जा सकता है क्या, पूरे क्षेत्र को गंदा करके रखते हैं?"

"हाँ, पर उस अवस्था में आप भी मालिक नहीं रह पाएँगे।"

"क्या मतलब है तुम्हारा? इनके रहने, न रहने से हमारा क्या संबंध?"

"है हुजूर, अवश्य है। यदि ये सब नष्ट हो गए तो आप की खेती कौन करेगा? आप की हवेली की देखभाल कौन करेगा? आप को माई-बाप कौन बोलेगा?"

"उस अवस्था में आप को जमींदार साहब कहनेवाला भी नहीं बचेगा, क्योंकि किसी के पास भी आप से कम भूमि होगी, न अधिक, क्योंकि कोई होगा ही नहीं।"

"एक बात और मालिक! फिर अपने खाने लिए भी आप स्वयं ही अन्न उगाएँगे और तब आप जमींदार नहीं होंगे। स्वयं एक खेतिहर हो जाएँगे।"

"कारिंदे, तुम बकवास बंद करो।"

"हुजूर, यही सत्य है।"

"मालिक, दुनिया में अमीरों की, आप जैसे लोगों की संख्या बहुत कम है, क्योंकि ऐसे लोगों की देखभाल बहुत अधिक होती है। दूसरी तरफ गरीब-प्राणियों में और खरपतवार पौधों में इसलिए अधिक पलते-बढ़ते है, क्योंकि उनकी देखभाल बहुत कम होती है। खास बात यह है कि इनकी कितनी भी कम देखभाल की जाए, ये बढ़ते ही जाते हैं।

"कारिंदे, यह तो बड़ी विचित्र बात है।"

"एक बार मेरे घर के कच्चे आँगन में एक घास का पौधा उग आया। मैंने उसे उखाड़कर घर के बाहर फेंक दिया। पंद्रह-बीस दिन बाद मैंने देखा कि घर के बाहर एक कोने में वही पौधा जीवित था। उसकी जड़ें जमीन के ऊपर ही पड़ी थीं, पर उन्हीं में से कुछ रेशों ने जमीन में घुसकर अपनी जड़ें जमा ली थीं और इस प्रकार पौधा जीवित होकर लहलहा रहा था। जीने की लालसा ने पौधे को मरने नहीं दिया और जड़ से उखाड़ फेंकने पर भी वह जीवित रहा।"

"मालिक, खरपतवार और हम गरीबों की जाति एक ही है। हमारी जितनी कम देखभाल की जाए, उतने ही अधिक बढ़ते हैं और जितना अधिक लोग हमें नष्ट करना चाहते हैं, उतना ही जीवनशक्ति हमारे अंदर बढ़ती है। मालिक, आप की फसल समाप्त हो सकती है, आप मिट सकते हैं, पर हम नहीं।"

ई १-८०२, हरिगंगा सोसाइटी, आर.टी.ओ. के सामने,
विश्रांतवाड़ी, पुणे-४११००६
दूरभाष : ७७९८४२४२९३

आजाद

दोहा

• मनोरमा चंद्रा 'रमा'

आज लोग आजाद हैं, बनो नहीं अनजान।
जात भेद को छोड़ तू, सब हैं एक समान॥

आजादी के नाम पर, करो देश गुणगान।
इसको पाने के लिए, हुए शहीद जवान॥

बंद पिंजड़े खोल तू, पंछी कर आजाद।
तभी चहचहाते हुए, करे मधुर अति नाद॥

निज आजादी के लिए, मन में भर अरमान।
दृढ़ इच्छा से बढ़ चलो, रुको नहीं इनसान॥

नित प्रसन्न लगते मनुज, हृदय भरे आह्लाद।
कहे रमा ये सर्वदा, होते जब आजाद॥

सी-५८, कैपिटल सिटी फेस-३ सड्डू,
रायपुर-४९२००१ (छ.ग.)
दूरभाष : ९५८९४०३५०२

राम झरोखे बैठ के

शिकारपुर की खोज

• गोपाल चतुर्वेदी

कोई पी. कुमार नाम के इतिहासविद् बताते हैं अपनी पुस्तक 'शिकारपुर एक खोज में' कि यह हिंदूपुर का ही नहीं, विश्व के सबसे महत्त्वपूर्ण नगरों में एक है। वह तो इनसान को अपनी गलतियों को दोहराने की आदत है, वरना इतिहास सिर्फ घटना-दुर्घटना का सिलसिला बनकर क्यों रह जाता? पी. लाल ने यह भी सिद्ध किया है कि हिंदूपुर नामक पूरे देश और उसकी राजधानी शिकारपुर की बरबादी के लिए उसी प्रकार के हिंसक बम जिम्मेदार हैं, जिन्होंने इसके पूर्व हिरोशिमा तथा नागासाकी को नेस्तनाबूद किया था। दीगर है कि यह कई गुना अधिक विध्वंसक और विनाशक रहे हों। दुनिया का दुर्भाग्य है कि वैज्ञानिक प्रगति विध्वंसक दिशा में अधिक व इनसानी विकास की राह में कम सक्रिय रही है। पी. लाल ने इस विषय में कई उदाहरण दिए हैं। इस विश्वव्यापी युद्ध के छह-सात दशक पूर्व 'कोरोना' नामक एक लाइलाज महामारी ने एक करोड़ जानें ले लीं, पर उसका कोई निदान विकसित न हो पाया था। शिकारपुर में कई रोग कई रोग निरोधक टीकों का जरूर आविष्कार हुआ था। इनके प्रयोग से इनसान इस 'कोरोना' नामक रोग से कुछ हद तक बचने में समर्थ हो जाता। इस संदर्भ में उनका यह कथन भी महत्त्वपूर्ण है कि इस महामारी की व्युत्पत्ति का मूल कारण भी अब तक निश्चित नहीं है। अभी तक यह विवादास्पद है कि इस महामारी के वायरस के पीछे चीन की लैब का हाथ है कि चमगादड़ का? कहीं यह मानव निर्मित तो नहीं है? फिलहाल इस विषय में कोई निर्णायक निष्कर्ष नहीं निकला है।

इतिहासकारों के लिए हिंदूपुर देश के खँडहर एक पूरी भूली हुई सभ्यता तथा जीवन-शैली का वृत्तांत है। पाया गया है कि आदमी-आदमी के बीच भेद का अनूठा और अभूतपूर्व साधन उन दिनों व्याप्त जाति प्रथा रही है। इसके अनुरूप सामाजिक वर्गीकरण में कुछ जन्मजात श्रेष्ठ और कुछ हीन या निक्रष्ट माने जाते। यहाँ तक कि कुछ का स्पर्श तक वर्जित था। तब के विद्वानों में मतभेद रहा है कि यह इनसानी विभाजन पैदायशी न होकर पेशे के आधार पर रहा है? कुछ इसके पक्षधर है तो अन्य इसके विरुद्ध। एक ज्ञानी ने इस समस्या का अनूठा हल सरकारी नौकरियों में पिछड़ों को आरक्षण देने के सुझाव से निकाला। कुछ ने यह कहकर इसका विरोध किया कि इस पद्धति से सरकार को रोजगार में योग्यता के सिद्धांत की हत्या होगी। कुछ अन्य का मत था कि सरकारी नौकरी में ऐसी कौन सी विशेष विद्वत्ता की दरकार है कि आरक्षण के कारण कार्य कुशलता की हानि हो? यों नेताओं का पूर्ण और समर्पित प्रयास रहा है कि आरक्षण शत-प्रति-शत हो! इस दिशा में हिंदूपुर के उच्चतम कोर्ट ने यह निर्णय सुनाया था कि आरक्षित पदों की संख्या कुल पदों का केवल पचास प्रतिशत हो। जाति आधारित नेता लगन से इस कोशिश में लगे हैं कि इस प्रकार के बंधन से सामाजिक भेदभाव का कोई निदान संभव नहीं है। जब तक आरक्षण शत-प्रति-शत न हो, सामाजिक सौहार्द मुमकिन नहीं है। जितने मुँह उतनी बातें। यों यह वैचारिक संघर्ष हिंदूपुर के विनाश तक अनिर्णीत ही रहा।

कुछ ने तो यहाँ तक कहा कि जब प्रजातंत्र के मंत्री तक के निरक्षर होने पर कोई रोक नहीं है तो योग्यता के नाम पर आरक्षण रोकने का तुक क्या है? दूसरों ने उन्हें समझाया कि यह इसीलिए संभव है कि देश के अफसर सरकार चलाने में सक्षम हैं और नीति विषयक सलाह देने में। इसी कारण रिक्षा-चालक, वक्त-जरूरत, रिक्शे के बजाय देश भी चला सकता है। इतना ही नहीं, न्यूक्यिलर विध्वंस के पहले हिंदूपुर की विदेशों में एक उभरते विकसित देश की छवि थी। इसका समाज विकसित व अधिकतर शिक्षित माना जाता था। यह जरूर है कि प्रजातंत्र में सामंती परिवारवाद भी सिर उठा रहा था। यहाँ जनसेवा से अधिक जन्म का महत्त्व था। कोई यदि एक विशेष परिवार का है तो उसका प्रजातांत्रिक आका होने का प्रथम और पुश्तैनी हक है। पर पी. लाल के अनुसार यह पकड़ पूरी तरह समाप्त तो न हुई थी, पर उसके कगार पर थी। हो सकता है कि यह संख्या बल के पतन के लिये इस की पीढ़ी के बाद का तत्कालीन वारिस जिम्मेदार हो। यह भी मुमकिन है कि जनता का इस परिवार से मोहभंग हो रहा हो। पी. लाल का निष्कर्ष है कि इतिहासविद् तर्क और तथ्य तो दे सकता है, पर उसे अपना व्यक्तिगत निर्णय किसी पर थोपने का अधिकार नहीं है। इसी कारण उन्होंने पूरे तथ्य एकत्र कर शिकारपुर की खोज में निर्णय पाठकों पर छोड़ा है।

पाठकों के मत विभिन्न हैं। कुछ का कहना है कि गांधी, जवाहर, इंदीरा-युग का अंत एक सक्षम और प्रभावशाली नेतृत्व के उभरने से हुआ। कुछ यह भी कहते हैं कि इसके पीछे दक्षिण के राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सक्षम भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। कुछ अन्य की मान्यता है कि धीरे-धीरे समय के साथ वोटरों में इस परिवार का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान और उसके बाद के सतत शासन का आकर्षण कम होने लगा। इसे कई भ्रष्टाचार के मामले और निरंकुशता के निर्णय सामने आने से जोड़ना अनुचित नहीं है। यों भी प्रजातंत्र का एक अपवाद कब तक चल पाता? जनता भी एक ही परिवार के थोबड़े से ऊब जाती है? वह भी प्रजातांत्रिक चेतना जगने के बावजूद कहना कठिन है? धीरे-धीरे सत्ता खोने के बाद, पार्टी का विघटन भी प्रारंभ हो गया। पहले से निर्बल नेतृत्व और कमजोर पड़ गया। उसकी इकलौती योग्यता चुनाव जिताने की क्षमता पर पार्टी में ही संदेह उभरने लगा, युवराज के नेतृत्व पर भी। खेमेबाजी को, इन परिस्थितियों में, फलना-फूलना ही था। पर यह गुटबाजी अंत में दल को ले डूबी। एक महत्त्वपूर्ण दल के दुखद अंत का 'शिकारपुर की खोज' में उल्लेखनीय साक्ष्य है।

इतना ही नहीं, इस पुस्तक का अध्ययन यह भी दरशाता है कि जनता के सहयोग और शासन की प्रेरणा से हिंदूपुर अपने उदारता की परंपराओं का पालन कर, आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर था। यह तथ्य लोगों के पल्ले पड़ गया था कि अतीत में भ्रष्टाचार का एक बड़ा कारण रक्षा-सौदों में करोड़ों का धन रहा है। रक्षा-सौदों में आत्म-निर्भरता से ही भ्रष्टाचार का उन्मूलन संभव है। इसका एक प्रमुख कारण वैज्ञानिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति भी रही है। स्पेस क्रांति में हिंदूपुर का विशिष्ट योगदान है। विशेषकर, नई पीढ़ी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के गठन में। इस दौरान वैज्ञानिकों का समाज में स्थान और सम्मान भी बढ़ा साथ ही लोगों की विज्ञान के प्रति एक नूतन बोध और प्रेरणा का संचार हुआ। ज्ञान-विज्ञान से लेकर यह चेतना मैडिकल क्षेत्रों में भी फैलने लगी। हिंदूपुर में ही महामारी की निरोधक वैक्सीन का निर्माण इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। इतना ही नहीं, निदान के क्षेत्र में हिंदूपुर की युवा प्रतिमाओं की रुचि और सक्रियता बढ़ाने से, नए निदान और दवाओं की खोज में, एक अनुकरणीय क्रांति आई। न्यूक्लियर विध्वंस प्रगति की इस दिशा में एक बड़ी बाधा सिद्ध हुआ।

'शिकारपुर की खोज' से कई अन्य तथ्य भी उभरे हैं। जहाँ शिक्षा और जाग्रति पनप रही थी, वहीं करप्शन भी सिर उठा रहा था। राजनैतिक और बड़े प्रशासनिक स्तर पर कम होने के बावजूद, यह दफ्तर के कर्मियों में ऐसे बस गया था, जैसे कोरोना नामक महामारी का जीता-जागता सक्रिय वायरस हो, जिससे बचत न कोई दवा कर सके, न कोई वैक्सीन, न मॉस्क या निश्चित दूरी। इससे बचने का इकलौता तरीका केवल सर्व-व्यापी सरकार से पूरी तरह परहेज से ही संभव है। सामान्य आदमी को इसे झेलना पड़ता। विषय चाहे राशन कार्ड का हो अथवा जमीन के पट्टे का या फिर जाति प्रमाणपत्र का। वह पेट काट कर करप्शन का 'जन-कर' भरता, एक सुलभ उपलब्ध और देय सरकारी सुविधा पाने को। इसकी समय सीमा ऐसी रहती है कि दफ्तरों का गुजारा और 'जन-कर' की निर्धारित प्रक्रिया बिना रोक-टोक चलती रहे। बस समयानुसार रेट में मुद्रा-स्फीति के अनुरूप नियत वृद्धि हो जाती।

ऐसा नहीं है कि सरकार ने इसे रोकने के प्रयास नहीं किए। हजारों परिपत्र, आदेश और भ्रष्टाचार निरोधक संस्थाएँ इसकी साक्षी हैं। पर जो इसका मूल कारण है, प्रक्रिया में जनसाधारण के प्रति अविश्वास और जाँच के लिए बनाई व्यवस्था उसमें कोई सुधार नहीं हो पाया। मसलन राशन कॉर्ड में कहीं परिवार की संख्या में जान-बूझकर इजाफा तो नहीं किया है, सस्ता माल पाने को? इसका सच तो जाँचना ही जाँचना। बाबू तो अपना कर्तव्य निभाएगा ही। यदि सच है फिर भी सत्यापन में देरी उसका अधिकार है। कुछ नहीं तो वह नियत प्रक्रिया निभाने का अपना शुल्क लेगा। यदि परिवाद की तादाद में गड़बड है, तो उसे अनदेखा करने को। यदि एक प्रतिशत गड़बड़ी है तो व्यवस्था के अंग अपनी पीठ ठोकेंगे, सिस्टम को विश्वास प्रूफ बनाने को। लाखों-करोड़ों का खर्च इसके अंतर्गत सबको स्वीकार है, क्योंकि इसमें जाँच का करप्शन प्रक्रिया में खुद-बखुद ही निहित है। क्यों न हमें सामान्य कर इनसान पर विश्वास से करोड़ों बचाएँ? न जाँच की जरूरत न विजिलेंस की। जनता के टैक्स से कुछ लुटता है तो लुट जाए। कौन कहे विश्वास से टुच्चा छोटी किस्म की बेइमानी में खुद बखुद सुधार आए? किसी दिन जनता पर भरोसा न करने का और उसका सरकार को मूर्ख बनाने का बेहूदा मजाक बंद हो। पी. लाल ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार के कई तथ्य एकत्र किए हैं और अतीत को आइना दिखाया है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि हिंदूपुर के अतीत से विश्व का वर्तमान में कितना परिवर्तन है। आज के सारे सिस्टम जनता और सरकार के पारस्परिक विश्वास पर आधारित है। न कहीं भ्रष्टाचार है, न सरकार को धोखा देने का व्यापक व्यापार। उन्नत तकनीकी साधनों ने हर शासन को इस योग्य बना दिया है। कि बड़ी धोखाधड़ी उससे पकड़ में आ जाती है और उस पर कड़ी काररवाई भी होती है। सामान्य आदमी को चैन है, उसके रोजमर्रा के काम बिना व्यर्थ की रोकथाम के चलते रहते हैं। न बिचैलियों का संकट, न सरकारी सेवक की 'सेवा'। आज इनसानी वर्गीकरण आर्थिक है! तुलना में हिंदूपुर की जाति-व्यवस्था विस्मयकारी लगती है! यह जन्म की दुर्घटना के आधार पर इनसान का कैसा आश्चर्यजनक और तर्कहीन बँटवारा है? इसे तब के नेतृत्व और न्यायविदों ने इतने वर्षों तक कैसे और क्यों बर्दाश्त किया? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर शायद सत्ता पाने की संभावना में निहित है। 'अपनी' जाति का नेता है, उसका सोच है कि उनका वोट जोड़ो। उसके साथ किसी और को पटाओ और 'जन-नेता' बन जाओ। यह नेता का नया अवतार है। जो हिंदूपुर की आजादी के बाद तब के राष्ट्रीय सोच के नेतृत्व के अभाव में उभरा है। यह वर्ग स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक, बरसात ग्रस्त गाँवों में मेढक की टर्राहट के समान, खूब फला-फूला है। पी. लाल की खोज के अनुसार हिंदूपुर की सभ्यता-संस्कृति के बचे अवशेष साबित करते हैं कि तब के बड़े भूखंड में जटिल जातीय व्यवस्था,

चहुँमुखी विकास के लिए कितनी साहसिक चुनौती रही होगी? जो भी प्रगति हुई उसके लिए यहाँ के अतीत का नेतृत्व बधाई का अधिकारी है। ऐसी बाधा दौड़ में किसी के लिए भी सफलता एक उल्लेखनीय कीर्तिमान है। वर्तमान के वासियों का कर्तव्य है कि वह उसका नमन करें। पी. लाल की पुस्तक के संदर्भ में एक अन्य प्रमुख तथ्य भी उजागर होता है। हर घर-परिवार, देश में लंका के विभीषण का वास है। फिर भी घरेलू झगड़े-झंझटों के बावजूद हिंदूपुर की विदेश नीति के दो महत्त्वपूर्ण तथ्य शांति और पड़ोसी देशों से पारस्परिक प्रगति के सरोकार रहे। एक शक्ति संपन्न देश होने के बाद भी उसने विस्तारवादी नीतियों से परहेज ही नहीं किया, वह इनके विरोध में भी सक्रिय रहा। बहुधा, सड़क की दुर्घटनाओं में देखा जाता है कि संबद्ध व्यक्ति हमेशा इसके लिए दोषी नहीं होता है, कई बार अन्य इसके जिम्मेदार होते हैं। जैसे यदि तेज गति का वाहन किसी गाय या अन्य चौपाए को देख कर ब्रेक लगाए और पीछे के वाहन उससे आ टकराए तो वह कर ही क्या सकता है? उसने न स्वेच्छा से या किसी निहित स्वार्थ से ब्रेक लगाए। उसका इरादा नेक हो। वह किसी मूक चौपाए की प्राण-रक्षा को प्रयासरत हो। उसके अनपेक्षित ब्रेक लगाने से पीछे के कार चालक के भी अपनी गति रोक न पाए और नतीजतन पूरा 'हाई-वे' निरुद्ध हो जाए। इसी प्रकार की स्थिति एक विस्तारवादी और प्रमुखता के लिए महत्त्वाकांक्षी महाशक्ति के कारण पूरे विश्व की थी। इसकी नीतियों और व्यवहार से अतीत की कहावत बगुलाभगत की याद आती। दिखाने को वह अमन, शांति, सहायोग का जाप करता और मौका मिलते ही छोटी मछली का शिकार।

यदि दूसरे देश उसकी अवांछित हरकतों का विरोध करते तो वह तत्काल उनसे मुकर जाता। शायद इस किस्म को हर घटना से इनकार करना उसकी अनौपचारिक विदेश नीति का अंग रहा हो? कौन कहे, उसकी नीति तक के उस बोलते पालतू तोते के समकक्ष थीं, जो सिर्फ 'ना-ना' करता हो। पूर्व के किए हर संधि सौदे और करार वगैरह को अपने सीमित स्वार्थ में नकारने की उसकी प्रवृत्ति सब परिचित थे। अंत में वही हुआ जो न होना था। उसने पूरे विश्व को न्यूक्लिप विनाश की आग में झोंक दिया। उसने सकल संसार को बरबाद किया और खुद भी कैसे बचता? वह स्वय भी नष्ट हो गया। उस वक्त के सब विद्वान् बिना किसी अपवाद के एकमत हैं कि इस महासंहार का इकलौता महाखलनायक वह ही है। पी. लाल ने अपने विवरण में हिंदूपुर के विभिन्न वर्गों का विस्तृत चित्रण किया है, जो दूसरे अध्यायों में प्रस्तुत है।

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविता

तिरंगी पतंग

• नंदिनी कौशिक

नवोदित रचनाकार। बाल्यकाल से लिखने का शौक। कई पत्र-पत्रिकाओं में कविता-आलेख आदि प्रकाशित। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के लक्ष्मीबाई कॉलेज में द्वितीय वर्ष की छात्रा। क्रिकेट खेल के प्रति विशेष रुझान।

तीन रंगों से सजी
यह मेरी नई पतंग है
सरफरोश है तमन्ना
जवाँ हुई फिर उमंग है
ये मेरी नई पतंग है।

संस्कृत है, संस्कृति है
उन्नत है, प्रकृति है
सोच में जाग सत्संत है
तीन रंगों से सजी
यह मेरी नई पतंग है।

नर भी एक, नारी भी एक
परिश्रम एक, तो वेतन भी एक
जैसे सागर से जुड़ी तरंग है
तीन रंगों से सजी
यह मेरी नई पतंग है।

माँझा है, पर चाइनीज नहीं
जो काम करे, बस बढ़े वही
अब निर्भर नहीं मलंग है
तीन रंगों से सजी
यह मेरी नई पतंग है।

वतन से हमें मोहब्बत है
कुछ कर गुजरने का साहस है
अटल सा प्रेम-प्रसंग है
तीन रंगों से सजी
यह मेरी नई पतंग है।

२७९, पॉकेट-९, सेक्टर-२१, रोहिणी
दिल्ली-११००८६
दूरभाष : ९६२५६४५२४९

साहस और संवेदना की कहानी : फौजी की जुबानी

• सुप्रिया पी

हिंदी कथा-साहित्य में सेना और युद्ध से संबंधित कहानियों का अभाव है। इसका कारण है कि लेखकों को सशस्त्र बलों के बारे में विशेष ज्ञान नहीं होता। मलयालम कथा-साहित्य में सैन्य जीवन को संवेदनशीलता के साथ चित्रित करने में जो रचनाकार आगे आए, उनमें तकषी, कोविलन, नंदनार, पारापुरत्त (नंदनार) प्रमुख हैं। मलयालम-भाषी होते हुए भी हिंदी में फौजी कहानियाँ लिखीं—आनंद शंकर माधवन, डॉ. वी. गोविंद शिनॉय, प्रो. पी. कृष्णन, तत्तोत बालकृष्णन ने। कुछ ने अपनी कल्पना से सैन्य जीवन को प्रस्तुत किया तो कुछ पेशे से फौजी रहे और अपने अनुभव एवं जीवन निरीक्षण से सैन्य जीवन को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत कर सके। भारतीयता की विशाल चेतना एवं राष्ट्रीय एकता की भावना सबसे पहले इन फौजी रचनाकारों ने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की। रचना तभी पाठक के चिंतन-मनन को झकझोरती है, जब उसमें रचनाकार का आत्म-संस्पर्श हो। ऐसे ही रचनाकार हैं—श्रीधरन नंबियार, जिन्होंने अपने फौजी जीवन के संघर्षमयी अनुभव को सूक्ष्म निरीक्षण से पाठकों तक पहुँचाया है। ये मलयालम-भाषी पहले हिंदी लेखक हैं, जिन्होंने फौजी जीवन को साहित्य में चित्रित किया। फौजी जीवन का परिवेश-संघर्ष-अनुशासन उनके संवेदनशील हृदय पर हावी नहीं हो पाया हैं, इसका गवाह है, उनका कहानी-संग्रह 'यादों के झरोखे'।

हिंदी साहित्य में इस अभाव की पूर्ति के लिए ले. जनरल यशवंत मांडे के प्रयास सराहनीय हैं। भारतीय सेना में चालीस वर्ष के अनुभव की स्मृतियों को लेखक ने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनकी अंग्रेजी पुस्तक 'Karachi in flames and other stories' का हिंदी पाठकों के लिए उन्होंने 'श्रेष्ठ सैनिक कहानियाँ' नाम से पुनर्लेखन किया है। तीन प्रमुख लड़ाइयों—सन् १९६२, १९६५ और १९७१ में भाग लेने का मौका ले. जनरल यशवंत मांडे को मिला था। युद्ध नैतिक रूप से मानवता के खिलाफ होती है, जिसका प्रभाव मनोवैज्ञानिक स्तर पर होता है। कहानियों को पढ़ते हुए सैनिक जीवन के अंतर्द्वंद्व को महसूस किया जा सकता है। लड़ाई के दौरान किस प्रकार जवान युद्ध और शांति

सुपरिचित लेखिका। 'कृष्णा सोबती की कहानी कला', 'हिंदी उपन्यास के विदेशी पात्र', 'आधुनिकता का पराग संक्रमण' समीक्षात्मक कृतियाँ आदि विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा 'हिंदी के साहित्येतर संदर्भ' संपादित पुस्तक।

के बीच सदैव झूलता रहता है, इसका विवरण हमें उनकी कहानियों के माध्यम से मिलता है।

श्रीधरन नंबियार के 'यादों का झरोखा' कहानी कर्म के महत्त्व पर प्रकाश डालती है। बासठ की हिंद-चीन लड़ाई की पृष्ठभूमि में हिमालय के बर्फीले वातावरण में हर तरह कष्ट झेलकर त्यागपूर्ण जीवन बिताने वाले सैनिकों के स्नेह और आत्मीयता की कहानी है—'यादों के झरोखा'। सैंतालीस वर्ष के उपरांत भारत में कारगिल के अमर जवानों की स्मृति में दसवें वर्षगाँठ के अवसर पर अशोक अपने 'वन्य विपिन का वन्य कुसुम' फौजी दोस्त गुरमीत को याद करता है। अशोक और गुरमीत हिंद-चीन लड़ाई के पूर्व भारत और चीन की सीमा पर लद्दाख में तैनात थे। सोलह-सत्रह हजार फुट की ऊँचाई पर बर्फ में अपने साथी को कंधे पर लादकर अपनी ड्यूटी के वास्ते गुरमीत अपने जीवन की परवाह नहीं करता। अपना दायित्व बखूबी निभाने के बाद अगले ही दिन वह बिल्कुल अपने कर्तव्य में लग जाता है।

सेना में रहकर श्रीधरन नंबियार ने १९६२ की हिंद-चीन लड़ाई, १९६५ एवं १९७१ की भारत-पाक लड़ाइयों में भाग लिया। कहानी में उन्होंने एक फौजी के अपने देश व देश के नागरिकों के प्रति समर्पण भावना को दरशाया है। प्रत्यक्ष रूप से देश के नागरिकों से नाता नहीं बनता, मगर उसके मन मस्तिष्क में उनके प्रति अपार स्नेह, आत्मीयता और अनूठी श्रद्धा नजर आती है। अपने देशवासी भाई-बहनों की सुरक्षा के लिए अपने प्राण त्यागने के लिए सदा अपनी तत्परता दरशाता है। भारत और चीन की १९६२ की लड़ाई में कितने ही भारतीय वीर शहीद हुए।

गुरमीत और अशोक ने भी कठिन और विकट परिस्थितियों में काम किए थे। चीन और भारत की लड़ाई में भारत को विजय नहीं मिली, इसलिए उनकी गिनती ही नहीं रही। कई भारतीय वीरों की लाशों का संस्कार भी संभव नहीं हुआ था। कितनी ही लाशें बर्फ के गर्त में विलीन हो गईं। ऐसे अमर वीरों को 'लापता सूची' में दाखिल किया गया। किसी अनाम अंग्रेजी कवि के शब्दों को दुहराते हैं कहानीकार—"सैनिक और ईश्वर विपत्ति में याद किए जाते हैं; विपत्ति टलते ही उन्हें भूलने में देर नहीं करते।"

यशवंत मांडे ने अपनी कहानियों में १९७१ की लड़ाई की कई घटनाएँ प्रस्तुत की हैं। भारत पाक के बीच हुआ १९७१ का युद्ध बांग्लादेश की रिहाई के लिए लड़ा गया था। पूर्वी पाकिस्तान के बंगालियों को पश्चिमी पाकिस्तान का नियंत्रण किसी भी तरह से पसंद नहीं था और वे आजादी की माँग कर रहे थे। भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पूर्वी पाकिस्तान की स्वतंत्रता का समर्थन किया। भारत की सीमा पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) के शरणार्थियों के लिए खोल दी गई। पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, मेघालय व त्रिपुरा राज्यों की सरकार ने इन शरणार्थियों के लिए शिविर बनाए। पूर्वी पाक के निष्कासित सैन्य अफसर और भारत के स्वयंसेवकों ने मिलकर मुक्ति वाहिनी का गठन किया, जिसने पाकिस्तानी सेना को काफी नुकसान पहुँचाया।

'लगी आग कराची में' कहानी का रणजीत सेन नौसेना का कमांडर है। वह युद्ध में आक्रमण करने का समर्थक था, न कि बचाव का। 'ऑपरेशन रेड हॉर्न' की तहत गोपनीय तरीके से रणजीत सेन ने प्रहार की रणनीति बनाई। कराची से ६० किलोमीटर की दूरी पर अपने मिसाइल बोटों के साथ पहुँचकर उन्होंने आक्रमण किया। इस आक्रमण में कराची के बंदरगाह और वहाँ तैनात जहाजों को बहुत हानि हुई। इस आक्रमण का सबसे गहरा असर कराची के किमारी पेट्रोल भंडार को हुआ, जो पूरी तरह नष्ट हो गई। कराची में लोग—सैनिक और असैनिक दोनों ही घबरा गए थे। शत्रु का मनोबल ही टूट गया था। भारतीय नौसेना का पराक्रम सराहनीय था। इतिहास में पहली बार किसी नौसेना ने दुश्मन की नौसेना की ऐसी भारी क्षति पहुँचाई थी। पश्चिमी और पूर्वी बेड़ों ने पाकिस्तान के जहाजी रास्ते बंद कर दिए थे। पाकिस्तान की खतरनाक पनडुब्बी 'गाजी' नष्ट हो गई थी। पाकिस्तान के आत्मसमर्पण के साथ १६ दिसंबर, १९७१ को युद्ध विराम हुआ।

पूर्वी पाकिस्तान में 'मार्शल लॉ' घोषित होने के बाद बंगाली नेता मुजीबनगर आकर बस गए थे। उनके प्रमुख नेता मुजीबुर रहमान को नजरबंद कर पश्चिमी पाकिस्तान ले जाया गया था। ये नेता अपनी आजादी की चर्चा करते थे और उसे 'बांग्लादेश' के नाम से पुकारते थे। उन्होंने इस स्थान पर अपनी सरकार बना ली थी और वे संपूर्ण स्वतंत्रता की माँग कर रहे थे। पूर्वी पाकिस्तान में मिलिटरी के अत्याचारों की पूरी जानकारी देते थे। मुक्तिवाहिनी मिलिटरी के छोटे-छोटे ठिकानों पर हमले करने में व्यस्त थी और हर प्रकार से उन्हें नुकसान पहुँचा रही थी। 'जय बंगला' कहानी में कप्तान घोष एक युवा अफसर हैं, जो १९७१ के युद्ध में सक्रिय भागीदारी निभाता है। लड़ाई के बाद बांग्लादेश का सपना साकार हुआ। बांग्लादेश में सन् १९७२ का नववर्ष एक महान प्रेरणा और उत्साह के साथ शुरू हुआ। बांग्लादेशी निर्माण कार्य में जुट गए थे, जैसे कि पुलों को बनाना, सड़कों की मरम्मत करना, पानी और बिजली का संचालन, स्कूल और कॉलेज का खुलना इत्यादि।

जवानों की विधवा वैधव्य पाने वालों की पंक्ति में 'एक और' बनने की दुखद अवस्था को श्रीधरन नंबियार ने 'एक और' कहानी में उठाया है। कश्मीर के बारामुल्ला के पास आतंकवादियों के साथ मुठभेड़ में एक जवान मारा गया था। सैनिक गाड़ी में वरदी पोश हथियारबंद फौजियों के तिरंगा झंडा ओढ़े शवशिविका कंधे पर लादकर धीमी चाल, आचारानुसार तीन बार गोली चलाकर सलामी देना, राजनीतिक नेताओं द्वारा फूल-पत्ती के वलय समर्पण, मीडिया के कैमरा में उतारना, मंत्रीजी के नेतृत्व में शोक सभा, मुख्यमंत्री द्वारा भेजा गया संवेदना संदेश वाचन, वीर जवानों की आत्मबलिदान और वीरता का भरपूर वर्णन, अमर जवान के माता-पिता को सांत्वना देने के साथ पूरी सांत्वना प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।

बासठ की हिंदी-चीन की और पैंसठ की हिंदी-पाक लड़ाइयों में कई सैनिक शहीद और कई लापता घोषित हुए। उनकी विधवाएँ समाज से बहिष्कृत की जाती, उनका यौवन काली कोठरी में गुजरता, मंगल कार्यों से दूर रखा जाता। चढ़ती जवानी में वैधव्य पाने वालों की पंक्ति में 'एक और' भी आ मिली। ऐसी विधवाएँ 'कुलछनी', 'कलमुई' कहलातीं। कोई उन पर ध्यान नहीं देता और घर के कोने में आँसू बहती रहती। लेखक की संवेदना उन विधवाओं के प्रति है, जो अपना जीवन और यौवन बलि वेदी पर चढ़ाकर पति को रणक्षेत्र में भेजती हैं। पति की मृत्यु का दुःख एक ओर, उससे अधिक वेदना समाज के निष्करुण बरताव और चुभती चुटीली बातों से हो रही थी। कहानीकार पाठक से सम्मुख यह सवाल रखता है—क्या उन विधवाओं के प्रति समाज का कोई कर्तव्य नहीं है? 'मनुस्मृति' की पंक्ति 'भर्ता रक्षति यौवने' पर गौर करना होगा, जिसका अर्थ है—'यौवन युक्ता भर्त विहीना नहीं रह सकती'। उसकी रक्षा का प्रबंध समाज को करना ही चाहिए। जीवन में एक ही यौवन है। उसे छीनने का अधिकार किसी को नहीं। उसे भर्तमती बनाना समाज का कर्तव्य है।

'लूसी' कहानी में सैनिक जीवन के दो पहलू की ओर रचनाकार इंगित करते हैं—कर्मपरक एवं भावपरक। कर्मपरक कार्य रोकर या हँसकर करना ही पड़ता है। भावपरक से सरकार और जनता उन्हें वंचित रखती है। लूसी एक प्यारी कुत्तिया थी, जिसके आने से माँद में रौनक आ गई। लेखक का लद्दाख तबादला होने पर विदाई की वेला में लूसी बेचैन हो दौड़ती रही, मानो कहना चाहती है 'कोई उसे रोको'। लेकिन बेचारी को क्या पता कि सेना में भावना का कोई स्थान नहीं है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद विभाजन से संबंधित हलचल मच रही थी। भारतीय सैनिकों को पाक सीमा पर तैनात कर दिया गया था। जम्मू से श्रीनगर तक का मार्ग कष्टदायक था। 'जाको राखे साइयां' कहानी में

इन चट्टानों की कष्टमयी यात्रा, दुर्घटना और बचाव का वर्णन मिलता है। लेखक के मन में कनका, 'जाको राखे साइयां, मारि सके न कोइ'।

यशवंत मांडे के 'लौंगेवाला' कहानी में १९७१ में भारत पाकिस्तान के बीच के तनाव को चित्रित किया है। पूर्वी पाकिस्तान में आजादी के लिए हलचल और संघर्ष शुरू हो गया था। पाकिस्तान ने युद्ध की घोषणा किए बिना ही युद्ध आरंभ कर दिया। पूरे देश में देशभक्ति की धारा बहने लगी। सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए पूरे देशवासी आगे आए। सेना और सामान्य जनता के बीच के संबंध इससे और मजबूत हुए। पायलटों और बेस कमांडर की पत्नियाँ सेना का हौसला बढ़ाने पहुँचे। उनका मानना था कि हवाई अड्डे पर उनकी उपस्थिति सैनिकों का हौसला बढ़ाएगी। वे कहती हैं—"हम तो तुम्हारी मदद करने के लिए आए हैं। यह मत समझना कि परिवार कल्याण सिर्फ अमन के समय होता है।" उन्हें यकीन था कि उनके मौजूद रहने से हर एक के ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वायुसेना स्कूल के प्राचार्य ने कुछ दिनों के लिए स्कूल बंद कर दिया और सारा स्कूल, उसके कर्मचारी और बच्चे सहायता के लिए तैयार हो गए। युद्ध और तनाव में बच्चों की मानसिकता उल्लेखनीय है। तन-मन से वे तैयारियों में जुट जाते है। क्वार्टर गार्ड में बच्चे वायु सैनिकों के लिए चाय और खाना बाँटने का काम करते थे। भारतीय सेना पूर्वी पाकिस्तान में तीनों दिशाओं में हमला कर रही थी और उसे लगातार विजय प्राप्त हो रही थी। १६ दिसंबर तक युद्ध-विराम की घोषणा हो गई।

'विक्रांत' कहानी में यशवंत मांडे ने भारतीय नौसेना के पोत विक्रांत की १९७१ युद्ध में भूमिका पर विस्तार से चर्चा की है। यह वायुसेना का प्रथम वायु पोत है, जिसे १९५७ में ब्रिटेन से खरीदा गया और उसका नाम आई.एन.एस. विक्रांत रखा गया। खरीदने के बाद इसमें आवश्यक तब्दीली की गई और मार्च १९६१ में इसे भारतीय नौसेना में शामिल किया गया। 'विक्रांत' भारतीय नौसेना की शान बन गया। १९६५ के युद्ध में उसे पाकिस्तान की पनडुब्बियों से छुपाकर रखा गया। इसलिए नौसेना ने १९७१ की लड़ाई में विक्रांत का पूरा उपयोग किया। विक्रांत पूरे इलाके में अपनी धाक जमाए बैठा था। उसके विमानों ने पाकिस्तान के तीन जहाज जैसोर, कोमिला और सिलहट को नष्ट कर दिया था। पाकिस्तान की ४७ हजार टन से अधिक नौकाओं को बरबाद कर दिया था। वहाँ के सभी बंदरगाह, जैसे कॉकस, बजार, चिटगाँव, मोंगला, खुलना, बरीसाल का विनाश कर दिया था। विक्रांत ने बिना किसी हानि के अपना कार्य पूरा किया।

'जाट बलवान : जय भगवान' कहानी दो जवानों—जागेराम और माँगेराम की है, जो कारगिल युद्ध में अपंग हो गए थे। सरकार का आदेश था कि जो जवान कारगिल के युद्ध में जख्मी हुए हैं, उन्हें नौकरी से बाहर नहीं किया जाएगा। लेकिन जागेराम और माँगेराम दोनों ही फौज छोड़ने का फैसला करते हैं। गाँव की जमीन और माल मवेशी से गुजारा हो जाएगा, इस उम्मीद से वे दोनों फौज में चपरासी की नौकरी से इनकार कर देते हैं।

मांडेजी की 'जाट बलवान : जय भगवान' और 'कारगिल के वीर' कहानी कारगिल की लड़ाई से संबंधित है। कारगिल ने देश में एकता की भावना पैदा कर दी थी। प्रजातंत्र की कार्यप्रणाली निराली होती है। एक तरफ तो विपक्ष की पार्टियाँ सरकार की आलोचना कर रही थीं और दूसरी तरफ वह दुश्मन को भगाने के लिए हर प्रकार से सरकार की मदद करने को तैयार थीं। 'कारगिल के वीर' कहानी में यशवंतजी ने विस्तार से कारगिल लड़ाई में सेना के अभियान और विजय-प्राप्ति का ब्योरा दिया है। इस कहानी में सैनिकों के अंतर्द्वंद्व को महसूस किया जा सकता है कि कैसे एक जवान युद्ध और शांति के बीच सदैव झूलता रहता है। 'जाट बलवान : जय भगवान' कहानी दो जवानों—जागेराम और माँगेराम की है, जो कारगिल युद्ध में अपंग हो गए थे। सरकार का आदेश था कि जो जवान कारगिल के युद्ध में जख्मी हुए हैं, उन्हें नौकरी से बाहर नहीं किया जाएगा। लेकिन जागेराम और माँगेराम दोनों ही फौज छोड़ने का फैसला करते हैं। गाँव की जमीन और माल मवेशी से गुजारा हो जाएगा, इस उम्मीद से वे दोनों फौज में चपरासी की नौकरी से इनकार कर देते हैं।

श्रीधरन नंबियार और यशवंत मांडे अपनी कहानियों की परिकल्पना और पात्रों के व्यवहार-संवाद के माध्यम से सेना और नागरिक संबंधों के कई आयामों का जीवंत वर्णन प्रस्तुत करते हैं। 'अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्ति का कारण बनता है।' फौजी जीवन के अनुभवों को भारत के विभिन्न प्रदेशों से गुजरते हुए, उसके संघर्ष को संवेदना के साथ चित्रित करने में दोनों ही कहानीकार सफल हुए हैं। हिंदी साहित्य में सीमा प्रांत की समस्याएँ, युद्ध की आशंकाएँ, सैनिक की प्रतिबद्धता, प्रतिकूल परिस्थितियों में साहस के साथ बढ़ने, सेना की दुविधाओं का चित्रण कम ही हुआ है। इन कहानियों से गुजरते हुए भारतीय सेना की सेवा और बलिदान के प्रति अपार श्रद्धा मन में जगती है। सैनिक भी मनुष्य है और उनकी भावनाएँ-संवेदनाएँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितना कि अन्य किसी मनुष्य का—यह एहसास पूरे भारतवर्ष के सैनिकों के प्रति आदर-सम्मान-समर्पण जगाता है।

सा अ

सहायक आचार्य,
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग,
केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय,
पोस्ट पेरिया, कासरगोड-६७१३२० (केरल)
दूरभाष : ०९७४७२९३७३५
supriya@cukerala.ac.in

जुगाड़िन

● तपेश भौमिक

अचानक आँधी का आना और घर पर डॉली दी (जीजी) का आ धमकना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब भी आँगन में प्रवेश करती, वह सीधे अंतिम छोर पर मेरी माँ की यानी अपनी मामी के ठाकुरजी के घर तक चलकर बरामदे के एक कोने में अपना झोला नि:शब्द रख देती और सीधे टॉयलेट की ओर भाग जाती। उसे देखकर अनदेखी करना लगभग सबका अभ्यास बन चुका था। किसी ने भूले-भटके उससे आगे बढ़कर दो-चार बातें अगर कर लीं तो देर-सबेर अपने-आप को हर्जाना देने को भी उसे तैयार रहना पड़ता। लेकिन उसे नजरअंदाज करने से ही छुटकारा मिल जाए, यह सोचना भी गलत साबित होता, जब बाहर से कोई रिक्शावाला अंदर आकर यह कहता कि आपके घर कोई गेस्ट आया है, अब उसका भाड़ा दीजिए।

"क्यों भई! तुम्हें भाड़ा नहीं मिला है क्या?"

"नहीं, उन्होंने 'छुट्टे पैसे नहीं है,' कहकर अंदर जाते समय यह कह दिया कि अभी लाकर देती हूँ। मैं तो कोई आधे घंटे से बाहर खड़ा हूँ, वो अब आए, तब आए, लेकिन आए तब तो!" रिक्शेवाला गुस्से में भरकर कहता। तभी माँ टॉयलेट के पास जाकर चिल्लाकर कहती, "डॉली! तुमने रिक्शेवाले को भाड़ा नहीं चुकाया?"

"जी, नहीं मामीजी, मेरे पास छुट्टे पैसे नहीं थे; मैं जल्दबाजी में थी टॉयलेट के लिए···!" भीतर से आवाज आती।

अब माँ कुछ अनुनय भरे स्वर में मुझसे या जो भी उस समय उस संक्रमण के दौर में उपस्थित रहता, उससे आकर कहती, "भाड़ा दे दो।" रिक्शावाला जितना माँगता, उतना देकर हम बिदा कर देते। अब किसे इतनी फुरसत हो कि भाड़े की तहकीकात करे; उससे मुँह लगाए! डॉली दी की आदत ही ऐसी थी, इस तरह की बातें वह जब आती, तभी होती।

हरिहर ने भी मुझे बताया था कि वह पहले उसके यहाँ आकर कुछ दिन गुजारती, फिर मेरे यहाँ आने के लिए उससे रिक्शा भाड़ा लेकर ही आती; फिर यहाँ आकर मुझसे या घर के किसी सदस्य से भी वसूली करती। 'यात्रा एक और किराया दो!' एक दिन माँ से मैंने कहा था कि उनकी इस चालाकी की पोल खुलनी ही चाहिए। माँ ने फिर एक बार अनुनय भरे स्वर में मुझसे कहा था, "जाने दो, विधवा है, अभाव में स्वभाव भ्रष्ट हो जाता है।" मेरी अनुपस्थिति में पत्नी भाड़ा चुका देती, लेकिन शाम को घर लौटने पर अन्य खर्चों के साथ इस आमद को भी जोड़कर मुझसे वसूली कर लेती।

लगभग सौ से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। २००४ से २००७ तक सिलीगुड़ी से प्रकाशित 'दैनिक जनपथ समाचार' में बतौर स्थानीय संवाददाता। संप्रति कोचिंग सेंटर संचालन और स्वतंत्र लेखन। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'शताब्दी-सम्मान' से सम्मानित।

रिक्शेवाले के बिदा होने पर नहा-धोकर बाहर आती, ठाकुरजी के यहाँ साष्टांग प्रणाम लगाती, जिससे माँजी खुश। फिर माँ को और पिताजी को उनके चरणों में सिर झुकाकर नमन करती। फिर माँ अगर कोई काम करती होती तो उस काम को एक प्रकार से छीनकर करने लगती। बहुओं से आकर उनके कुशल-मंगल का पता करती, साथ ही उनके नैहर की लंबी-लंबी बड़ाई के पुल बाँधती। बहुएँ खुश! जिसने रिक्शे का भाड़ा चुकाया, वह भी अब उस प्रसंग को छेड़ना अनुचित समझकर अपने काम में लग जाती या उस से रूबरू होने के डर से अपने को भूमिगत कर लेती या उनसे नजर बचाए इधर-उधर के काम में व्यस्त हो जाती।

पिछली बार की भाँति इस बार भी वह अचानक ही सुबह-सुबह धूमकेतु सी दिख गई। मैं नाश्ते के मेज पर था। मुँह में पहला कौर दिया नहीं कि वह एकदम सामने आकर खड़ी हो गई। देखते ही मैंने भूत देखने जैसा डर गया। मैं उल्टे पाँव घर के अंदर फिसल जाने की कोशिश करता, पर नाश्ते की मेज से उठना तो मुश्किल था। विफल मनोरथ होकर सरेंडर की मुद्रा में उनके आगे सिर झुका लिया। सोचने लगा 'सुबह-सुबह बे-मौत मारा गया! अब इनसे निस्तार कैसे मिले?' इस बार सीधे यह कहकर टॉयलेट भागी, "भैया, मेरे पास छुट्टे पैसे नहीं हैं, रिक्शा-भाड़ा दे देना।" बकरे की अम्मा कब तक खैर मनाए! यह सोचकर भाड़ा दे दिया। पूरा एक घंटा बिताकर निकली तो माँ-बाबूजी की 'गोड़ लगाई' रस्म पूरी करके ठाकुरजी के सामने साष्टांग कुछ देर तक पड़ी रही। फिर माँ के सामने आकर जब बैठी, तब उनका पहला सवाल था, "तुमने आज 'रिक्शा-भाड़ा' दिया कि नहीं?"

"कैसे देती! बड़े भैया सामने ही मिल गए, उन्होंने ही दे दिया। उनके रहने पर मुझे भाड़ा देने का वे मौका ही कब देते हैं!"

और अब बड़े भले मानुष जैसी तोहमत लगाते हुए कहने लगी, "आप लोग एकदम नहीं जाते! कभी-कभी जाना चाहिए कि नहीं? मैं तो सबके लिए चिंता में रहती हूँ, इसलिए मैं खुद ही आ गई।"

इतने में माँ के पास जाकर बहुओं को सुनाकर कहने लगी, "मेरी यह मामी कितनी गोरी-चिट्ठी थी! मैं तो छोटी थी, जब ये व्याहकर आई थीं! उन दिनों मामी को देखने आनेवालों का ताँता लगा रहता था। अब चेहरा कितना उतर गया है! आजकल शुगर की बीमारी अकाल बुढ़ापे की बीमारी है। इसकी चपेट में जो आया, उसके लिए तो जीना हराम हो गया''उनकी यह सूरत इन आँखों से देखी नहीं जाती।" आदि-आदि।

अब तक माँ भी उसकी झूठी सहानुभूति की बातें सुनकर मुसकरा दी थी, "तुम्हें किसने कहा कि मुझे शुगर है?" माँ ने उससे जरा चिढ़कर कहा, "इतनी उम्र में शुगर की बीमारी नहीं है! तब तो ठीक है। लेकिन बीच-बीच में टेस्ट करवाना जरूरी होता है।" एक अनुभवी की तरह बोल रही थी। ऐसी बातें सुनकर इधर-उधर बहुएँ हँस रही थीं। उसे इसका कोई फर्क नहीं पड़ा। वह पूर्ववत् गंभीरता से अपनी सहानुभूति और अपनत्व मिश्रित मिसरी की डलियाँ जबरन सबको ठूँस-ठूँसकर खिलाने का प्रयास करने लगी। दरअसल वह अपनी ओर से माँ की सहानुभूति बटोरने के लिए कोई भी कसर न छोड़ती थी। वह माँ की कुछ कमजोर नब्जों को खूब पहचान चुकी थी। जब जैसा मौका आता, वैसी ही नब्ज दबा देती।

"आपको शुगर नहीं तो ब्लड प्रेशर तो जरूर है?" उसने अब अंतिम दाँव की बाजी लगा दी। अब माँ उसकी बातों को नजरअंदाज न कर सकी।

"हाँ, हर दिन इसकी एक गोली लेती हूँ। थोड़ी सा सिरदर्द और चक्कर आने की शिकायत तो रहती है।" अब तक माँ न चाहते हुए भी उसकी बातों के मकड़जाल में फँस चुकी थी।

"मैं देखते ही समझ जाती हूँ, कुछ-न-कुछ गड़बड़ तो जरूर है!" एक तरफ उसकी बातें अपने उफान पर थीं, जबकि दूसरी तरफ बाकी लोग अब तक उसकी बातों से उकता चुके थे। ऐसी ही बे-सिर-पैर की झूठी सहानुभूति की बातें वह जब आती, तभी करने लगती। माँ भी यह समझ जातीं कि किसी बड़े जुगाड़ के लिए इस बार गाँठ बाँधकर आई है।

"इस उम्र में मैं जितना चल-फिर लेती हूँ, उतना शायद कोई अन्य कर ले!" माँ ने अपनी शक्ति की मुहर लगाते हुए कहा, क्यों कि बड़ी बहू पास ही खड़ी थी, जो अस्वस्थ रहती थी। उन्हें अपना व्यंग्य-बाण चलाने का अच्छा मौका हाथ लग गया था। यह कहकर माँ जरा तेज कदमों से अपने कमरे की ओर जाने लगीं, तो पीछे-पीछे डॉली दी भी जाने लगी।

"हाँ-हाँ, एकदम ठीक कहा आपने, कोई दूसरी मेरी मामी के आगे टिक न पाए! दोनों बहुओं का क्या! इन्हें तो जब मर्जी अपने नैहर जाने से फुरसत ही नहीं!" इतना सुनते ही माँ भी अब सासु-सुलभ चरित्र पर उतर आईं। माँ उसके बिछाए जाल में आखिरकार फँस ही गई। यह इस प्रकार हुआ कि वह मेरी बुआ के यहाँ, यानी फुफेरे भाई हरिहर के यहाँ से वाया होकर आई थी। अब निश्चय ही भाभी अपनी ननद के बारे में कुछ मसालेदार समाचार की अपेक्षा करेगी। थोड़ी देर तक डॉली दी उनकी ननद के बारे में बातें करके उनके कान भरने लगीं तो माँ का चेहरा खिल उठा। पहले-पहल उसने माँ की इसी ननद यानी मेरी छोटी बुआ के साथ हमारे यहाँ एंट्री ली थी। वह उन्हीं की भानजी लगती है, जिनका हमसे तो बहुत दूर का रिश्ता ठहरा!

अब वह फिर कमरों में झाँक-झाँककर बहुओं को ढूँढ़ने लगी। सबको पता था कि अब उनके भी दिमाग चाटने आएगी। इसलिए वे भी पहले से ही अपने किसी-न-किसी काम में लग गई थीं। वह तब तक जितना हो सके, माँ के मुँह से जो भी हो, उगलवा चुकी थी। अब रसोई के आगे आसन जमाकर बैठ गई। रसोई में रसोई बनाने वाली रसोइया दीदी थीं।

"क्या आजकल बहुएँ रसोई नहीं बनाती है?" किसी ने कोई जवाब नहीं दिया तो वह मीडिया की भूमिका में अवतरित होकर रसोई बननेवाली औरत से ही कुछ उगलवाने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन रसोई-दीदी ने 'हाँ-हूँ' में जवाब देकर जब चुप्पी साध ली तो फिर वह बच्चों से ही कुछ इधर-उधर की बातें पूछने लगी। बच्चे उसकी गँवई बोली न समझकर अपनी-अपनी माओं से पूछने लगे कि वह क्या कह रही हैं?

अब तक खाना खाने का वक्त हो चुका था। माँ अब बहुओं के सामने थीं। डॉली दी इस मौके का भी फायदा उठाने से नहीं चूकी—"मामीजी, आपकी बहुएँ तो दूसरे घर की बहुओं से अच्छी हैं, वे तो आपके शासन में रहती हैं, यही क्या कम है!" बहुओं के सामने उसने अपना रंग बदल लिया, क्योंकि लौटती बेर उनसे भी अच्छी उगाही जो हो जाती है! इस बात से बहुओं का चेहरा भी खिल उठा।

जिस दिन आई थीं, उस दिन एक झोला लेकर आई थीं, अब जाने लगीं तो एक और अतिरिक्त झोला सज गया था। दरअसल वह जिस दिन रवाना होती, उस दिन का नजारा कुछ ऐसा ही होता था। वह चीजों की जुगाड़ लगाने में नायाब हथकंडे अपनाती। कुछ पुराने कपड़े कुछ अनचाहे नए कपड़े, चद्दर, बेड-शीट एवं कथरी सीने के लिए पुराने कपड़े, फिर माँ से तेल-मशाले, साबुन की टिकिया, बहुओं से कुछ ऐसे उबटन, जिन्हें वे नापसंदगी के खाते में रख छोड़ी होतीं, जुगाड़ लगा लेती। इस प्रकार घर से सौ फीसदी छूट के सेल की सामग्री लेकर जिस दिन रवाना होती, उस दिन भी लौटने का पूरा किराया और अपनी दवा-दारू के लिए पैसे लेकर ही खिसकती। हम किराया-दवा आदि के पैसे देकर यही सोचते कि चलो बला टल गई।

आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। आज झोला इतना भारी हो चुका था कि वह उसे उठाने में काफी मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी। मैंने मदद करनी चाही, पर उसने झोले को छूने ही नहीं दिया। रिक्शेवाले को बुलाकर दोनों

झोले उसने उठवा लिये। शायद यह सोचकर उसने मुझे झोला न उठाने दिया होगा कि मैं उसके भारीपन से कुछ अन्यथा न समझ लूँ।

इस बीच पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। छोटी बुआ अपने असिस्टेंट के साथ, यानी डॉली दी के साथ आ चुकी थीं। आते ही रोने-धोने के बाजार को इतना गरम कर दी कि पूछो मत। वह अचानक बुक्का फाड़कर रोने लग गई। शोक का माहौल था ही, ऊपर से रोना देखकर सबकी आँखों में कमोवेश आँसू आ ही गए।

कई लोगों ने हमें सूतक के दौरान फलाहार की सामग्री दी थी, जो हमारे लिए ज्यादा ही था। श्राद्ध संस्कार के दिन भी छोटी बुआ के साथ आई। हम जितने संस्कार कर रहे थे, उनमें अपनी टाँग अड़ाने लगी तो माँ ने उसे झिड़क दिया।

दूसरे दिन जितने बचे हुए फल थे, उनमें से आधे यह कहकर उठा ले गई कि आजकल फल कहाँ खाते हैं लोग! तेरह दिन तक फलाहार करते-करते हम भी जरूर उकता चुके होंगे। दूसरे दिन जब बिदा हो रही थी, दो-दो झोले अतिरिक्त सज गए थे।

एक दिन हरिहर मिला तो बातों-बातों में उसने बताया कि उसकी माँ, यानी मेरी छोटी बुआ बीमार पड़ी थी तो उनकी देखभाल के लिए डॉली दी को उसने बुला लिया था। बस क्या था, उनका आना-जाना शुरू हो गया। इससे सुविधा यह हुई कि छोटी बुआ को कहीं आना-जाना होता, उसे बुला लेती सहारे के लिए। इसी बहाने जहाँ-जहाँ बुआ साथ लेकर जाती, वहाँ-वहाँ उसने अपने संबंध जोड़ लेती। अब जब भी हरिहर के यहाँ आती, तब-तब बुआ से संबंधित सभी के यहाँ हाजिरी लगाती और अपने चरित्र के अनुसार सामान बटोरती जाती। फाइनल यात्रा के दिन हरिहर से भी अच्छी वसूली करके ही खिसकती।

इसके बाद छह महीने बीत गए, वह नहीं आई थी। घर में किसी ने इस बात का नोटिस भी नहीं लिया। मैंने एक बार अपनी पत्नी से इस बात की चर्चा की कि कहीं वह बीमार तो नहीं पड़ गई! पत्नी ने यह कहकर बात टाल गई थी कि कुछ ऐसा-वैसा होता तो हरिहर भैया के यहाँ से समाचार आ ही जाता। हमने भी चर्चा पर विराम लगा दिया।

दूसरे ही दिन डॉली दी की बेटी हाथ में एक छोटी सी पर्ची लिये आ धमकी। उस पर पेंसिल द्वारा अनगढ़ अक्षरों में कुछ बातें लिखी थीं—

प्रणाम मामीजी,

शत-कोटि प्रणाम,

मैं बीमार पड़ी हूँ। दवा खरीदने के पैसे नहीं हैं। हरिहर की बेटी की शादी है, उसे चिट्ठी नहीं लिखी, इसलिए डॉक्टर की पर्ची सीधे आपके पास भेज रही हूँ। अब दवा-दारू के लिए आप ही का भरोसा है। एक हजार रुपए दे दीजिएगा। अगले महीने गाय बछड़ा देगी तो दूध बेचकर आपको पैसे चुका दूँगी। मामाजी के चरणों में प्रणाम।

अभागन, डॉली

मैंने उनकी बेटी के हाथ पाँच सौ रुपए दे दिए और कहा, "काम चलाओ, आगे देखता हूँ। इस रुपए को लौटाने की कोई जरूरत नहीं है, कह देना।" मुझे पता था कि उनकी यह बेटी उनसे भी एक कदम आगे है। वह 'जुगाड़िन' तो यह 'बटोरिन'।

दो दिन बाद हरिहर से पता चला कि उससे भी पैसे माँगे गए थे, पर उसने बेटी की शादी की दुहाई देकर कह दिया था, "अमुक दवा दुकान पर चली जाओ, मैं फोन कर देता हूँ, वे दवा दे देंगे। अभी नकदी नहीं दे सकता।"

हरिहर ने मुझसे कहा था कि मैं डॉली दी को नकदी नहीं देता हूँ, जरूरत की चीज खरीदकर दे देता हूँ। दरअसल वह इतनी गरीब भी नहीं है कि गुजारा ही न हो। बातों-बातों में उसने बताया कि डॉली दी के आमंत्रण पर वह एक दिन उनके गाँव गया था। प्रलोभन यह था कि उनके छोटे से पोखर में मछलियाँ अनेक हैं। 'आउटिंग फिशिंग' दोनों का आनंद एक साथ उठाया जा सकता है। डॉली दी के यहाँ पहुँचते ही लेनदारों का ताँता सा लग गया। उन लोगों ने हरिहर से आकर यह कहा कि डॉली दी ने सबको यह आश्वासन दे रखा था कि उनके उधार हरिहर आकर चुका देगा। अब क्या, जितना बन पड़ा, उसने उतना चुका दिया! उस दिन मछली पकड़ में आईं या नहीं, पता नहीं, लेकिन हरिहर को झख मारकर लौटना पड़ा था।

हम दोनों के परिवार में कोई भी पूजा-संस्कार आदि कुछ भी होता तो इसका पता मेरी बुआ यानी हरिहर की माँ से उसे चल ही जाता, क्योंकि बुआ अकेली नहीं आती थी! वह अपने आप को अकेली सँभाल नहीं पाती थी। एक तो उम्र के कारण दूसरा थोड़ी सी जड़ बुद्धि होने के कारण। उसी बहाने वह बिन बुलाए मेहमान की तरह चली आती और कहती कि उसे और दो दिन पहले खबर क्यों नहीं भेज दी हमने? वह खुशी-खुशी चली आती। ऐसे अवसरों पर वह कम-से-कम एक सप्ताह जरूर टिक जाती। हमारे घर कोई त्योहार या उत्सव हो तो बुआ आती जरूर, पर साथ में अपनी गाइड डॉली दी को भी ले आती। इस प्रकार दूर के रिश्ते की डॉली दी हमारे परिवार से भी जुड़ गई थी।

"हरिहर मामा ने रुपए नहीं दिए हैं।" डॉली दी की बेटी ने मुँह बनाकर कहा। लेकिन दवा तो खरीद दी थी, इस बात का खुलासा उसने नहीं किया। सफेद झूठ शायद इसे ही कहते हैं! जो भी हो, तब कुछ रुपए-पैसे देकर उसे रवाना कर दिया था। सोचा, बला टल गई।

लेकिन बला नहीं टली थी। दो दिन बाद उनकी बेटी ने फोन किया। कहने लगी कि डॉली दी अब मरणासन्न है और मुझे देखना चाहती है। अब वह शायद नहीं जीएगी! मियादी बुखार है, बुखार चढ़ने पर बड़बड़ाती है और कहती है, "बाबू को मैंने कितना गोद में लेकर खिलाया है! मामी जब दूसरी संतान को जन्म देनेवाली थी, उस समय मैं ही बाबू को देखा करती थी, उसे कितना गोद में लेकर खिलाती, नहलाती थी। अब वह मेरी खबर भी नहीं लेता है!" अब वह शायद न जीए!

मैंने माँ से इस बारे में पूछा तो उन्होंने बताया था कि मैं अपने ननदजी के यहाँ गई थी, उस समय वह वहाँ आती-जाती थी तो गोद में उठा कर घूमा भी करती। वैसा कुछ भी नहीं है, जो उसने तुम्हारी नियमित देखभाल की हो। वह केवल संपर्क जोड़कर उसे भुनाती फिरती है और उसका भरपूर फायदा उठाती है।

"जा बेटा, देख आ।" माँ ने आदेश दिया, तो अन्य कामों को आधे दिन के लिए टालकर कुछ फल और एक साड़ी लेकर मैं रवाना हुआ। मोटर साइकिल से कोई चालीस मिनट का सफर।

सचमुच डॉली दी मरणासन्न थी। मुझे देखकर न जाने किस शक्ति से भरकर वह बिस्तर पर आधी उठ गई थी। उसने कितने सारे उलाहने दिए, पता नहीं। अन्य लोगों ने कहा कि वह तो दस दिन से पड़ी है, आज कैसे इतना उठ गई! वह उत्तेजना की शक्ति से भरकर उठ गई थी; यह उसकी अपनी शक्ति नहीं थी। भौतिक विज्ञान में इसे जड़ता की शक्ति कहते हैं शायद!

दो दिन बाद वह लड़की फिर आई और आते ही कुछ घड़ियाली आँसू बहाकर कहने लगी कि डॉली दी की पुण्यात्मा परलोक चली गई है। अब श्राद्ध संस्कार के लिए पैसे चाहिए। जमापूँजी कुछ भी नहीं है। हरिहर ने नगदी कुछ भी नहीं दी हैं, श्राद्ध की पर्ची का समान खरीदकर दे दिया है। इस बार मैं भी रुपए नहीं देना चाहता था। मुझे पता था कि लड़की का पति शराबी है और रुपए छीनकर दारू पी लेगा। लड़की ने ही कहा कि मैं गल्ले का सामान खरीदकर दे दूँ। उसने इस मद में जिनके नाम गिनाए—वे थे पाँच ब्राह्मण, ग्यारह दरिद्र नारायण, इक्कीस बाल गोपाल, श्मशान बंधु इक्यावन, नाते-रिश्तेदार लगभग एक सौ। कुल मिलाकर दो सौ हो ही रहे थे।

श्राद्ध संस्कार के दिन गया तो उनकी बेटी ने एक पर्ची और थमा दी, जिसमें लिखा था कौन-कौन कितने का लेनदार है। संस्कार-क्रिया में लगे पुरोहित ने कहा कि उन्हें जितना दान दिया जाएगा, उतनी ही पुण्यात्मा को अधिक शांति मिलेगी। साथ ही यह भी जोड़ दिया कि अब लेनदारों के पैसे चुका देने से ही पुण्यात्मा को बैकुंठ जाने का टिकट मिल सकता है। मरते दम तक जितनी वसूली हो सकती थी, उसने कर ही ली! बेटी भी बटोरने में अपनी कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रही थी। हरिहर और उसके कुछ परिचित भी श्रद्धानुष्ठान में देखे गए। सबके आगे एक ही बात का रोना रो रही थी।

"मेरे लिए भी 'आपदा-विपदा' में आप ही लोग सबकुछ हैं!" यह कहकर उनकी बेटी भी आँचल की खूँट से अपनी आँखों के कोर को पोंछने लगी। मेरी पत्नी ने बताया कि वह सबके आगे जाकर अलग-अलग ढंग से एक ही बात को दोहरा रही थी।

मैंने केवल यह कहा, "जुगाड़िन की बेटी 'बटोरिन' निकली!"

साअ
आनंदलोक मॉडल स्कूल, पो.-गुड़ियाहाटी,
कूचबिहार-७३६१७० (प. बंगाल)
दूरभाष : ८९१८५४६९३५
tapeshbhowmick@gmail.com

आँगन के पंछी

कविता

• तृप्ति मिश्रा

लेखिका व कवयित्री/लोकगायिका। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी एवं कविताएँ प्रकाशित। विभिन्न राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कविता-पाठ। दूरदर्शन पर भी कविता-पाठ। रोटरी क्लब द्वारा 'नेशन बिल्डर अवार्ड', 'पर्यावरण संरक्षण सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

काली कलगी लगा के बुलबुल
मेरे घर में आती है,
बैठ मुँडेर पे सबसे पहले
सीता-फल को खाती है,
खाना खाती,पानी पीती
खुश होकर फिर गाती है,
फुदक-फुदककर नाच दिखाती
तसले में वो नहाती है,
काली कलगी लगा के बुलबुल
मेरे घर में आती है।

प्यारी गिलहरी करती चीं-चीं
आँगन में आ जाती है,
हर चीं-चीं के साथ पूँछ को
वो हिला-हिला के नचाती है,
मम्मी उसे मूँगफली देतीं
जल्दी से खा जाती है,
एक मिनट में भाग के फिर से
पेड़ पर वह चढ़ जाती है,
प्यारी गिलहरी करती चीं-चीं
आँगन में आ जाती है।

बौर आम के लगते हैं जब
कोयल घर में आती है,
कुहू-कुहू वह कहते-कहते
मीठा राग सुनाती है,
पत्तों के झुरमुट में छुपकर
नजर नहीं वह आती है,
बस पूरे आँगन में उसकी
कुहू-कुहू ही आती है,
बौर लगते आम के जब
कोयल घर में आती है।

साअ
१७२ सेवा सदन,
आर्य समाज मंदिर के पास,
लुनियापुरा महू-४५३४४१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२७६११७२३

प्रेमचंद : 'गुल्ली डंडा' से 'क्रिकेट मैच' तक

● कमल किशोर गोयनका

भारत में खेलों का लंबा इतिहास है। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले हमारे यहाँ कई प्रकार के खेल प्रचलित थे, जो मनोरंजन तो करते ही थे, पर साथ-साथ शरीर और बुद्धि का विकास भी करते थे। उस समय आज की तरह बड़े-बड़े शहरों का जन्म नहीं हुआ था और गाँव, कस्बा तथा शहरों में कबड्डी, खो-खो, कुश्ती, शतरंज, पोलो, लूडो, साँप-सीढ़ी, मलखंभ, तीरंदाजी, ऊँट तथा बैल दौड़, जुआ, जल्लीकट्टू, गुल्ली-डंडा, छिपाछिपी आदि कई तरह के खेल बच्चे और युवा खेलते थे। खेल भारतीय जीवन का अनिवार्य अंग था। 'महाभारत' में तो कौड़ियों के खेल से जो हार-जीत हुई, उसने तो व्यापक नरसंहार करा दिया। भारत में अंग्रेजों के आने और उनके शासक बनने से यूरोपीय जीवन-शैली तथा उनके विचारों का व्यापक प्रचार हुआ और उनके खेल भी भारतीय जीवन में धीरे-धीरे स्वीकृत होने लगे। अंग्रेजी शासकों ने अपनी शिक्षानीति के साथ खेलकूदों को जोड़कर बालकों एवं युवकों को भी यूरोपीय खेलों के साथ जोड़ दिया और शिक्षालयों में हॉकी, क्रिकेट, बैडमिंटन आदि खेल निरंतर लोकप्रिय होते गए तथा भारत के प्राचीन खेल-कबड्डी, कुश्ती, खो-खो, गुल्ली-डंडा आदि का महत्त्व निरंतर कम होता गया। इस प्रकार हॉकी, क्रिकेट आदि खेल अंग्रेजी शिक्षितों के शतरंज आदि सभ्य एवं उच्च वर्ग का तथा कबड्डी, कुश्ती, गुल्ली-डंडा ग्रामीण लोगों के खेल माने जाने लगे।

प्रेमचंद के जीवन तथा साहित्य में खेलों की चर्चा करते समय इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना जरूरी है। प्रेमचंद का जन्म लमही गाँव में हुआ था और उनकी आरंभिक शिक्षा भी ग्रामीण परिवेश में हुई थी। उनके बचपन और किशोरावस्था की बाल-लीलाओं एवं शैतानियों का वर्णन अमृतराय ने 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' में किया है कि कैसे नाई-नाई खेलते हुए उन्होंने बाँस की कमानी से रामू नामक बालक की नाक काट दी थी। वे टोली के सरताज थे, जो खेत में घुसकर ऊख तोड़ती, मटर उखाड़ती, आमों को ढेले से मारकर गिराती, कुश्ती और गुल्ली-डंडा खेलती, इमली के चिंयों से चिटपट होती और गोली खेली जाती। मौलवी साहब से फारसी पढ़ने जाने पर खेत-मैदान, ऊख-मटर, आम-इमली, दौड़-भाग और गुल्ली-गोली से तरह-तरह के खेल होते और हुल्लड़बाजी होती। इस तरह प्रेमचंद ने गाँव के बच्चों के सम्मुख खेलकूद के जो साधन एवं उपाय थे, उन्होंने उन सभी में बड़े जोश से भाग लिया और वे जब लेखक बने तो उन्होंने 'चोबी', 'कजाकी', 'खेल', 'बड़े भाई साहब', 'ईदगाह' आदि कहानियों में उन स्मृतियों को हमेशा के लिए अंकित कर दिया।

जाने-माने साहित्यकार। इकतालीस वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अब तक प्रेमचंद पर बाईस तथा अन्य साहित्यकारों पर बीस पुस्तकें प्रकाशित। एक नवीनतम विषय 'गांधी की पत्रकारिता' पर एक पुस्तक। प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में ख्यात। विभिन्न संस्थाओं, अकादमियों द्वारा सात पुरस्कार तथा मॉरीशस के एक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष।

प्रेमचंद हिंदी-उर्दू के लेखक थे। वे स्कूल मास्टर, इंस्पेक्टर तथा पत्रिकाओं के संपादक भी रहे, लेकिन पराधीनता के काल में किसी हिंदी लेखक का देशी हो या विदेशी खेलों से लगाव होना और उनमें भी किसी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं मानवीय पक्ष को खोज लेना एकदम अकल्पनीय बात ही मानी जा सकती थी, लेकिन चुनार के मिशन स्कूल में बीस रुपए महीने की पहली नौकरी के समय हुई एक घटना ने प्रेमचंद के खेल-प्रेम के साथ राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं अन्याय के प्रतिकार की प्रबल भावना को उजागर कर दिया। स्कूल में एक दिन फुटबॉल की स्कूली टीम के साथ मिलिटरी की गोरों की रोम से मैच था और इसमें गोरे पराजित हो गए तो एक गोरे खिलाड़ी ने खिसिया करके एक स्कूली खिलाड़ी को बूट से ठाकेर मार दी। प्रेमचंद ने इसे देखा तो खून खौल उठा और आव देखा न ताव, मैदान से एक झंडी उखाड़कर उस गोरे पर बेतहाशा पिल पड़े और लड़कों ने इसे देखकर उस गोरे की खूब पिटाई की। इस प्रकार फुटबॉल के विदेशी खेल ने प्रेमचंद के एक स्वाभिमानी भारतीय होने की छवि सामने आ गई। प्रेमचंद की यह दासत्व में भारतीय मन का प्रकटीकरण था, जो उनकी खेलकूद से जुड़ी कहानियों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहा है। कभी वह भारतीय खेलों का गुणगान करता है, कभी विदेशी खेलों की निंदा तथा भारतीय जीवन में उनकी अनावश्यकता और कभी मानवीय मनोवृत्तियों के उत्कर्ष का सौंदर्यपूर्ण चित्रण। प्रेमचंद हिंदी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने खेलों पर कई कहानियाँ लिखी हैं और वे उनकी श्रेष्ठतम कहानियाँ हैं और जो भारतीय मन के श्रेष्ठतम पक्षों को अभिव्यक्त करती हैं।

प्रेमचंद की खेलकूद से संबंधित कुछ कहानियाँ हैं जो वर्ष १९२४ से लेकर उनके जीवन के अंत तक के समय में मिलती हैं। ये कहानियाँ है—'सैलानी बंदर' (फरवरी, १९२४), 'शतरंज के खिलाड़ी' (अक्तूबर, १९३३), 'खेल' (अप्रैल, १९३१), 'गुल्ली-डंडा' (फरवरी, १९३३), 'ईदगाह' (अगस्त, १९३३), 'बड़े भाई साहब' (नवंबर, १९३४) तथा 'क्रिकेट मैच' (जुलाई, १९३७)। इनमें अधिकांश कहानियाँ खेलों पर आधारित हैं, किंतु दो ऐसी भी हैं, जिनमें खेलों के संदर्भ हैं और लेखक उनसे भी कुछ कहना चाहता है। पहली कहानी है 'सैलानी बंदर', जो पशु और मनुष्य के संबंधों की हदयस्पर्शी कहानी है। जीवनदास अपनी पत्नी बुधिया के साथ अजीविका के लिए बंदर का खेल दिखाता है और बच्चों का मनोरंजन करता है, पर एक बार बंदर किसी के बगीचे में घुसकर फलों को खाआ है और तोड़कर फेंकता है। इस अपराध में सरकस में पहुँचता है, यातनाएँ सहता है और आग लगने पर भागकर अपने पुराने घर पहुँचता है। इधर मदारी मर चुका है और बुधिया पागल हो गई है, लेकिन वह बंदर को पहचान लेती है और वह भी मदारिन को पहचानकर उसके पैरों में लिपट जाता है। इस प्रकार मनुष्य और बंदर की संवेदनाएँ एक हो जाती हैं और बुधिया भी वास्तविक दुनिया में लौट आती है। वैसे तो बंदर नचाना, तमाशा दिखाना बच्चों के लिए मनोरंजन का साधन है, लेकिन लेखक ने बंदर में मानवीय संवेदना उत्पन्न करके इस खेल-तमाशे के महत्त्व को बढ़ा दिया है। बंदर अब पुत्र से ज्यादा बुधिया की सेवा करता है और लोग उसके प्रेम एवं सेवा को देखकर उसे बंदर नहीं, देवता मानते हैं।

प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा अंग्रेजी गुलामी में राजाओं-सामंतों की राजनीतिक उदासीनता, सामाजिक अध:पतन तथा शतरंज मोह ने गुलामी की जंजीरों को और अधिक ठोस एवं विस्तृत बना दिया। लेखक की यह विशेषता है कि उसने भारतीय नवाबों-सामंतों-बादशाहों के इस अध:पतन को उजागर करने के लिए शतरंज के खेल को चुना जो बहुत ही सटीक एवं सार्थक था। शतरंज का जन्म भारत में हुआ था। इसके प्रमाण ५-६ शताब्दी से मिलते हैं। प्राचीन समय में इसे 'चतुरंग' कहते थे। यह खेल पंद्रवी-सोलहवीं शताब्दी में अरब से होता यूरोप पहुँचा और पूरे संसार में फैल गया। यह एक प्रकार से राजा-महराजा, नवाब-सामंतों का खेल था और यह माना जाता था कि इससे बौद्धिक क्षमता बढ़ती है तथा युद्ध में व्यूह-रचना का कौशल आता है। कहानी वाजिदअली शाह के समय की है, जब लखनऊ पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था, यह वह समय था जब राजनीतिक चेतना का पतन हो गया था और नवाब, सामंत और समाज नाच-गाने, तीतर-बटेर, अफीम आदि विलासी जीवन में मस्त थे और खेल-तमाशे एवं राग-रंग ही जीवन हो गया था। राजनीति शतरंज की विसात होकर रह गई थी और कंपनी बहादुर की गोरी सल्तनत का शिकंजा तेज कसता जा रहा था और इसकी किसी को फ्रिक न थी। 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में मीर और मिर्जा के शतरंज खेलने में व्यस्त-मस्त हैं और उधर अंग्रेज देशी राज्यों को हड़पने में आगे बढ़ते जा रहे हैं। कहानी के हिंदुस्तानी मीर-मिर्जा शतरंज के बादशाह की रक्षा के लिए लड़ते हुए एक-दूसरे को मार देते हैं और उधर अंग्रेज शतरंज की ऐसी बाजी खेलते हैं कि उन दोनों का बादशाह बंदी बना लिया जाता है। मीर और मिर्जा की आलस्य, राजनीतिक शून्यता, आत्म-केंद्रीयता, निष्क्रियता और अंग्रेजों की गुलामी की सहज स्वीकृति इस राजनीतिक पतन के कारण हैं। ये लोग अपने बादशाह के लिए अपनी आँखों से एक बूँद नहीं गिराते, पर वे दोनों शतरंज के बादशाह की रक्षा के लिए प्राण दे देते हैं। लेखक इस कहानी में भारतीयों के राजनीतिक अध:पतन और उससे दुष्परिणाम का जो संदेश देना चाहता है, वह शतरंज के खेल से बेहतर और किसी से प्रतिवादित नहीं हो सकता था। साहित्य में किसी खेल का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। इस कहानी ने प्रेमचंद के शतंरज-ज्ञान का ही परिचय न ही दिया, बल्कि उनकी खेल-दृष्टि एवं खेल-विमर्श का भी सशक्त प्रमाण दे दिया।

प्रेमचंद की कहानी 'खेल' मूलत: उर्दू पत्रिका 'चंदन' में छपी थी और हिंदी में इसका रूपांतर करके पहली बार इन पंक्तियों के लेखक ने प्रकाशित कराया था। यह कहानी गाँव के बालकों के खेल-खेल में किए गए एक नाटक की है, जो खेल होने पर भी बाल जीवन का वास्तविक चित्र बन जाता है। जीवन कहानी बनता है और कहानी जीवन और यह खेल-खेल में होता है। कहानी में गाँव का एक बालक दादी की आँख बचाकर ठेठ गरमी में अपनी झोंपड़ी से निकलकर भाग जाता है और सड़क पर शहर से आने वाले खोंचेवाले का इंतजार करता है। बालक उसका इंतजार करते हुए गुस्सा करता है और खुद खोंचेवाला बन जाता है। वह एक टूटी डलिया लेता है, उसे खोंमचा बनाकर मिठाई की जगह ईंट-पत्थर रखकर असली खोंमचेवाला की तरह गाँव में प्रवेश करता है। गाँव के बच्चे उसे असली खोंमचेवाला मानकर पहले की तरह ही उसके पीछे चलते हैं, कंकड-पत्थर से बने सिक्कों से उससे चीजें खरीदते हैं। खोंमचेवाला बालक एक पत्ते में तीन-चार कंकड रखकर दे देता है और लेखक कहता है कि खुट्टियों में इतनी शीरीनी (मिश्रण), इतनी लज्जत (आनंद, स्वाद) कब हासिल हुआ था? इस खेल में इतना लुत्फ था कि इस खोंच को असल समझकर बच्चों ने जीया और रूहानियत का अनुभव किया। यह प्रेमचंद की कहानी-कला का चरमोत्कर्ष है, जब वे खेल को जीवन और जीवन को खेल बना देते हैं। इससे पूर्व जैनेंद्र कुमार की 'खेल' कहानी छप चुकी थी, लेकिन उसके बालपात्र बौद्धिकता एवं दार्शनकिता के कारण बाल-सुलभ प्रवृत्तियों से वंचित रह गए हैं, जबकि प्रेमचंद गाँव के बच्चों की बाल-क्रीड़ा को जीवंत कहानी बना देते हैं और खेल को खेल-खेल में बाल्य जीवन का एक सुंदर बिंब निर्मित करते हैं।

प्रेमचंद के खेल-विमर्श की दृष्टि से 'गुल्ली-डंडा' एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहानी है। 'खेल' कहानी में केवल गाँव का परिवेश है, जबकि 'गुल्ली-डंडा' में गाँव का देहाती और शहर का सभ्य पात्र एक-दूसरे के सामने हैं और गुल्ली-डंडा खेलकर वे समाज में भेदभाव, ऊँच-नीच, देहाती-शहरी आदि में अमानवीय व्यवहारों की सच्चाइयों को स्पष्ट करते हैं। प्रेमचंद की कहानी 'बैंक का दिवाला' (फरवरी-मार्च, १९१९) में बरहल के महाराजा कुँअर जगदीश सिंह अपने बचपन के एक अहीर साथी शिवदास को पहचान लेते हैं, जिसके साथ वे कबड्डी तथा गुल्ली-डंडा साथ-साथ खेले थे और ऊँच-नीच का विचार नहीं आया था। कुँअर शिवदास से बरहल ले जाकर एक बार फिर गुल्ली-डंडा खेलना चाहते हैं। 'गुल्ली-डंडा' फरवरी, १९३३ में 'हंस' में प्रकाशित हुई थी और इसके कथा-पात्र, कथा-वाचक (जो थानेदार का बेटा और इंजीनियर है) तथा गया चनार (जो डिप्टी साहब का साइंस है) 'बैंक का दिवाला' के

पात्रों के वंशज हैं। दोनों कहानियों में इन पात्रों का एक जैसा रिश्ता है—एक उच्चवर्गीय सभ्य तथा दूसरा निम्नवर्गीय साधारण व्यक्ति। गुल्ली-डंडा एक ग्रामीण खेल है, जो बच्चों का प्रिय खेल है और वे शुद्ध भारतीय है। प्रेमचंद ने 'गुल्ली-डंडा' कहानी के आरंभ में ही भारतीय और विदेशी खेलों का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है और इसमें वे स्पष्टत: भारतीय खेलों के साथ हैं। इस लंबे अवतरण में वे लिखते हैं—"हमारे अंग्रेजीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है।" अब भी जब कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ खेलने लगूँ। न लान की जरूरत, न शिनगार्ड की, न नेट की, न थापी की। मजे से किसी पेड़ से एक टहनी काट ली, गुल्ली बना ली और दो आदमी भी आ गए, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब है कि उनके सामान महँगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार हीं नहीं हो सकता। यहाँ गुल्ली-डंडा हैं कि बिना हर्द-फिटकरी के चोखा रंग देता है; पर हम अंग्रेजी चीजों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीजों से अरुचि हो गई है। हमोर स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपए सालाना केवल खेलने की फीस ली जाती है। किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खेलाएँ, जो बिना दाम-कौड़ी के खेले जाते हैं। अंग्रेजी खेल उनके लिए है, जिनके पास धन है। गरीब लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो।" लेखक इसके आगे चलकर बचपन की अपनी गुल्ली-डंडा खेलने की स्मृतियों को लिखता है और उस समय में खले में छूत-अछूत, अमीर-गरीब तथा अमीराना अभिमान की कोई गुंजाइश न थी। गुल्ली है तो जरा सी, पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनंद भरा हुआ है।

प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' यद्यपि बालक हामिद की दादी के प्रति घनीभूत संवेदना की कहानी है, लेकिन उसमें ईदगाह के आसपास खिलौनों की दुकानों की चर्चा है और मोहसिन, महमूद, नूरे तथा सम्मी मिस्त्री, सिपाही, वकील एवं धोबिन के मिट्टी के खिलौने खरीदते हैं और सभी का अंगभंग हाल है और कुछ ईश्वर को प्यारे हो जाते हैं।

'गुल्ली-डंडा' कहानी के कथावाचक और गया दलित के बीच गुल्ली-डंडा के खेल में लेखक का राहरा खेल-दर्शन छिपा है। यह मात्र खेल की कहानी नहीं है, बल्कि इसकी गुल्ली कई दिशाओं में जाती है और इसका डंडा मनुष्य के वर्ण-जाति भेद, पद-भेद तथा अर्थ-भेद को पीट-पीटकर भेदरहित समाज की रचना का स्वप्न जाग्रत् करता है। गुल्ली-डंडा प्रतीकात्मक वस्तु हैं। डंडा उच्च वर्ण, उच्च पद और उच्च शिक्षा एवं उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है। डंडा गुल्ली को मारकर उछालता है, पीटता है और दूर-से-दूर फेंकता है। गुल्ली इतनी छोटी और कमजोर है कि वह डंडे की ताकत के इच्छानुसार नाचती, घूमती, भागती और पिटती है। गुल्ली की यह त्रासदी है कि वह डंडे की निरंकुशता के सम्मुख निस्सहाय है और वह दासी बनने को मजबूर है। डंडा मजबूत और शक्तिशाली है और उसके सामने गुल्ली की कोई हस्ती नहीं, लेकिन गुल्ली के पास एक ऐसा दाव है, जो उसे विजयी बना सकता है। यदि गुल्ली निशाना ठीक साधकर टन से डंडे पर लगती है तो खिलाड़ी आउट हो जाता है और गुल्ली को पिदने से मुक्ति मिलती है। असल में गुल्ली को अपनी शक्ति-सामर्थ्य को सफलता होगा, उसे सटीक निशाना साधना होगा, तभी वह डंडे के अहंकार तथा दमन से अपनी रक्षा कर सकती है और ऐसी अन्यायी शक्ति को पराजित भी कर सकती है। कहानी में कथावाचक तथा गया दलित के दो बार गुल्ली-डंडा खेलने की प्रसंग है और दोनों में ऊँच-नीच सभ्य-देहाती, धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित के बीच का अंतर विद्यमान है, परंतु लेखक कहानी के अंत में कथावाचक की अफसरी के सम्मुख गया का सद्व्यवहार, नम्रता, मनुष्यता एवं बड़ों को सम्मान देने में बहुत ऊँचा बना देता है। इस मनुष्यता में कथावाचक हारता है और गया जीतता है। गुल्ली हो या गया, निम्न हो या दलित अथवा कितना ही लघुतम हो, उसकी मनुष्यता उसे बड़ा बनाती है। गया बड़ा हो जाता है और कथावाचक इंजीनियर छोटा और यह छोटेपन की बड़ी ताकत है। इस दलित चिंतन में स्वामी विवेकानंद और प्रेमचंद एक हैं।

प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' यद्यपि बालक हामिद की दादी के प्रति घनीभूत संवेदना की कहानी है, लेकिन उसमें ईदगाह के आसपास खिलौनों की दुकानों की चर्चा है और मोहसिन, महमूद, नूरे तथा सम्मी मिस्त्री, सिपाही, वकील एवं धोबिन के मिट्टी के खिलौने खरीदते हैं और सभी का अंगभंग हाल है और कुछ ईश्वर को प्यारे हो जाते हैं। 'बड़े भाई साहब' कहानी दो भाइयों की है। छोटा भाई कथावाचक है और वह बड़े भाई के साथ हॉस्टल में रहकर पढ़ता है। कथावाचक कम पढ़ता है और पास होता है तथा बाहर जाकर खूब खेलता है, लेकिन बड़े भाई खूब पढ़ते हैं और खेलते भी नहीं, फिर भी फेल होते हैं, लेकिन छोटे भाई को खेल-कूद से रोकते हैं। बड़े भाई साहब छोटे भाई को समझाते हुए कहते हैं, "इतने खेल-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी खेलते जाते देखा है? रोज ही क्रिकेट और हॉकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं भटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ। उस पर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गँवाकर पास हो जाओगे। मुझे तो दो ही तीन साल लगते हैं, तुम उम्र भर इसी दर्जे में पड़े सड़ते रहोगे। अगर तुम्हें इस तरह उम्र गँवानी है, तो बेहतर है घर चले जाओ और मजे में गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपए क्यों बरवाद करते हो?" कहानी के अंत में कथावाचक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जाता है तो बड़े भाई से भेंट हो गई और उन्होंने खूब समझाया, फटकारा और पीटने तक की धमकी दी कि इस बेराह चलने से भला नहीं होगा, लेकिन तभी एक कटा कनकौआ ऊपर से गुजरा और खुद बड़े भाई साहब ने उसकी उछलकर डोर पकड़ी और बेतहाशा हॉस्टल की तरफ दौड़ पड़े। इस प्रकार प्रेमचंद ने कहानी में घोर पढ़ाकू एवं खेलकूद विरोधी पात्र को भी खिलाड़ी बना दिया और शिक्षा में खेलकूद के महत्त्व को स्थापित कर दिया।

प्रेमचंद की खेल-विमर्श की अंतिम कहानी 'क्रिकेट मैच' है जो उनके देहांत के बाद जुलाई, १९३७ में प्रकाशित हुई थी, लेकिन यह 'गुल्ली-डंडा' की तरह महत्त्वपूर्ण कहानी है और उनके खेल-विमर्श को राष्ट्रीय लक्ष्यों से जोड़ती है। अंग्रेजी खेलों के संबंध में और उनकी तुलना में भारतीय खेलों के प्रति उनके विचार इससे पहले स्पष्ट हो चुके

थे, लेकिन 'क्रिकेट मैच' कहानी की रचना से पहले उनकी दो टिप्पणियाँ 'एम.सी.सी' (मैरीलिकोन क्रिकेट क्लब, १७८७) पर मिलती हैं, जो 'जागरण' के १ तथा १५ जनवरी, १९३४ के अंकों में छपी हैं। इंग्लैंड की एक क्रिकेट टीम ने १५ दिसंबर, १९३३ से ४ मार्च, १९३४ तक भारत का दौरा किया था। प्रेमचंद इस दौरे के समय में ही भारतीय क्रिकेट, राजा-महाराजाओं का प्रभुत्व, खिलाड़ियों के चयन तथा क्रिकेट मैच की जीत से पूर्ण स्वराज्य मिलने पर जो व्यंग्य करते हैं, वह दर्शनीय है। प्रेमचंद १ जनवरी, १९३४ की संपादकीय टिप्पणी में लिखते हैं, "आज हमारे देश में एम.सी.सी की धूम है। खिलाड़ियों का नागरिक स्वागत किया जा रहा है, एड्रेस दिए जा रहे हैं और कहा जा रहा है कि भारत के स्वराज्य का प्रश्न क्रिकेट के मैदान में हल होगा। जिस उत्साह से हमारे राजे-महराजे और मिलों के स्वामी और बड़े-बड़े लोग इस प्रोपेगेंडा में चिपटे हुए हैं, उससे इस विषय में जरा भी संदेह नहीं रह गया कि बस अबकी मैच जीतें और स्वराज्य मिला। हॉकी में हिंदुस्तानियों ने सारी दुनिया को जीता, स्वराज्य की एक मंजिल पूरी हुई। पोलों में जीतकर हम दूसरी मंजिल पर जा पहुँचे। तैराकी में अव्वल आकर तीसरी मंजिल मार ली। फुटबॉल में पहले से हमारा सिक्का बैठा हुआ है। आज समाचार आया है कि टेनिस में ऑस्ट्रेलिया वालों को हमने नीचा दिखा दिया। चौथी मंजिल भी पूरी हो गई, बस क्रिकेट में जीतने की देर है। जीते और पूर्ण स्वराज्य मिला।" इस व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी में वे देहातों में हाहाकार होने तथा जनता के भूखे मरने पर शासकों, जमींदारों एवं महाजनों का हजारों रुपए लुटाने की कटु आलोचना करते हैं। शहरों में गुलछर्रे उड़ रहे हैं, कहीं एम.सी.सी की धूम है, कहीं हवाई जहाजों के मेले हैं और कहीं बेदर्दी से रुपए उड़ाए जा रहे हैं। केवल काशी के क्रिकेट मैच में टिकटों से पच्चीस हजार रुपए वसूल किए गए हैं। बस अब स्वराज्य मिलने में देरी नहीं है। यह देशप्रेमी लेखक का व्यंग्यात्मक प्रहार है।

प्रेमचंद के इन विचारों की पृष्ठभूमि में उनकी कहानी 'क्रिकेट मैच' को देखना-पढ़ना और समझना चाहिए, लेकिन इसके साथ उनके खेल-विमर्श में एक नया आयाम भी जुड़ता है। क्रिकेट एक विदेशी खेल है और प्रेमचंद विदेशी खेलों के विरोधी हैं, परंतु इस कहानी में वे क्रिकेट का उपयोग तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना एवं संगठित होकर लक्ष्य के लिए समर्पित होने के भाव को उत्पन्न करने के लिए करते हैं। प्रेमचंद कई बार पात्रों की दुर्दशा, दुर्भाव एवं दुष्प्रवृत्तियों में भी सद्मार्ग तथा सद्प्रवृत्तियों को जाग्रत् करते हैं और उसके मन का संस्कार करके एक श्रेष्ठ मनुष्य बनाते हैं। 'क्रिकेट मैच' कहानी में हेलेन मुकर्जी इंग्लैंड से डॉक्टरी करके आती है और कथावाचक क्रिकेट खिलाड़ी जफर अपनी डायरी में उसकी कहानी लिखता है। हेलेन जफर को साथ लेकर क्रिकेट की एक नई टीम बनती है और शहर-शहर जाकर योग्यता के आधार पर खिलाड़ी चुनती है। बंबई में ऑस्ट्रेलियन टीम से मैच होता है और हेलेन की टीम जीतती है। वह सभी खिलाड़ियों को अपने कमरे में बुलाती है और इस शानदार जीत के लिए बधाई देती है। अगले साल हम इंग्लैंड का दौरा करेंगे और एक मैच भी नहीं हारेंगे। यही मेरे जीवन का लक्ष्य है और यही जिंदगी है तथा लक्ष्य एवं जिंदगी एकमेव होनी चाहिए, लेकिन आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नहीं सीखा। क्रिकेट आपके लिए एक मनोरंजन और क्रिकेट मुझे खुश करने का जरिया था। आप जैसे नौजवान यदि लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जाएँ तो चमत्कार कर दिखाएँ। मेरा रूप वासना का खिलौना बनने के लिए नहीं है और न आप में मस्ती पैदा करने तथा खुश करने के लिए है। मेरे लिए यह शर्मनाक है। वह कहती है, "जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊँचा है। सच्ची जिंदगी नहीं है, जहाँ हम अपने लिए नहीं सबके लिए जीते हैं।" हेलेन का यह जीवन-मंत्र है सबके लिए जीना, सबको मिलकर एक लक्ष्य के लिए जीना और यही उसकी 'जनता की सेवा' है और यही 'सबके लिए जीना'। क्रिकेट के खेल में सब मिलकर खेलें, एक ही लक्ष्य के लिए खेलें और उसके लिए मरना-जीना सीख लें तो स्वतंत्रता का खेल भी इसी प्रकार खेला और जीता जा सकता है। 'ऋग्वेद' के एक ऋषि का प्रसिद्ध मंत्र है—"सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मानांसि जानताम्", अर्थात् हम सब साथ चलें, साथ संवाद करें, सब मिलकर विराट् मन रचें, सबका हो एक आदर्श, सबके हदय हों अभिन्न, हर मन स्पंदित हो एक भाव तथा सब मिलें सुंदर रूप में एक साथ और पूर्व काल में देवगण ज्यों ग्रहण करते थे यज्ञ की छवि, वैसे ही मिलित भाव से धरती की संपदा का उपयोग करें। ऋग्वेद काल में सबको एक साथ मिलकर एक ही भाव से लक्ष्य के लिए कर्मशील होना था और प्रेमचंद काल में भी देश के मन को एक सूत्र में बाँधकर स्वाधीनता के लक्ष्य की सिद्धि के लिए समर्पित होना था। प्रेमचंद ऋग्वेद के इस आदर्श को अपने जीवन के अंत तक जी रहे थे, क्योंकि चाहे क्रिकेट के खेल को जीतना हो अथवा स्वराज्य की प्राप्ति का लक्ष्य हो, उसे एक गांधी, बोस, भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद या सावरकर नहीं बल्कि केवल सामूहिक एकाग्र संगठित चेतना से ही प्राप्त किया जा सकता था। प्रेमचंद ऋग्वेद के मंत्र में देश की स्वतंत्रता का मंत्र देख रहे थे और 'क्रिकेट मैच' कहानी भी इसी महत् उद्देश्य के लिए रची गई थी। लेखक का युवकों के लिए स्पष्ट संदेश है—'देश के लिए खेलो, देश के लिए जीओ, सब मिलकर एक लक्ष्य के लिए संघर्ष करो, लक्ष्य की एकाग्रता और सामूहिक शक्ति ही खेल क्या देश को पराधीनता से मुक्त कर सकती है।' प्रेमचंद का यह वैशिष्ट्य है कि वे एक विदेशी खेल में भी भारतीय आकांक्षा एवं भारतीय मन को प्रतिबिंबित कर देते हैं तथा भारतीपन की छाप लगा देते हैं।

प्रेमचंद का यह खेल-विमर्श उस युग क्या आज के लेखकों के बीच भी विशिष्ट एवं अनुकरणीय बना हुआ है और वैसे तो ऐसा चिंतन किसी लेखक में दिखाई भी नहीं देता है। प्रेमचंद सब तरफ देखते हैं, सबकी कहानी कहते हैं, लेकिन भारतीय आत्मा एवं भारत-बोध केंद्र में रहता है और भारत राष्ट्र के मंगल की कामना करता है। भारत राष्ट्र की स्वाधीनता, एकता और 'सांस्कृतिक मूल्यों' की रक्षा तथा व्यक्ति-व्यक्ति का उत्कर्ष एवं सामरस्यता उनका साहित्य-पथ है, वहीं संकल्प और सरोकार है और वहीं भारतीयता का प्राण-तत्त्व है।

साअ

ए-९८, अशोक विहार,
फेज प्रथम, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ९८११०५२४६९
kkgoyanka@gmail.com

पी राधा और मैं

● अरुण अर्णव खरे

पी राधा मेरी फ्रेंड लिस्ट की विशिष्ट श्रेणी में है। सामान्य बुद्धिजीवियों को यह नाम दक्षिण भारतीय महिला का लगता है, परंतु कुछ एम.फिल. टाइप के रिसर्चर इस नाम में पी से प्रिय राधा का छायावादी विस्तार देखते हैं। कुछ दसवीं फेल टपोरी फेसबुकियों को पी राधा में पुराणिक या पचौरी जैसा कोई हिडन सरनेम दिखाई देता है। पर इस सबमें जो सबसे अहम है, वह यह कि किसी को भी पी राधा के महिला होने में कोई संशय नहीं है।

पी राधा प्रारंभ में मेरी विशिष्ट दोस्त नहीं थी। यह विशिष्टता उन्होंने ही मुझे प्रदान की थी। एक अप्रैल को उनकी रिक्वेस्ट आई थी और मैंने महिलाओं के प्रति विशेष अनुग्रह के कारण उसे तुरंत एक्सेप्ट कर लिया था। आप जानते ही हैं, मैं स्वभाव से परम संकोची हूँ और महिलाओं को लेकर परम संवेदी भी हूँ। संकोची हूँ, इसलिए किसी महिला मित्र को मैं आज तक विशिष्टता की श्रेणी में नहीं ला सका था और अति संवेदनशीलता के कारण ही पिछले दिनों दामिनी की दसवीं बरसी पर मैंने अकेले ही कैंडल मार्च किया था।

पी राधा की नजरों में चढ़ने का एक अलग ही किस्सा है। कुछ समय पूर्व उन्होंने न्यूनतम वस्त्रों में किए गए फोटो शूट की कुछ तसवीरें फेसबुक पर डालीं थी। तस्वीरों पर लाइक का अंबार लग गया था और कमेंट्स करनेवालों में तो होड़ सी लग गई थी—एडोरेबल, गोरजियस, रेविशिंग, माइंड ब्लोइंग, स्पेक्टेकुलर और न जाने क्या-क्या! पढ़कर मेरा अंग्रेजी ज्ञान समृद्ध हुआ सो हुआ, मुझमें हीनभावना का प्रतिशत डायन महँगाई की तरह बढ़ गया। मैंने डरते-डरते कमेंट बॉक्स में सुभान-अल्ला लिखा और भूल गया। थोड़ी देर में ही मेरा इनबॉक्स डियर संबोधन के साथ रजनीगंधा के फूलों की खुशबू से महक रहा था। मैं अभिभूत था, पी राधा की पसंद का लालित्य देखकर···रजनीगंधा कोई सामान्य सा गुलाब या गेंदें का फूल नहीं होता···यह आभिजात्य वर्ग के खासमखास होने का आभास देता है···मैं बस पहली फुरसत में ही उनका मुरीद हो गया, सामान्य से विशिष्टता के बीच की दूरी मिट गई थी, अब मैं भी किसी का विशिष्ट मित्र था।

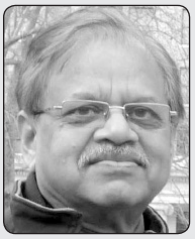

साहित्य की सभी विधाओं में लेखन, कहानी और व्यंग्य लेखन में देश भर में चर्चित। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं सहित विभिन्न वेब पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'डॉ. सुनील सिंह स्मृति सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग से मुख्य अभियंता पद से सेवा-निवृत्त।

इसके बाद से पी राधा की हर पोस्ट में मैं बिना नागा टैग होने लगा। कई बार तो किसी-किसी पोस्ट पर मैं अकेला ही टैग किया जाता। जब भी ऐसा होता, स्वभाविक रूप से मैं स्वयं को अतिसम्मानित महसूस करता। जब भी पी राधा फीलिंग डॉउजी या फीलिंग लोनली लिखकर टैग करतीं, मैं भी निराशा का अनुभव करता, पर जब वह फीलिंग जॉयस या हैप्पी लिखती तो मैं भी चहकने लगता। एक बार तो हद ही हो गई, जब उसने हवा में हाथ फैलाकर एक उछलती हुई फोटो के साथ लिखा—"लव सीज नो बॉउंड्री···लव इज लिमिटलेस··· फीलिंग लव्ड" और केवल मुझे ही टैग किया। मैंने बहुत मगजमारी की, पर इसका निहितार्थ नहीं समझ सका। मैंने इस पर कोई कमेंट नहीं किया। संभवत: पी राधा ने आहत महसूस किया और दो दिन तक इंतजार करने के बाद अपनी एक दिलकश तसवीर जुगाली करती हुई भैंस के साथ पोस्ट की, मानो वह उलाहना दे रही हो कि तुम तो इस भैंस सरीखे हो, जिसे पगुराने के अलावा कुछ नहीं दिखता···खासकर खूबसूरत नजारे और चेहरे भी। मैंने उत्तर में विनम्रता से एक पुष्पगुच्छ और एक जीभ निकालकर आँख दबाकर हँसती हुई शरारती इमोजी भेज दी।

कुछ दिन सन्नाटा रहा। होली आने वाली थी—मैंने सोचा, रंगों का एक थाल और इक पिचकारी उसको भेजकर इस सन्नाटे को तोड़ूँ, पर इसके पहले ही ऐन होली के एक दिन पहले सफेद साड़ी में मुँह लटकाए उसका अपडेट आ गया—"फीलिंग ग्रीव्ड···मदर लेफ्ट···"।

मैंने रंगों का थाल एक तरफ सरकाकर डिक्शनरी और गूगल की मदद से एक बेहतरीन शोक संदेश बनाया और उसे भेज दिया। वापसी में हाथ जोड़ते हुए उसका थैंक्स का संदेश आ गया। दुख की घड़ी में भी उसका फेसबुकी जज्बा देखकर मेरी आँखें भर आईं। आभारी मित्रों से उसके अभिन्न लगाव ने मुझे भीतर तक तर कर दिया।

दो-तीन दिनों बाद मैंने उसे दुख से बाहर लाने के दृष्टिकोण से दो लाइनों की एक तथाकथित शायरी लिख भेजी, बदले में उसने एक फूल भेज दिया यह लिखकर—"ये फूल नहीं मेरा दिल है"—मैं तो मरजावाँ वाली स्टाइल में निढाल होते-होते बचा। कुछ दिनों तक मेरी कुछ लिखने की हिम्मत ही नहीं पड़ी।

एक अप्रैल को उसका नया अपडेट आया—"डिलायटेड टू शेयर विद यू···ब्लेस्ड विद ए गर्ल बफी।"

"अच्छा तो यह बात है···मोहतरमा शादी शुदा हैं"···मेरे सामने से उनके पिछले सारे ट्विट या पोस्ट आ-जा रहे थे···तो ये उसी दिन का प्रतिफल है, जिस दिन मोहतरमा को 'फीलिंग लव्ड' हो रहा था, जो बफी के रूप में सामने आया है। पर ये बफी नाम कुछ अटपटा लग रहा है, पिल्लों जैसा···पैदा होते ही कैसा अटपटा नाम रख लिया।

पी राधा ने मुझे सरप्राइज दिया था, अत: मैंने भी उन्हें सरप्राइज देने की ठान ली और व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर विश करने का निश्चय कर लिया।

मैंने उनकी पसंद का खास रजनीगंधा के फूलों वाला बुके लिया और विश की अभिव्यक्ति के लिए एक बहुत ही जहीन किस्म का कार्ड। अब उसमें कुछ विशेष ही लिखना था—तो एक बार फिर मैं गूगलजी की शरण में गया। मसाला मिल गया, मैंने लिखा, "विरली तारीख को विरले ही पैदा होते हैं···गुरु तेग बहादुर, अजीत वाडेकर और हेडगेवार जैसे रत्न इसी दिन धरा पर अवतरित हुए थे, आपकी बेटी भी इस शृंखला को और आगे ले जाएगी, शुभकामनाएँ।"

मैं फेसबुक पर दिया गया उनका पता-१९ गोकुल धाम, को खोजता हुआ शहर के किनारे पर बसे तबेलों तक पहुँच गया। १९ नंबर के घर के सामने परमवीर यादव की नेमप्लेट टँगी थी। यह सोचकर कि राधा इनकी पत्नी होगी, मैंने कुंडी खटखटा दी। दरवाजा खोलकर कंधे पर गमछा डाले एक अधेड़ उम्र के महापुरुष प्रकट हुए···मुझे देखते ही कमल से खिलते हुए बोले, "अरुणजी आप, मैं तो धन्य हो गया, आप जैसा महान् लेखक मेरे दरवाजे पर आया"।

मैं उनकी बातें सुनकर पल भर के लिए यह भी भूल गया कि मैं यहाँ आया क्यों हूँ। मैं गद्गद हुआ जा रहा था अपनी ख्याति देखकर, जो तबेलों तक जा पहुँची थी, मेरा सीना तनकर छप्पन इंच होना चाह रहा था, पर बड़ी मुश्किल से मैंने उसे पैंतालीस पर रोका, शायद मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं था कि मैं इतने चौड़े सीने का भार सह पाता। धीरे से मैं वास्तविकता के धरातल आया, पूछा, "पी राधाजी क्या यहीं रहती हैं।"

"हाँ, यहीं रहती हैं···आज सुबह ही वह दूसरी बार माँ बनी है, आप अंदर तो आइए।" उन्होंने विनम्रता से आग्रह किया।

मैं अंदर आ गया। वह बोले, "देख राधा, कौन आया है।"

मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई, पर वहाँ एक भैंस के अलावा कोई नहीं दिखाई दिया। वह मेरी परेशानी भाँप गए, बोले, "वह बँधी है मेरी राधा···परमवीर की राधा।"

मैं औंधे मुँह गिरते-गिरते बचा। परमवीर ने मुझे सँभाला। मैंने पूछा, "पर राधा की वे तसवीरें···।"

"छोड़िए उन बातों को, मैं दूध दुहने की तैयारी कर रहा था कि आप आ गए, अब आप जैसा बड़ा आदमी आया है तो यह शुभ काम आपके हाथों से ही होना चाहिए।" कहते हुए परमवीर ने 'बफी' को उसके खूँटे से खोल दिया। मैं बाल्टी लिए भैंस का थन पकड़े बैठा हूँ, भैंस रजनीगंधा के फूलों पर पिल पड़ी है, कार्ड पर लिखे वाक्य विरली तारीख पर विरले पैदा होते हैं—मुँह चिढ़ा रहे हैं और परमवीर···राधा संग मेरी फोटो लेने में व्यस्त हैं।

मैंने रंगों का थाल एक तरफ सरकाकर डिक्शनरी और गूगल की मदद से एक बेहतरीन शोक संदेश बनाया और उसे भेज दिया। वापसी में हाथ जोड़ते हुए उसका थैंक्स का संदेश आ गया। दुख की घड़ी में भी उसका फेसबुकी जज्बा देखकर मेरी आँखें भर आईं। आभारी मित्रों से उसके अभिन्न लगाव ने मुझे भीतर तक तर कर दिया।
दो-तीन दिनों बाद मैंने उसे दुख से बाहर लाने के दृष्टिकोण से दो लाइनों की एक तथाकथित शायरी लिख भेजी, बदले में उसने एक फूल भेज दिया यह लिखकर—"ये फूल नहीं मेरा दिल है"—मैं तो मरजावाँ वाली स्टाइल में निढाल होते-होते बचा। कुछ दिनों तक मेरी कुछ लिखने की हिम्मत ही नहीं पड़ी।

साअ
डी १/३५, दानिश नगर
होशंगाबाद रोड, भोपाल-४६२०२६ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८९३००७७४४
arunarnaw@gmail.com

सुकेत सत्याग्रह
(रियासतों के विलय की सफल गाथा)

• पवन चौहान

१५ अगस्त, १९४७ को सदियों अंग्रेजों की गुलामी सहने के बाद भारत आजाद हो चुका था। यह पूरे देश के लिए जश्न का माहौल था। अंग्रेज तो अपना राज-पाट छोड़ चुके थे, लेकिन हमारे देश की अपनी रियासतें अभी भी अपना अलग अस्तित्व बनाए रखकर अपना शासन चलाना चाहती थीं। यह पूरे देश की एकता के लिए भारी रुकावट थी। राजाओं की दमनकारी नीतियों से भी जनता परेशान थी। वह भी अब खुले में साँस लेना चाहती थी। लेकिन मुश्किल यह थी कि देश की बहुत सारी रियासतें अभी भी भारतीय गणतंत्र में शामिल नहीं होना चाहती थीं। वे अभी भी मनचाही हुकूमत करना चाहती थीं। खैर, ऐसी रियासतों पर जनता का आक्रोश सामने आने लगा था, जो आजादी के बाद अपने उफान पर आ गया। हिमाचल भी इससे अछूता नहीं था। हिमाचल (राज्य बनने से पूर्व) की विभिन्न रियासतों में भी जनता एकत्र होने लगी थी।

८ फरवरी, १९४८ को करसोग के सुन्नी नामक स्थान पर 'प्रजामंडल' के प्रतिनिधियों की बैठक में हिमाचल की रियासतों के विलय करवाने का निर्णय हुआ। इसमें सबसे पहले 'सुकेत रियासत' को चुना गया। इसकी कमान पं. पद्म देव को सौंपी गई। बता दें, सुकेत रियासत की स्थापना ७७० ई. में वीर सेन ने की थी। वीर सेन के बाद धीर सेन, विक्रम सेन से होते हुए यह रियासत आजादी के समय तक राजा लक्ष्मण सेन के हाथों में थी। समय-समय पर इस रियासत की राजधानियाँ हालात और समयानुसार बदलती रहीं। लक्ष्मण सेन के समय सुकेत की राजधानी 'सुंदरनगर' थी।

सुकेत को सर्वप्रथम विलय के लिए चुनने के पीछे पद्म देवजी के ये शब्द हमारी सहायता करते हैं—''आज (अप्रैल १९५५) से लगभग आठ साल पहले मैं और श्री यशवंत सिंह परमार हिमाचल में सम्मिलित समस्त छोटी-बड़ी रियासतों में जा-जाकर वहाँ की जनता की दशा तथा अपनी संस्था के संगठन की स्थिति का अनुमान लगाने के निश्चय से प्रत्येक राज्य का दौरा कर रहे थे। हमने सुना था कि सुकेत राज्य में प्रजा पर अत्यधिक दमन की नीति का प्रयोग हो रहा है। अत: हमने सुकेत की ओर कदम बढ़ाए।'' (पुस्तक-हिमाचल प्रदेश के स्वतंत्रता सेनानी, भाषा एवं संस्कृति विभाग शिमला द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या-xxix)

पद्म देव सुकेत के साथ की ही रियासत रामपुर बुशहर के अंतर्गत रोहडू के भमनोल गाँव में जनमे थे। उन्होंने १९२० के असहयोग आंदोलन तथा १९३० में सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी अपनी हिस्सेदारी बखूबी निभाई थी। इन्होंने हिमालयन रियासती प्रजामंडल के संस्थापक सदस्य, प्रजामंडल सचिव और हिमालयन पहाड़ी रियासतों की क्षेत्रीय परिषद् के महासचिव के रूप में भी प्रशंसनीय कार्य किया। सुकेत सत्याग्रह के अलावा इन्होंने बेगार, रीत और छुआछूत प्रथाओं के खिलाफ जमकर अपनी भागीदारी सुनिश्चित की। हिमाचल के गठन के बाद पद्म देवजी हिमाचल और केंद्र की राजनीति में विभिन्न पदों पर बराबर सक्रिय रहे। डॉ. यशवंत सिंह परमारजी के साथ पं. पद्म देवजी की बहुतायत बैठकों और आंदोलन में बराबर की हिस्सेदारी रही।

बैठक के बाद सुकेत रियासत के विलय के लिए कार्य शुरू हो चुका था। १६ फरवरी, १९४८ को सुकेत रियासत के तत्कालीन राजा लक्ष्मण सेन को प्रजामंडल की ओर से संदेश पहुँचाया गया कि वे ४८ घंटों के समय अंतराल में अपनी राजसत्ता को जनता को सौंप दे। राजा ने कोई जवाब नहीं दिया। इस दौरान पं. पद्म देव की अध्यक्षता में सत्याग्रहियों की एक बैठक तत्तापानी नामक स्थान पर हुई। जब राजा लक्ष्मण सेन की ओर से प्रजामंडल के संदेश का कोई जवाब नहीं आया तो पं. पद्म देव की अगुवाई में लगभग १००० सत्याग्रही सुकेत पर कब्जा करने के लिए निकल पड़े। यह दिन था १८ फरवरी, १९४८ का। इस दिन सत्याग्रहियों ने जिस उत्साह के साथ 'च्वासी रा गुंझु चलाया' (एक वाद्ययंत्र बजाते हुए चले) तो वे राजा के खिलाफ चलते ही चले गए। फिर वे रुके नहीं। जीत पर जीत हासिल करते गए। यह एक अहिंसात्मक आंदोलन था। १८ फरवरी की सुबह ही उन्होंने सुकेत रियासत की सीमा 'फिरनु की चैकी' पर कब्जा जमाया और फिर करसोग की ओर कूच कर गए। शाम को लगभग ५:०० बजे इन जोशीले सत्याग्रहियों ने करसोग को भी अपने कब्जे में ले लिया। यह सत्याग्रहियों में उत्साह का संचार

करता गया। उनका अगला लक्ष्य था सुकेत की पुरानी राजधानी 'पांगणा'। अगले ही दिन, यानी १९ फरवरी को इन सत्याग्रहियों ने पांगणा पर भी कब्जा कर लिया था।

ये सत्याग्रही जिस जोश और गति के साथ आगे बढ़ रहे थे, उनको देखकर और भी लोग इस सत्याग्रह में उनके साथ शामिल होते गए। अब वे एक हजार से अढ़ाई हजार तक हो चुके थे। हाथ में तिरंगा उठाए ये सत्याग्रही देशभक्ति के गीत गाते हुए सुकेत के हर क्षेत्र को अपने अधिकार में लेते चले जा रहे थे। २० फरवरी को इन्होंने 'निहरी' को भी अपने कब्जे में ले लिया था। इन तीन दिनों में ये सुकेत के लगभग तीन-चौथाई हिस्से को अपने अधीन कर चुके थे। सत्याग्रह अपनी पूरी गति में था। फिर २२ फरवरी को (कुछ इतिहासकारों ने यह तिथि २३ फरवरी लिखी है) 'जैदेवी' नामक स्थान भी सत्याग्रहियों के कब्जे में हो चुका था। जैदेवी से सुकेत की राजधानी १५ किमी. (वर्तमान में सड़क मार्ग द्वारा) की दूरी पर है। राजा लक्ष्मण सेन को जब इन आंदोलनकारियों की जानकारी मिली तो उन्होंने २३ फरवरी को भारत सरकार से इस आंदोलन को कुचलने के लिए मदद माँगी। लेकिन भारत सरकार ने उन्हें इस बात के लिए साफ इनकार करते हुए अपनी रियासत को पंजाब में मिलाने के आदेश जारी कर दिए। यह राजा के लिए बहुत दुखद था।

सत्याग्रही २५ फरवरी, १९४८ को राजधानी सुंदरनगर पहुँच चुके थे। यहाँ इन्हें अपनी ज्यादा ऊर्जा लगानी पड़ी, लेकिन इन जोशीले सत्याग्रहियों के आगे रियासत की टुकड़ी ने भी अंततः हथियार डाल दिए। सुकेत रियासत अब पूरी तरह से सत्याग्रहियों के कब्जे में थी। इसके अगले ही दिन भारत सरकार के आदेशानुसार जालंधर के चीफ कमिश्नर लेफ्टिनेंट जनरल नागेश दत्त और धर्मशाला से डिप्टी कमिश्नर कन्हैया लाल अपनी टुकड़ियों के साथ सुंदरनगर पहुँच चुके थे। लेफ्टिनेंट जनरल ने इसी दिन सुकेत रियासत पर भारत सरकार के अधिकार की घोषणा भी कर दी थी। सुकेत रियासत अब भारत सरकार के अधीन हो चुकी थी, जिसकी सारी जिम्मेवारी अगामी आदेशों तक भारतीय सेना को सौंपी जा चुकी थी।

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं शिमला दूरदर्शन और आकाशवाणी से रचना पाठ।हिम साहित्य परिषद् (मंडी) द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता में कहानी 'शारदा' को द्वितीय पुरस्कार। साहित्य मंडल (नाथद्वारा) का सम्मान। संप्रति स्कूल शिक्षक (टी.जी.टी., नॉन-मेडिकल)।

यह सत्याग्रह इतना सफल और चर्चित रहा कि दूसरी रियासतों के विलय के लिए संघर्ष कर रहे आंदोलनकारियों में इसने गजब का उत्साह भर दिया। सुकेत रियासत का भारतीय गणतंत्र में यह विलय एक ऐसी ऐतिहासिक घटना थी, जिसने चारों ओर रियासतों के विलय की मशाल को जला दिया था। जानकारी के अनुसार इस घटना का जिक्र अंग्रेजी अखबार 'दि ट्रिब्यून' ने 'सेवन डेज दैट शुक दी वर्ल्ड' नामक शीर्षक से प्रकाशित कर इसके प्रभाव और ऐतिहासिकता का परिचय दिया था। सुकेत की जनता अब राजशाही फरमानों से आजाद होकर लोकतंत्र की जमीन पर खुली साँस ले रही थी। फिर वह दिन भी आया, जब विधिवत् रूप से १५ अप्रैल, १९४८ को ३० रियासतों को मिलाकर हिमाचल प्रदेश का गठन किया गया, इसमें सुकेत रियासत भी शामिल थी।

सा.अ.
गाँव व डाक-महादेव, तहसील-सुंदरनगर
जिला-मंडी-१७५०१८ (हि.प्र.)
दूरभाष : ०९८०५४०२२४२
chauhanpawan78@gmail.com

लिख गया

गीत

• मधु शुक्ला

झील के किस्से, समंदर की कहानी लिख गया,
एक बादल फिर नदी की जिंदगानी लिख गया।

उँगलियों से बूँद की, पानी में इक हलचल लिखी
मौन लहरों के सुरों में, थिरकती कलकल लिखी,
लिख गया कुछ बिजलियाँ, कुछ आग-पानी लिख गया।

तप्त धरती के हृदय के भाव अँकुराने लगे
थरथराते पात, तन के अर्थ गहराने लगे,
जर्द आँखों में धरा की, स्वप्न धानी लिख गया।

खोलकर खिड़की फुहारों का झकोरा आ गया
पत्र सोंधी गंध वाले द्वार पर सरका गया,
भीगते मन पर कई सुधियाँ सुहानी लिख गया।

डोर ले विश्वास की मन का फकीरा चल दिया
ढाई आखर के सबद गाता फकीरा चल दिया,
संग मेरे नाम के मीरा दिवानी लिख गया।

लिख गया युग के अधूरे प्रेम की दारुण कथा
यक्षिणी की पीर, शापित यक्ष के मन की व्यथा,
फिर कथानक में वही बातें पुरानी लिख गया।

सा.अ.
६, साँई पैलेस, साँई हिल्स, कोलार रोड,
भोपाल-४६२०४२ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८९३१०४२०४

इक्केवाले

● धीरज कुमार श्रीवास्तव

जेठ की दुपहारिया थी। पेड़ों से पत्ते झड़ रहे थे। अंधड़ चल रहा था। हवा के गरम झोंके बदन को झुलझा रहे थे। धूप चिलचिला रही थी। हवा से चारों तरफ गर्द फैली हुई थी। धरती से मानो भाप निकल रही थी। बदन लू से झुलसा जा रहा था। लोग इधर-उधर बिखरे हुए आपस में बातें करने में मशगूल थे। ऐसे में कोई करता क्या? सब चित्रित से मानो बैठे थे। एकाध शहरी को छोड़कर सब ग्रामीण नजर आ रहे थे, जो अपने माथे तक अँगोछा लपेटे हुए धूप सेंक रहे थे!

'हर-हर' पता नहीं कहाँ से चले आते हैं नासपीटे, चैन से बैठने भी नही देते। मिठाईवाले अपनी मिठाइयों से मक्खियाँ उड़ा रहे थे। खोमचा वाले चना-मटर का खोमचा लगाए बैठे हुए थे। कोई पूड़ी-सब्जी बेच रहा। कोई पान की दुकान खोले बैठा था तो कोई फल-सब्जी की दुकान लगाए बैठे थे। सब अन्यस्मक भाव से बैठे थे। दुकानों में ज्यादा लोग नहीं थे। समय जैसे ठहरा हुआ था! बरसों बाद मैं गाँव आया था। देखने से सबकुछ वैसा ही लग रहा था, जैसा पहले के दिनों में हुआ करता था। कुछ भी बदला हुआ दिखाई नहीं दे रहा था। वही लोग थे। वही दुकानें थीं। वही रास्ते थे। पहले के जैसे ही। सबकुछ एक कैनवास की तरह चित्रित था।

परिवर्तन दिखाई दे रहा था तो साधन के रूप में। पहले यहाँ केवल इक्केवाले ही हुआ करते थे। मोटरें नहीं थीं। लेकिन अब मोटरें भी दिखाई दे रही थीं। एक-दो इक्केवाले कड़कती धूप में, अपने सिर पर हाथ धरे, सवारी के इंतजार में बैठे हुए थे। तभी एक आदमी मेरी तरफ दौड़ते हुए आया। वह पास आकर, अपने चेहरे से बह आए पसीने को पोंछते हुए बोला, "कहाँ जाएँगे?"

"दुर्गागंज।" मैंने कहा और उसकी तरफ देखने लगा। वह बोला, "जाइए, उस जीप में बैठ जाइए। जीप जाने वाली है।" उसने एक जीप की तरफ इशारा करते हुए कहा। जीप भरी हुई थी। लोग एक-दूसरे पर लदे हुए थे। उनके चेहरों से पसीना टपक रहा था। सबकी बुरी दशा थी। वह सब जल्दी चलने के लिए कह रहे थे, लेकिन वह था कि उनकी बात नहीं सुन रहा था। वह कभी-कभी उन्हें डाँट भी देता था। लोग बड़बड़ाते हुए चुप हो जाते थे।

सुपरिचित लेखक। कविता, कहानी, गजल, नज्म, एकांकी, नाटक एवं उपन्यास निरंतर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। भिखारी, रिक्शेवाले, भूखी मौत आदि कहानियों के लिए पुरस्कृत एवं सम्मानित।

"यहाँ जीप कब से चलने लगी?" मैंने उससे पूछा।

"कई साल हो गए। लगता है, आप बहुत दिनों बाद यहाँ आए हैं।" उसने कहा और जीप की ओर इशारा किया। मैं अपने कदम आगे न बढ़ा सका। बोला, "मैं जीप से नहीं जाऊँगा।" उसने मुझे हैरानी से देखा और फिर उसने जिद्द की, लेकिन मैं आगे बढ़ गया। वह मुझे देखता रह गया।

मैं उस ओर देखने लगा, जहाँ एक इक्केवाला, एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ मेरी तरफ देख रहा था। जीपवाले ने कहा, "वह अभी नहीं जाएगा। पहले मोटर जाएगी।"

उसकी बात अनसुनी करते हुए मैं आगे बढ़ गया। इक्केवाले के पास जाकर बोला, "दुर्गागंज चलोगे?"

मुझे अपने पास आते देखकर वह पहले ही खड़ा हो चुका था। उसने मेरी ओर देखा। उसकी आँखों में कौतूहल था। जैसे कोई अजूबा देख रहा हो! एक शहरी इक्के पर जाना चाहती है? उसे विश्वास नहीं हो रहा था। वह वितृष्णा भरे स्वर में बोला, "अरे, काहे मजाक करते हैं? मोटर खड़ी है, उसमें बैठकर क्यों नहीं चले जाते? काहे गरमी में जान देते हैं। आखिर आपको जाना तो मोटर से ही है, फिर पूछते काहे हैं।" उसके स्वर में उलाहना के साथ व्यंग्य भी था। मैंने कहा, "नहीं, मैं इक्के पर ही जाऊँगा।"

उसने मेरी तरफ फिर देखा। बोला, "मेरी बात का बुरा न मानना, भैया! क्या करूँ, आप लोग आते हैं और मोटर में बैठकर चले जाते हैं, इसलिए कहा।" बूढ़े ने दु:खी होकर कहा, "अब हम इक्केवालों को कोई नहीं सुनता। सब मोटर में बैठकर चले जाते हैं। समय बदल गया है। पहले यहाँ इक्केवाले ही थे। लेकिन अब…"

कुछ लोग हमारी तरफ देख रहे थे। धूप की चिंता किए बगैर! मैंने कहा, "पता है, चलोगे?"

"चलूँगा क्यों नहीं। बैठिए।" उसके चेहरे पर खुशी छा गई। उसका चेहरा एक अनजाने मुसकान से भर उठा था। उसकी पान खाई दंतपंक्तियाँ धूप में चमक उठी थीं। मैं मुसकराते हुए इक्के पर चढ़ गया। एक सुखद अनुभूति हुई। जो जीप में बैठने से नहीं होती। मोटरों में तो बैठता ही रहता था। आज सालों बाद इक्के पर बैठा था। बैठते हुए पूछा, "कब तक चलोगे?"

"कुछ सवारी हो जाएँ," उसने संशय से कहा। शायद डरा। कहीं सवारी उतरकर चली न जाए।

मैंने कुछ न कहा और इधर-उधर देखने लगा। वह सवारी के लिए चला गया। किसी को आते देखकर वह उसके पास जाता और कहता, "दुर्गागंज! रानीगंज!" धूप सिर पर चढ़ आई थी। चेहरा पसीने से भीगा हुआ था। जब वह थक गया तो आकर इक्के के पास खड़ा हो गया। उसने अपने कुरते से एक बीड़ी निकाली और पीने लगा।

वह एक साठ-पैंसठ साल का बूढ़ा था। उसके सिर और दाढ़ी के बाल मेहंदी लगाने के कारण लाल हो गए थे। उसके बदन पर कई जगह से कटा-फटा कुरता और पैबंद लगी आसमानी लुँगी थी। उसके पैरों में प्लास्टिक की मामूली चप्पल थी। यही उसका रंग-रूप था।

घोड़ा धूप में निश्चल भाव से खड़ा, अपने कंधे पर बोझा ढोने के लिए तैयार था। मैंने पूछा, "पहले तो यहाँ मोटरें नहीं थीं। फिर कहाँ से आ गईं?"

"हाँ," वह बीड़ी पीते हुए बोला, "धीरे-धीरे सब बदल गया। कुछ लोग मोटरें लेकर आ गए और हमारी रोजी-रोटी छीन ले गए।"

नए दु:ख और पुरानी स्मृतियों के साथ उसके चेहरे पर वीरानी और चमक दोनों दौड़ती चली गई थी। मैंने पूछा, "फिर तुम लोगों का गुजारा कैसे होता है?"

बूढ़े ने असहाय भाव से मेरी ओर देखा। फिर एक सुट्टा मारकर बोला, 'गुजारा? गुजारा होता नहीं भैया, करना पड़ता है। पेट काटकर। भूखे पेट रहकर। बस जिंदगी किसी तरह चल रही है।" कहकर वह चुप हो गया। मन में कहीं उसके सन्नाटा पसर गया था। कुछ देर बाद पूछा, "इक्केवाले बहुत कम दिखाई दे रहे हैं। सब कहाँ चले गए?"

"सब चले गए। गुजारा नहीं होता था, क्या करते? चले गए।" उसके स्वर में एक दर्द था। आँखों में पानी भर गया था। "अब केवल हम बूढ़े ही बचे हैं, यहाँ मरने के लिए।"

"वो सब कहाँ चले गए?"

"शहर। और कहाँ जाएँगे? गरीबों की उम्मीद ही कितनी है! पहले यहाँ कुछ कमाई हो जाया करती थी। काम चल जाता था। लेकिन अब तो मुश्किल से ही गुजारा होता है। दिन भर धूप-पाले में जलते-काँपते रहते हैं, तब कहीं जाकर एकाध सवारी मिलती है। सब मोटर में बैठकर चली जाती हैं। अब हमारे इक्कों पर कोई नहीं बैठता।" हम दोनों के बातचीत के दौरान एक-दो सवारी इक्के में आकर बैठ गई थीं।

"फिर तुम यह धंधा छोड़ क्यों नही देते?" मैंने राय दी।

"छोड़ देंगे तो खाएँगे क्या? यही तो हमारी रोजी-रोटी है। जो हम लोग बरसों से करते चले आ रहे हैं। हमारे पुरखें भी यही करते थे। पुश्तैनी है। कैसे छोड़ दें?" वह अपना सिर खुजाते हुए बोला। देखने से ही लगता था, जैसे वह कई दिनों से नहाया न हो। बालों में गंदगी दिख रही थी।

मुझे हँसी आ गई। जो पुरखे करते चले आए हों, क्या वही हम भी करें? समय के साथ सब बदल जाता है। क्या इन्हें यह बात बतानी होगी? कहा, "कोई दूसरा धंधा कर लेते?"

"अब तो कब्र में जाने के दिन आ गए हैं, भैया। अब कहाँ इस उम्र में नए धंधा में जान फँसाएँ! धंधे के लिए पैसा भी तो चाहिए। यहाँ तो खाने के लाले पड़े हुए हैं। आप नए धंधे की बात करते हैं।" कहकर वह फिक्क से हँस पड़ा। फिर अपनी आँखें पोंछने लगा। शायद आँखों में पानी भर आया था।

मैं खामोश हो गया। क्या कहता? वह सवारी की तलाश में चला गया। कुछ देर बाद आया तो बोला, "धूप तेज हो गई है। लगता है, अब सवारी नहीं मिलने वाली।" कहते हुए वह इक्के में चढ़ा। फिर जेब से एक बीड़ी निकालकर, सुलगाकर पीने लगा। उसका चेहरा पसीने से भीगा हुआ था। काली चमड़ी पर पसीने की नन्हीं बूँदें चमक रही थीं।

एक सवारी ने कहा, "बाबा, कब चलोगे? देर हो रही है। धूप भी लग रही है।"

"अरे, चलत हैं री! धूप का हमका नहीं लागत।" बूढ़े ने कहा और घोड़े को तैयार करने लगा।

मैंने घोड़े की तरफ देखा। वह चुपचाप धूप सेंक रहा था! वह ही उस बूढ़े का एकमात्र सहारा था। तभी एक धूल भरी आँधी आई और सबके चेहरे धूल से अँटती हुई चली गई। जीप सवारी भरकर जा चुकी थी। एक और खड़ी थी। बचपन में जब भी मैं बाबा-दादी या माता-पिता के साथ गाँव आता था तो इक्के पर ही बैठता था। उस समय इक्के ही हुआ करते थे। बड़ा हुआ तो अकेले ही आने-जाने लगा। तब भी इक्के ही थे। पता नहीं क्यों मुझे इक्के की सवारी अनोखी लगती थी। पंद्रह-बीस वर्षों में बहुत कुछ बदल गया था, लेकिन यहाँ की स्थिति वैसे की वैसी थी। कुछ भी नहीं बदला था।

कुछ ग्रामीण महिलाएँ इक्के में आकर बैठ गई थीं। बूढ़े ने घोड़े को हाँक लगाई। घोड़ा धीरे-धीरे आगे बढ़ चला। गरम हवा बदन को सहलाने लगीं। इक्के की 'चर्र-चर्र', टापों की 'टप-टप' का लयबद्ध स्वर वातावरण में बिखरने लगा। घोड़े की पीठ पर लगे घाव पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। घाव को देखते हुए पूछा, "इसके पीठ पर यह घाव कैसा?"

"घास चरने गया था। वहीं एक गड्ढे में गिर गया। आजकल ठीक से दाना-पानी नहीं दे पाता, इसलिए खुले मैदान में छोड़ देता हूँ। एक दिन किसी गड्ढे में गिर गया था।" उसने घोड़े की पीठ को प्यार से सहलाते हुए कहा, "जब ये काफी देर तक घर वापस नहीं लौटा तो देखने निकला। देखा महाशय, गड्ढे में गिरे हुए थे।"

"ओह!" मेरे मुँह से निकला।

वह घोड़े को प्यार से दुलार रहा था। उसके चेहरे पर हलकी मुसकान थी। मुझे घोड़े से सहानुभूति हो आई। वह अपने चेहरे पर भर आए पसीने को अँगोछे से पोंछते हुए बोला, "लगता है, इस बार बहुत गरमी पड़ी।"

"हाँ, लगता तो है।" जेब से रुमाल निकालकर मैंने अपने चेहरे को साफ करते हुए कहा। गरम हवा के झोंके चेहरे पर लग रहे थे। घोड़ा धीरे-धीरे दौड़ रहा था। दूर तक खेतों में सन्नाटा पसरा हुआ था। लोग अपने-अपने घरों में दुबके हुए थे।

"बाल-बच्चे कितने हैं?" कुछ देर बाद पूछा।

"दो हैं।" एक लंबी साँस भरकर उसने कहा, "लेकिन सब निकम्मे! काम-धंधा किसी के पास नहीं है। दिन भर निठल्ले घूमते रहते हैं।"

खेतों में फसलें गरम हवा में थरथरा रही थीं। ऊँचे-नीचे पेड़, आम, बबूल, सफेदा, महुआ, चिलबिल, बेर, करौंदे सब हवा की मस्ती में झूम रहे थे। सड़क के किनारे कच्चे मिट्टी के घर बने हुए थे। छोटे-छोटे बच्चे धूल भरी मिट्टी में खेल रहे थे। कोई गुल्ली-डंडा खेल रहा था तो कोई पकड़ा-पकड़ाई। कितने पेड़ों की डालों पर चढ़कर जमीन में बने एक गड्ढे में कूद रहे थे। उन्हें गरमी-लू से कोई मतलब नहीं था। वह तो बस अपने खेल में मगन थे। सचमुच बचपन ऐसा ही होता है। न किसी की परवाह, न किसी की चिंता! बस अपनी धुन में मगन। अपनी मस्ती में खोए रहना।

'हुर्र-हुर्र' कहते हुए बूढ़े ने घोड़े को कुरेदता तो घोड़े की चाल कुछ तेज हो जाती, फिर कुछ देर बाद धीमी हो जाती। धीमी चाल पर वह गुस्से से भर जाता, "चलता क्यों नहीं, नासपीटे! मरे समान चलता है!" कहते हुए जोर से एक-दो चाबुक लगा देता। कुछ देर के लिए घोड़े की चाल तेज हो जाती।

समय भी कितना निर्दयी होता है। सरपट भागा जाता है। बिना किसी की परवाह किए। परिवर्तन सचमुच मनुष्य को निर्दयी बना देता है!

घोड़े की धीमी चाल पर बूढ़ा बार-बार चाबुक लगा रहा था। उसकी बेबसी चाबुक के रूप में बरस रही थी। तभी सामने से एक नौजवान इक्केवाला गुजरा। उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। बूढ़े ने रोककर उससे पूछा, "का रे मुस्तफा, खाली जा रहा है? सवारी नहीं मिली क्या?"

"नहीं मिली तो क्या करूँ? माथा फोड़ूँ?" वह गुस्से में बोला, "सुबह से दोपहर हो गई। एक सवारी नहीं मिली। एक-दो जो मिली थी, वह भी मोटर देखकर चली गई। क्या करता, कब तक ऐसे बैठा रहता। मारे गुस्से के चला आया।" कहकर वह घोड़े की पीठ पर कोड़े मारता हुए चला गया। घोड़ा सरपट भागा।

बूढ़े का चेहरा उतर आया। बोला, "देख रहे हैं, भैया! एक जमाना था, जब हम लोग सवारियाँ भर-भरकर ले जाते थे। सबके चेहरे पर खुशियाँ थीं। लोग झूमते-गाते हुए चलते थे। तीज-त्योहारों में दौड़ लगाते थे। लेकिन आज···आज हमें कोई नहीं पूछता।" कहकर वह चुप हो गया। उसकी आँखें धुँधला आईं।

मैं धूल उड़ाते, दूर जाते उस नौजवान की ओर देखने लगा। जो अपने घोड़े को मारे गुस्से के पीटे जा रहा था। घोड़ा बेतरतीब ढंग से दौड़े जा रहा था। वह अपना गुस्सा उस बेजान जानवर पर उतार रहा था। सचमुच आज रोजी-रोटी के लिए इन्हें कितना संघर्ष करना पड़ रहा है? पहले ये लोग कितने खुश थे। 'दुर्गागंज-रानीगंज' चिल्लाते हुए आसमान सिर पर उठा लेते थे। सवारी भर-भरकर ले जाते थे। राजी-खुशी जो कोई देता, ले लेते थे। कोई हुज्जत नहीं करते थे। लेकिन आज···?

बूढ़ा चुपचाप अपने घोड़े को हाँक रहा था। घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। उसके चाल में तेजी नहीं थी। अब वह घोड़े को मार नहीं रहा था, बल्कि उसके पीठ को सहला रहा था। शायद उसके मन में कहीं पीड़ा थी। सड़क और खेतों के बीच खड़े खंभों को देखकर पूछा, "लगता है, गाँव में बिजली आ गई है?"

"हाँ, आ गई है। खंभे गड़ गए हैं। कुछ घरों में बिजुरी आ गई है। लेकिन हमारे घरों की स्थिति वही है। कुछ लोग अभी भी चिमनी की रोशनी में जिंदगी गुजार रहे हैं। हम लोगों की जिंदगी में कोई परिवर्तन नहीं आया।" उसके स्वर में एक रोष था। उसकी मुसकान में जिंदगी के प्रति एक कटाक्ष था।

सचमुच परिवर्तन निर्दयी और बहरा होता है। वह न किसी की सुनता है, न किसी को देखता है। वह तो बस अपनी चाल में मगन रहता है।

धूप अब काफी तेज हो गई थी। सूरज ऊपर आ गया था। बदन झुलसा जा रहा था। पसीने से कमीज भीग गई थी। लेकिन पता नहीं क्यों मुझे एक सुकून मिल रहा था। पसीने से भीगे बदन को जब गरम हवा छूकर गुजरती तो ऐसे लगता, जैसे कोई सहलाते हुए गुजर गया हो। एक नर्म अहसास मन में कहीं उतर जाता था। इक्के ने दुर्गागंज एक घंटे में पहुँचाया। दूर से गाँव का चकरोट दिखाई दे रहा था। मैंने उसे बताया। उसने कहा, "यहीं उतरेंगे?"

"हाँ।" मैंने सिर हिलाकर कहा।

उसने इक्के को रोक दिया। मैं उतरा। किराया चुकाकर एक जानी-पहचानी पगडंडी की तरफ बढ़ गया।

चिलचिलाती धूप और धूल भरे रास्ते पर चलना जाने क्यों अच्छा लग रहा था। बूढ़ा अपने इक्के को हाँकता चला जा रहा था। कुछ देर तक मैं उसे जाते हुए देखता रहा। अब वह आँखों से ओझल हो गया था।

जहाँ सवारी के लिए मोटर-गाड़ियाँ आ गई थीं, वहाँ इनकी क्या बिसात थी। ये कब तक टिकने वाले थे? जल्दी ही इनका वजूद खत्म हो जाने वाला था। क्योंकि अब लोग इक्के में नहीं मोटरों में चलते हैं। इक्के में बैठना अब लोग तौहीन समझते हैं। अब इक्का मनोरंजन का साधन रह गया था। बच्चे इन्हें देखकर तालियाँ बजाते थे। इनके दुःख-दर्द को कोई नहीं समझता था।

यही सबकुछ सोचता हुआ मैं गाँव की भूल-भुलैयों में खो गया था।

साअ

२१२/१३३/१२ए, पीतांबर नगर, तेलियरगंज,
प्रयागराज-२११००४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९६१६२२२१३५
dheeraj.k.srivastava76@gmail.com

क्रांतिकारी मित्र के नाम

• सुरेश ऋतुपर्ण

सच है कि वे
सुविधाओं के जंगल में घुस
नकारते रहे
आगत संभावनाओं को

पालते रहे
फाइलों में सपने
उन्नति के
और काले भविष्य की आशंका से
पीले हो
दहकते गुस्से का कवच पहन
गालियाँ बकते हुए
युग-नियामक बन गए

पर तुम्हें भी यही होना था
सोना था गुदगुदे गद्दों पर
और रोना था
अपच का रोना

होना था
तुम्हें भी वही
लड़े थे जिसके खिलाफ
हम तुम
एक बड़ी भीड़ के साथ
हाथ बाँध
खड़ी हो गई है जो आज
तुम्हारे दर्शनार्थ

सुर्खी है समाचार में
व्यस्त है पत्रकार
फोटोग्राफर भागता है
माँगता है ऑटोग्राफ
बच्चा
अच्छा है यह कितना
कह, आगे बढ़ जाते हो तुम।

कार पर लदे
घूमते बेकार
व्यस्त बहुत
त्रस्त विरोधियों से
आयोजित कराते
अभिनंदन-समारोह
दो-चार

तुम्हें भी खेलनी थी शतरंज!
चलनी थीं वही चालें
चली गईं जैसी
पिछले ढेर सालों में
तुम्हें भी होना था शामिल
उसी जमात में
और कहना था
समाजवाद आएगा
नहीं आएगा
तो कहाँ जाएगा
पीछे पछताएगा

उसे आना है
तो हमारे साथ आए
लेकर गांधी का नाम
गुनगुनाए पहले रामधुन
फिर भले ही 'सेलर' में
चला जाए

उसे आना है
तो हमारे साथ आए
या भाड़ में जाए
और भी बहुत से वादों के नाम हैं
हमारे पास।
सच
कितनी जल्दी सीखे हैं तुमने
मुहावरे लच्छेदार

जाने-माने रचनाकर। 'अकेली गौरैया देख' (कविता-संग्रह), 'मुक्तिबोध की काव्य-सृष्टि' (आलोचना), 'हिंदी की विश्वयात्रा', 'हिंदी सब संसार', 'पं. कमला प्रसाद मिश्र की काव्य-साधना' सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। 'ट्रिनिडाड हिंदी भूषण' आदि अनेक सम्मानों से सम्मानित।

बुनना शब्दों से
फरेब जालीदार
आर-पार अर्थों का
फैलाना इंद्रजाल
आ गया तुम्हें
रातो-रात
सच बड़ी तेज है
तुम्हारी प्रगति की रफ्तार!

मैं लाचार
भीड़ में खड़ा सोचता हूँ
क्रांति का अर्थ कैसे बदल जाता है
हर बार।

याद आता है मुझे
क्रांति की पूर्व-कल्पना से
चमकता चेहरा तुम्हारा
भविष्योन्मुखी,
दृढ़, जलता हुआ
दमन की आँच पर तपता हुआ
चेहरा तुम्हारा
याद आता है मुझे

तुम्हें देख
मालूम हुआ है आज
मुश्किल होता है
वर्तमान के साथ
अतीत की पटरी बैठाना
उठाना सही सवालों को
होता है कितना खतरनाक
मुझे मालूम हुआ है आज
जब देखा तुम्हें
सुविधा के रथ पर सवार
करते आतंक का प्रहार

पाता हूँ मैं तुम्हें
हवा में झूलते
फलते-फूलते कुरसी पर
उँघते वक्त
पाता हूँ तुम्हें पूछते
गरीबी कब तक हट जाएगी?
सच
कितना अंतर आ गया है
तुम्हारे चेहरे की बनावट में
कि आँख, नाक, कान गायब हैं
और होंठों की मुसकान
दिन-ब-दिन चौड़ी होती जा रही है।

सा.अ.
२२१, प्रभावी अपार्टमेंट्स,
सेक्टर १०, प्लॉट नं. १०
द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ९८१०४५३२४५
rituparna.suresh@gmail.com

आतंकवाद और अहिंसा

• कुसुम पटोरिया

आतंकवाद संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर समस्या है, किंतु भारत के लिए यह उपेक्षित नासूर बन चुका है। आतंकवाद की समस्या का वास्तविक व अंतिम समाधान अहिंसा द्वारा ही संभव है।

आतंकवाद को परिभाषित करना सरल नहीं है, क्योंकि पराजित देश यदि स्वतंत्रता के लिए शस्त्र उठाता है, तो वह विजेता के लिए आतंकवाद होता है। स्वतंत्रता के लिए भारतीय क्रांतिकारी प्रयास अंग्रेजों की दृष्टि में आतंकवाद था।

महाशक्ति बनने या बने रहने के लिए राष्ट्र युद्ध करने की बजाय शत्रु राष्ट्रों में आतंकवाद को प्रोत्साहित कर उन्हें अशक्त व नष्ट करने में लगे हुए हैं। इसलिए प्रत्येक देश का आतंकवाद उसकी देशीय समस्या न रहकर दूसरे देशों से संबद्ध होने के कारण जटिल समस्या होती जा रही है।

देश के अंदर आतंकवाद व्यवस्था के प्रति असंतोष से उपजता है। यह अतिशोषण और अतिपोषण दोनों से पनपता है। यदि असंतोष का समाधान नहीं किया जाए, तो वह विस्फोटक होकर अनेक रूपों में विध्वंस करता है और निरपराधियों के प्राणों से भी उसकी प्यास नहीं बुझती।

परस्पर सह-अस्तित्व और लोककल्याण की आधारशिला पर स्थित समाज में असामाजिक तत्त्व नियंत्रित रहते हैं। परंतु असामाजिक तत्त्वों की बहुलता वाले समाज में आतंकवाद को पनपने का मौका मिलता है। नैतिक और सामाजिक मूल्यों के विघटित होते ही समाज में अच्छे बुरे व्यक्तियों का संतुलन बिगड़ जाता है। व्यक्ति या व्यक्ति समूहों की सत्ता-लोलुपता असामाजिक तत्त्वों को प्रोत्साहित करती है। स्वार्थी नेताओं के संरक्षण में आतंकवाद पनपता है। आतंकवाद का मूल अहंकार और सत्तालोलुपता ही है। अहंकार या श्रेष्ठता का दुरभिमान दुराग्रहों से ही वर्णवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद और धर्मोन्माद के रूप में पनपता है।

आतंकवाद को निष्प्रभावी बनाने के लिए उनको जीवित रखने वाली परिस्थितियों को नष्ट करना, उन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। असहिष्णुता, अवांछित/अनिरांत्रित लिप्सा, अत्याधुनिक शस्त्रों की सुलभता आतंकवाद को जीवित रखे हुए हैं।

सत्य तो यह है कि भारतीय नागरिक का सामान्य चरित्र है कि वह व्यक्तिगत समस्याओं और सपनों में इतना डूबा रहता है कि देश की समस्याओं के विषय में सोचने या कुछ करने का उसके पास समय नहीं रहता। 'कौऊ नृप होऊ हमें का हानि' जैसी मानसिकता भारतीय मनुष्य के विषय में आज भी उतनी ही सत्य है। नेता अपनी सत्ता बचाए रखने के लिए अपमानजनक समझौते करते रहे हैं। भीड़ को प्रसन्न करने के लिए सच बोलने से कतराते हैं, जिसके परिणाम देश को भुगतने पड़ते हैं।

सुपरिचित लेखिका। २० प्रकाशित पुस्तकें। यापनीय और उनका सिहित्य, भारतीय काव्य-शास्त्र, काव्यबिंब व काव्यभाषा, रससिद्धांत पुनर्विचार आदि प्रमुख हैं। अनेक अनूदित पुस्तकें। काका कालेलकर पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

वस्तुतः अहिंसा का अर्थ अन्याय या हिंसा के प्रति मौन नहीं है। अहिंसा का सफल व व्यावहारिक प्रयोग गांधीजी ने ही किया था, परंतु उनके प्रयोग को बहुत सतही तौर पर लिया जाता है। गांधीजी अन्याय के विरुद्ध कोई न कोई छोटा ही सही, कदम स्वयं अवश्य उठाते थे। यदि आज भी धर्म के नाम पर, धर्मांतरण के नाम पर या भाषा या प्रांत के नाम पर जो आतंकवाद पनप रहा है, उसके अहिंसक प्रतिकार के लिए जनता कटिबद्ध हो, तो प्रतिक्रियात्मक संस्थाओं को जन्म ही न लेना पड़े। यदि नेता इस आतंक का खतरा महसूस करते, यदि उनकी स्वार्थी दृष्टि अपने वोट बैंक से जरा भी ऊपर उठती हो, तो वे आतंकवादी संस्थाओं पर प्रतिबंध का विरोध नहीं सहर्ष स्वागत करते। अनेक बार नेताओं के बयान दलीय राजनीति से प्रेरित होकर देशद्रोह की सीमा तक शर्मनाक हो उठते हैं। यह सब हिंसक आचरण का ही प्रतीक है। भय, लोभ, स्वार्थ, असत्य सभी हिंसक वृत्तियाँ हैं। इन दुर्भावनाओं का न होना ही अहिंसक आचरण है। जो व्यक्ति स्वार्थ या भय से मुक्त होता है, वही सच देख पाता है, और वही सच बोलने का साहस कर पाता है। विभिन्न राजनैतिक दल अपने-अपने दलीय चश्मे से देखते हैं, इसका भी परिणाम होता है कि सत्य सही परिप्रेक्ष्य में उन्हें दिखता ही नहीं है। दिखता भी है, तो दलगत नीतिओं से बंधी होने के कारण उनकी वाणी विकृत वक्तव्य देती है या फिर मौन हो जाती है।

आतंकवाद को हिंसा से कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता। हिंसा से हिंसा कई गुनी बढ़कर रक्तबीज की तरह पनपती है। परशुराम पृथ्वी को २१ बार क्षत्रियों से रहित करके भी उनका अस्तित्व समाप्त नहीं कर सके। हिंसक ढंग से बलप्रयोग करने पर तो इसे अतिरिक्त समर्थन मिलता है। इसे वे चुनौती की तरह लेते हैं, उसके विरोध में आतंकवाद अधिक विध्वंसक और क्रूर हो जाता है। आतंकवादियों का दुराग्रह इतना

प्रबल है कि वे आत्मघाती दस्ते के रूप में आक्रमण करने लगे हैं। वस्तुत: रक्त के धब्बों को रक्त से नहीं धोया जा सकता। अग्नि को अग्नि नहीं बुझा सकती, अग्नि उसको बढ़ाती ही है। उसे तो अहिंसा के जल से शुद्ध किया जा सकता है, शांत किया जा सकता है।

अहिंसा को सही रूप में समझकर उसका प्रभावी उपयोग किया जाए, जो वह इस उद्भ्रांत विश्व में समन्वय, सौहार्द और शांति उत्पन्न कर सकती है। इसके लिए अहिंसा के आचरण को शिक्षा का भाग बनाया जाना चाहिए। अहिंसा का प्रशिक्षण भी संभव है। संपूर्ण विश्व में यदि अहिंसा का प्रशिक्षण स्कूलों से आरंभ हो, तो विश्व की स्थिति में निश्चय ही सुधार होगा।

अहिंसा को सही रूप में समझकर उसका प्रभावी उपयोग किया जाए, जो वह इस उद्भ्रांत विश्व में समन्वय, सौहार्द और शांति उत्पन्न कर सकती है। इसके लिए अहिंसा के आचरण को शिक्षा का भाग बनाया जाना चाहिए। अहिंसा का प्रशिक्षण भी संभव है। संपूर्ण विश्व में यदि अहिंसा का प्रशिक्षण स्कूलों से आरंभ हो, तो विश्व की स्थिति में निश्चय ही सुधार होगा।

आतंकवाद का मूल ही एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के प्रति, उनकी विचारधाराओं के प्रति असहिष्णुता तथा घृणा है। दुराग्रही विचार, असहिष्णु मन ही हिंसाको जन्म देते हैं। सत्य बहुमुखी होता है, यह सत्य है। वस्तु का सर्वांगीण विचार किसी एक दृष्टि से नहीं अनेक दृष्टियों से ही संभव है। स्याद्वाद की यह घोषणा मानसिक वैचारिक हिंसा कोदूर करती है। हिंसा का जन्म सर्वप्रथम मन में ही होता है। बड़े-बड़े युद्ध भी व्यक्ति विशेष के मन में अंकुरित होते हैं। फिर व्यक्ति समूहों में विस्तार पाकर युद्ध का रूप लेते हैं। यदि हिंसा के कारण को मन से उन्मूलित कर दिया जाए, तो स्थूल हिंसा जन्म ही नहीं लेगी। मानसिक और वाचनिक अहिंसा के लिए व्यक्ति को निष्पक्ष ढंग से सोचने, विचारने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। तभी वह विरोधी विचार को सही ढंग से सुन सकेगा। विरोधी विचार का अहिंसक प्रतीकार भी कर सकेगा। आतंकवाद यदि असहिष्णुता से पनपता है, तो स्याद्वाद की भाषा और अनेकांत की दृष्टि उसके दृष्टिकोण को व्यापक व अन्य दृष्टियों के प्रति सहिष्णु बनाती है। यह कट्टरता के विरुद्ध व धर्म, संप्रदाय, जातीय व प्रांतीय अहंकार के कारण होने वाले रक्तपात के विरुद्ध संजीवनी औषधि है। जो व्यक्ति या समाज वस्तुत: अहिंसक है, वह दुराग्रहों से ऊपर उठ जाता है। यह नि:स्पृहता विरोधों में समन्वय स्थापित करने योग्य बनाती है।

अहिंसा का अर्थ मन को समस्त कलुषित वृत्तियों से मुक्त रखना है, इसलिए अहिंसा का आचरण सभी दिशाओं में सुधार कर सकता है। यह लालच और महत्त्वाकांक्षा को संतुलित रखता है। आतंकवाद का मूल भी लोभ व आत्मघाती महत्त्वाकांक्षा में निहित है। अहिंसा स्वानुशासित आचरण है। आतंकवाद का व्यापार मादक द्रव्यों व शस्त्रों के अवैध व्यापार पर निर्भर है। यदि जनसामान्य अहिंसा के अनुशासिक आचरण का पालन करे तो उनका यह अवैध व्यापार स्वयं ही बंद हो जाएगा।

सारे अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में यही दिखाई देता है कि सत्तालोलुपता व क्षेत्रीय सर्वोच्चता की कामना शीतयुद्ध, शस्त्र-प्रतिस्पर्धा, आर्थिक अस्थिरता आदि प्रत्येक समस्या की तह में सन्निहित है। उनके वैचारिक समर्थन वास्तविक उद्देश्यों को छिपाने के प्रयत्न हैं। शिखर सम्मेलन समस्या का समाधान किए बिना ही असफल हो जाते हैं, क्योंकि न तो पारस्परिक समझ होती है और न समस्या हल करने की आंतरिक इच्छा ही। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तभी प्रभावी हो सकता है, जब मानव समाज में सभी दिशाओं में सभी स्तरों पर अहिंसक आचरण का पालन हो।

आतंकवाद और आतंकवाद का युद्धीय प्रतिकार न केवल मानव जीवन को अपितु मानव-जीवन के आधारभूत पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक जीवों को क्षतिग्रस्त कर पर्यावरण का विनाश करता है। जीवों का अस्तित्व परस्पर उपकार पर निर्भर है—"परस्परोपग्रहो जीवानाम्"। यदि पृथ्वी का दोहन और पर्यावरण का प्रदूषण इसी प्रकार होता रहा, तो भावी पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं करेगी। अहिंसा कोई कानन या क्रियाकांड नहीं है यह स्वानुशासन है। जीवन पद्धति है, जिसमें प्रतिपल विश्व के असंख्य प्राणियों की मंगलकामना की जाती है। वस्तुत: जीवों के दु:ख, शोक और भय का बीज स्वरूप दुर्भाग्य आदि हिंसा से उत्पन्न हैं। अहिंसा सुख का उत्स है।

यत्किञ्चित् संसारे शरीरिणां दु:खशोकभयबीजम्।
दौर्भाग्यादिसमस्तं तहिंसासम्भवं ज्ञेयम्॥

आज दुनिया भर में प्रख्यात वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी, धार्मिक नेता यह विचार करने लगे हैं कि हिंसा को जीवन के प्रति सम्मान से, घृणा को सहिष्णुता से तथा लालच को संतोष से जीता जाना चाहिए। सामान्य व्यक्ति भी हिंसा के बढ़ते हुए खतरों को महसूस करने लगे हैं। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह व अनेकांत आज अधिक आवश्यक और प्रासंगिक है।

अब वह समय आ गया है, जब सामान्य व्यक्ति को भी अहिंसा का अर्थ और उसके व्यावहारिक प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाए। प्राथमिक शिक्षा से ही बालकों को यह प्रशिक्षण दिया जाएगा, तो भावी नागरिक नैतिक मूल्य व सहिष्णुता को आत्मसात् करके ही बड़ा होगा। हमारे नेताओं को भी इस प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिससे वे समझ सकें कि अहिंसा से प्राप्त शक्ति अधिक स्थायी व उत्तम होती है, आतंक और हिंसा से प्राप्त शक्ति क्षणिक व भयपूर्ण होती है। चंगेज खाँ और अशोक दोनों ही बौद्ध धर्मावलंबी थे, परंतु अशोक ने बौद्ध धर्म व भारत दोनों का ही कल्याण किया, अधिक स्थायी राज्य दिया, जबकि चंगेज खाँ द्वारा लूटा हुआ धन या राज्य स्थायी नहीं हो सका।

वस्तुत: अहिंसा को बुद्धिजीवियों के बौद्धिक विकास की, कोरी चर्चा की विषयवस्तु न बनाकर उसे धार्मिक रूढ़ियों से निकाल कर जीवन पद्धति के रूप में अपनाया जाए, तो यह न केवल आतंकवाद अपितु सभी समस्याओं का समाधान कर सकती है।

साअ
आजाद चौक, सदर,
नागपुर-४४०००१ (महा.)
दूरभाष : ९८८१०१०७९८

इनसान यानी, इनसान यानी, इनसान

मूल : **दिनकर जोशी**
अनुवाद : **अमृत बारोट**

मुझे बहुत डर लगता है।

किसका कैसा डर लगता है, ऐसा अगर आप पूछेंगे तो मैं जवाब नहीं दे पाऊँगा। समझे आप? मैंने कहा कि मैं जवाब दे नहीं पाऊँगा, दूँगा नहीं, ऐसा नहीं कहा। अकसर ऐसा ही होता है। यह दोनों के बीच का भेद आप समझेंगे नहीं और मान लेंगे के मैंने जवाब ही नहीं दिया। लेकिन कोई बात नहीं। आप कई ऐसी बातें मान लेते हैं, जिसके बारे में आप कुछ जानते नहीं। फिर आप भी मेरे बारे में ऐसा ही कहेंगे, मुझे यकीन है। जाने भी दीजिए, मुझे डर लगता है और बेहतर होगा कि मेरा डर मेरे पास ही रहे।

उस दिन ऐसा लगा कि खाट के नीचे छिपा हुआ तेंदुआ यकायक कहीं झपटेगा। फिर ऐसा सोचने पर मुझे हँसी आई। चौदह मंजिल वाली इमारत के ग्यारवहीं मंजिल पर बारह सौ फीट के विस्तार वाले आलिशान फ्लैट के शयनखंड में तेंदुआ कहाँ से आएगा? जानता हूँ, ऐसी सोच पागलपन है, फिर भी यह सच है कि खाट के नीचे छिपे तेंदुए का मुझे डर लगता है। कभी ऐसी आशंका होती है कि शयनखंड की छत कहीं मुझ पर टूट पड़े। यह संभव नहीं है क्योंकि बहुत ठोस इमारत है। फिर भी सोचने लगता हूँ कि नई निर्माण की गई इमारत उसके कमजोर ढाँचे के कारण टूट पड़ने के वृत्तांत अखबारों में अकसर आते रहते हैं, वैसा ही वृत्तांत कल यह इमारत के लिए भी आए, उसमें असंभव क्या है?

स्नानकक्ष में स्नान करने जाता हूँ, तब साँप का डर पीछा नहीं छोड़ता। बचपन में गाँव के मकान में अकसर साँप निकलता था। पर आजकल नाग पंचमी के दिन भी सपेरा साँप लिये राह पर नजर नहीं आता और मुझे साँप के दर्शन हुए भी बरसों बीत चुके हैं, फिर भी स्नानकक्ष में साँप होगा, ऐसा डर लगता ही है।

सच बोलूँ, आप भले मानो या न मानो, पर मुझे सबसे अधिक डर भूत का लगता है। अर्धरात में खुली खिड़की से कोई भूत भीतर आ जाएगा ऐसा खयाल आते ही मैं डर से काँपने लगता हूँ। भूत का स्वरूप कैसा होता है, वह मैं नहीं जानता, इसलिए खुली खिड़की में खुले आसमा में दिखाई पड़ते बादलों के अलग-अलग स्वरूप को मैं भूत समझ लेता हूँ। भूत के कई स्वरूप हो सकते हैं, जबकि इनसान का एक ही स्वरूप होता है।

पहले घर से ऑफिस आने पर अकस्मात् का डर रहता था। कोई मोटर साइकिल या मोटर कार से टकरा जाऊँगा, या कहीं टंटा-फसाद होगा···फिर पुलिस···अस्पताल···न जाने क्या क्या···! अब ऑफिस से घर आते वक्त भी ऐसा ही डर लगता है। कम या ज्यादा···घर या ऑफिस··· सड़क पर चलते-चलते या बगीचे में टहलते···हर वक्त डर लगने लगता है। ऐसा लगता है कि अकेले शांति से घूमने का या टहलने का यह वक्त भी अब खत्म हो जाएगा और फिर से वह ही डर···। हे ईश्वर!

तैंतालीस उपन्यास, ग्यारह कहानी-संग्रह, दस संपादित पुस्तकें, 'महाभारत' व 'रामायण' विषयक नौ अध्ययन ग्रंथ और लेख, प्रसंग चित्र, अनूदित पुस्तकों सहित अब तक कुल एक सौ पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित। गुजराती साहित्य परिषद् का 'उमा स्नेह रश्मि पारितोषिक' तथा गुजरात थियोसोफिकल सोसाइटी के 'मैडम ब्लेवेट्स्की अवार्ड' से सम्मानित।

डर से बचने के लिए एक दिन घर से अकेला ही निकल पड़ा। यह बाहर निकलने का वक्त नहीं था। घर में रहने का वक्त था। ऑफिर जाने का वक्त भी नहीं था। कहाँ जाना है यह सोचा नहीं था। लेकिन जहाँ किसी का डर ना लगे ऐसी जगह मुझे जाना था।

आप यकीन नहीं करेंगे किंतु कुछ ही मिनटों में, जिससे भाग रहा था वह डर ही मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया। मैंने सहसा चौंककर अपने इर्द-गिर्द देखा। राह में सन्नाटा छाया हुआ था। सब कुछ अदृश्य हो गया था। हर रोज भटकनेवाले लावारिस कुत्ते भी आज नहीं थे। मकानों के द्वार बंद थे। बंद कमरों में जलते दीयों की रोशनी भी गायब थी। मैंने सामने देखा तो एक विशाल वृक्ष के तने के पास एक महाकाय शेर मौज में लेटा था और उसकी चमकीली दो आँखें मुझे घूर रही थीं।

यहाँ शेर कहाँ से आया, ऐसा पूछना मत, क्योंकि इस कहानी में ऐसा बहुत कुछ घटित होनेवाला है, और अभी से ऐसा पूछना आरंभ करोगे तो कहानी आगे पढ़ नहीं पाओगे। पौराणिक कथाओं में ऐसा बहुत कुछ बनता है जिस पर पहली नजर में यकीन नहीं आता। उसका मतलब यह नहीं कि ऐसा हो नहीं सकता। हमारी समझदारी भी तो शून्य हो सकती है।

'अरे ओ! मुझसे डर गए क्या?' अचानक मैंने यह शब्द सुने। अपने कानोंकान सुने। सामने लेटे हुए शेर ने अपना जबड़ा फाड़ा, हँसते-हँसते यह कहा। शब्द शेर के थे, पर उच्चारण और भाषा इनसान की मेरी और तुम्हारी थी।

मेरा डर और बढ़ गया। शेर को क्या जवाब दूँ, यह सूझा ही नहीं। मेरे व्यथा शेर ने समझ ली। उसने शायद अपने महाविद्यालयों में कोई उपाधि नहीं ली होगी, अत: समझदार था। जैसे बच्चे को फुसलाता हो, वैसे प्यार से वह बोला। 'डरो नहीं बालक, मैंने अभी ही भोजन कर लिया है। पेट भर जाने के बाद अगर सामने अमृत कूपी पड़ी हो, फिर भी मैं परवाह नहीं करता। मैं शेर हूँ, शेर, वनराज।'

मैंने ऐसा कभी सुना नहीं था। पेट भर गया हो और फिर अगर सामने अमृत कूपी पड़ी हो, फिर भी उसे ध्यान में नहीं लेना, ऐसी कल्पना मेरे

दिमाग में कभी आई नहीं थी। जिनकी जेब खचाखच भरी हो, किंतु देवालय के दान-पात्र में दस का जाली नोट सरका के पाँच का सिक्का उड़ा ले ऐसे कई भक्तजनों को मैंने देखा था। कई बार खा सके उतना भोजन थाली में परोसा गया हो फिर व्याकुल होकर दूसरों की थाली में झाँकनेवाले बेशुमार स्नेही, स्वजन और संबंधियों को मैं जानता था। पर यहाँ तो एक शेर था।

'जाओ भाई, अब मुझे नींद आ रही है और नींद के वक्त जागना हमें रास नहीं आता। हम तो सोने के वक्त सो जाते हैं और जागने के वक्त ही जागते हैं। इतना कहकर शेर ने करवट बदल के आँखें बंद कर लीं। शेर सो गया। पलक झपकते ही गहरी नींद में चला गया। पर शेर के वह विकराल जबड़े का डर यों मुझमें घुस गया था कि मेरे कलेजे की धड़कन बंद ही नहीं हो चली थी। मैं वहाँ से दुम दबा के दूसरी ओर भागा। अब शेर दिखता नहीं था, अत: मेरा डर थोड़ा कम हो गया।

किस्मत कठोर हो तो नाई को अपने औजारों के थेले में से काटे यह कहावत आपने सुनी है? देहाती कहावत है, इसलिए शायद भूल गए हो। शयद नाई या नापित शब्द भी आपके शब्दकोश से निकल गए हों। जाने दो, तुम्हें सिखलाना मेरा काम नहीं है। आपने इतना सारा सीख लिया है कि नया कुछ सीखने की अब शायद गुंजाइश ही न रही हो।

सहमा अंधकार में कहीं कोई कोने से रोशनी जगमगाने लगी। ऐसी दीप्ति मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। लाल रंग नीला, पीला, केसरिया, गुलाबी तरह-तरह की तेजलकीरों से सारा पथ तेजोमय हो गया। अद्‌भुत तेज था। उसे देखते ही मेरा अंग-अंग आलोकित हो उठा। पर यह प्रकाश आया कहाँ से? मैं अपनी दाहिनी ओर मुड़ा।

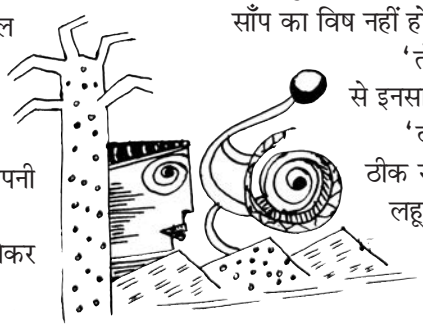

'बाप रे!' कोने में एक जबरदस्त नाग ढेर होकर पड़ा था और उसके फन पर एक चमकदार मणि जगमगा रही थी। अब मैंने प्रकार की ओर से नजर हटाकर नाग की ओर देखा। इतना प्रचंड साँप! अब इससे कैसे छटकना? वहाँ से उसकी फुफकार ही मौत के लिए काफी है, काटने की आवश्यकता ही नहीं। बचने का कोई मार्ग अब दिखता नहीं था। मरते वक्त इनसान जिसका ध्यान करता है, दूसरे जन्म में उसी का अवतार उसे प्राप्त होता है, ऐसा मैंने गीता में कहीं पढ़ा था। दुविधा यह थी कि मौत का पल जब सामने था तब ध्यान किस का किया जाए यह सूझता नहीं था। मेरा गला सूख रहा था। हृदय धड़क रहा है कि बंद हो गया है वह भी समझ में नहीं आ रहा था। तब यकायक—

'ओ बालक! मेरे सामने से चला जा, मुझे तुझसे डर लग रहा है।' सर्प भी ऐसी बानी बोल सकता है, ऐसा मैंने सोचा नहीं था। पर सर्प ही बोला था। मेरा थरथराना अब बंद हो गया था। अजीब बात है। सर्प को मुझसे डर लग रहा है? पुराजन काल में ऋषिवृंद ऐसी प्रार्थना करते थे कि 'हे ईश्वर, मैं किसी से डरूँ नहीं और कोई मुझसे न डरे।' पर यहाँ तो विपरीत बात है, मैं सर्प से डरता हूँ और सर्प मुझसे डरता है।

किंतु अब कुछ घटित हुआ। सर्प ने बिना किसी संचार के अपना मुँह खोला और उसकी लंबी और पतली जिह्वा में भरे विष के भंडार का मुझे दर्शन हुआ। मेरे थरथराना फिर से शुरू हो गया। विष के इस महानिधि के तरंग का एक बूँद भी यहाँ तक पहुँचे तो···

'अरे! इतना थरथराता क्यों है? मेरे मुँह पर तो ताला लगा हुआ है।' सर्प ने कहा। पुरा कथा में पशु-पक्षी बोलते हैं, वैसे ही साँप बोला। मैं इसका पूर्वार्थ समझा पर उत्तरार्ध मेरे मुँह पर तो ताला लगा हुआ है—वह समझ में न आया।

'ताला? यानी?' मैं पूछे बिना रह ना सका, 'तू तो कभी भी काट सकता है। देख, मेरी जहर से भरी जिह्वा कैसे लपक रही है। उसे ताला कैसे लग सकता है?'

'नासमझ क्यों है भला? तुम्हें नितांत सच का पता ही नहीं, 'सुनो' ऐसा कहकर नाग ने चेतनवान होकर अपने फन को आगे किया। मैं सहम गया था। मेरा तन बदन चेतनहीन बनकर शिथिल होने लगा। साँप मेरे मनोभाव समझ गया हो वैसे जोर से हँसने लगा। साँप जोर से हँसा, यह बात आप नहीं मानेंगे, पर मैंने अपनी इन्हीं आँखों से उसे हँसते हुए देखा है और अपने कानों से उसकी हँसी की गूँज सुनी है।

'ईश्वर ने सभी सर्पों के मुँह पर ताले लगाए हैं। जब किसी के आयु की अवधि समाप्त हो जाए और यमराज ने उसके लिए सर्पदंश का निर्माण किया हो तभी ही ईश्वर वह ताला खोलता है और सर्प उसे डस लेता है। पर इतना कहकर साँप रुक गया और पलभर मुझे एक नजर से ताकता रहा। फिर बोला, 'पर साँप के विष से किसी इनसान की मौन से जाए ऐसा कभी हुआ नहीं है। और हो ही नहीं कसता। मनुष्य के मृत्यु का कारण साँप का विष नहीं होता।'

'तो?' मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं थी।' फिर तुम्हारे दंश से इनसान मरता क्यों है?'

'दोस्त! मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसे ध्यान से सुन और ठीक से समझ ले। जहर तो आदमी की रगों में और उसके लहू की बूँद-बूँद में पहले से भरा होता है। हमारे दंश से हमारी लार उसके अंग में बहने लहू के साथ सम्मिश्र हो जाती है। पर आदमी की रगों से बहता वह विषाक्त लहू हमारी शुद्ध लार को सह नहीं सकता। सर्प देश का खटका और चौक में उसका जहरीला रक्त डसे ही मार देता है। वह जीवित हो तब तक वह जहरीला नक्त उसकी आँखें और जिह्वा में दूसरों को मारता रहता है। लेकिन हमारी लार की शुद्धि के कारण वह खुद ही मौत के अधीन हो जाता है।'

अजीब था यह विष पुराण। मैं हक्का-बक्का रह गया था। मेरे अंगों में लहू का संचार ही मानो रुक गया था और साँस भी थम गई थी। और अब आखरी बात भी सुन ले, साँप अब तन के खड़ा हो गया और उसके फन पर चमकते वह मणि को नीचे जमीं पर रखकर बोला, 'इसान तुम्हारी तरह बुजदिल नहीं होते। तू इनसान बनने के लायक ही नहीं है। पर जब बना ही है तो तेरे लिए तय हुई आखरी साँस तक तुझे जीना ही पड़ेगा। ले, यह मणि अपने पास रख और जब तुझे डर लगे तब मणि को हथेली में रखकर हथेली बंद कर लेना। तब तुम औरों की नजरों से अदृश्य हो जाओगे और तुम्हें कोई देख नहीं पाएगा, पर तुम सभी को देख पाओगे।'

इतना कहकर साँप फर्राटे से वहाँ से निकल पड़ा और पलक झपकते ही अदृश्य हो गया। वह मणि संगमरगर की भाँति जगमगा रही थी। मैंने तुरंत उसे उड़ा लिया।

साँप के जाने के चिह्न जहाँ नजर आते थे, उससे विपरीत दिशा में मैं चलने लगा। कुछ ही देर में मुझे यह एहसास हो गया कि वह दिशा विचित्र थी। वहाँ की सारी इमारतें गायब थीं। मैंने सोचा क्या सभी इमारतों ने अपनी मुट्‌ठी में

साँप का मणि तो नहीं रखा है? मैंने चाहा मैं भी अपनी मुट्ठी में मणि रखकर अदृश्य हो जाऊँ। फिर सोचा कि मुझे अदृश्य होने की क्या आवश्यक्ता है। मुझे कोई देख तो नहीं रहा है। देखनेवाला कोई तो होना चाहिए।

सहसा मुझे मेरे इर्दगिर्द कोई न होने का डर लगने लगा। डर के मारे मैं तेज रफ्तार से वहाँ से चलने लगा। लेकिन मैं ज्यादा देर तक वही रफ्तार से चल नहीं पाया। मैंने देखा तो मेरे दोनों ओर बेशुमार पेड़ खड़े थे। दोनों ओर आम, बरगद, पीपल और नीम मके पेड़ नजर आते थे। हवा में तुलसी-पत्र की महक थी। ठोर और कदली वृक्ष भी दोनों तरफ दिखाई पड़ते थे। इतने सारे पेड़ अचानक कहाँ से आए? वृक्षों की शाखाएँ तेज हवा के चलने से हिल रही थीं और विचित्र ध्वनि सुनाई दे रही थी। पेड़ मानों परस्पर गुफ्तगू कर रहे थे। 'अरे ओ! अभी तू यहाँ क्यों आया है? तुझे डर नहीं लगता?' मेरे पैर थम गए। मैंने ठीक ही सुना था। मैं अपनी दाहिनी ओर मुड़ा और देखा तो एक विशाल वृक्ष की सबसे नीची डाली पर एक शिकरा-बाज पक्षी बैठा हुआ था। वह इतना विकराल और कुरूप था कि उसे देख दूसरे पंछी तो क्या कुत्ते बिल्ली भी भयभीत हो जाए। शिकरा-बाज शिकारी पक्षी है। चिड़िया, कपोत, फाख्ता और मैना जैसे पंछियों को हवा में ही अपने शिकंजे में लेनेवाला। उसकी निरंतर ताकती हुई गाढ़ी लाल आँखें—

'आपकी बात सही है, बंधु। मुझे डर लग रहा है। मैंने हिम्मत जुटाते हुए मंद स्वर से कहा। आज तक मैंने पक्षियों का कलरव सुना था पर किसी पक्षी को इस तरह शब्दों का उच्चारण करते हुए नहीं सुना था। बाज को कभी मैंने चिड़ियाघर के पिंजरे में बंद देखा होगा और उसी वजह से ही मैं उसको पहचान पाया। उसकी तीक्ष्ण चोंच और रक्तरंजित पंजा कँपकँपाने वाला दृश्य था। मैं डर रहा था और जब डर से बचने के लिए इधर-उधर भटक रहा था तब वह डर ही मेरा पीछा करते हुए मेरे सामने आ गया था। 'तू क्यों डर रहा है, बालक? तुझे कभी भूखा सोना पड़ता है? ऊपरवाला तेरी थाली में भोजन नहीं देता है? ठंड और धूप में तुझे छत नसीब नहीं होती? और बतना हो तो तुझे नींद नहीं आती।' बापू ने मेरे सामने प्रश्नों की बौछार कर दी।

'नहीं-नहीं, वह सब तो है। नहीं है, ऐसा मैं नहीं कह सकता।'

मैंने जवाब दिया और फिर बोला, 'लेकिन कोई मुझसे यह लेगा, ऐसा मुझे डर लगता है।'

'दूसरों से कुछ छीनने में तुझे आनंद आता है? तुझे ऐसी आदत हो गई है क्या?' बाज ने रहस्यात्मक हास्य से व्यंग्य में कहा। बाज के इस प्रश्न का उत्तर सहमत होकर देना या असहमत होकर यह मेरे लिए दुविधाजनक बात थी। हाँ कहते वक्त जिह्वा पर न आ जाती थी, और न कहते वक्त जीभ लड़खड़ाने लगती थी। 'सुन', बाज ने मानों मेरी दुविधा समझ ली हो वैसे बोला, 'पेट की आग बुझाने के लिए सहस्र भुजाओं वाला ईश्वर मुझे संतोष हो जाए इतने चिड़िया, फाख्ता, कपोत और कौओं को हर दिन भेजता है। इतने सारे पेडों की इतनी शाखाओं में कहीं भी घोंसला बनाकर मैं अपना आत्मरक्षण कर लेता हूँ। मन हो तब अपने जातिबंधुओं के साथ कामशोर कर लेता हूँ।' इतना कहकर बाज ने धीरे से घहराना शुरू कर दिया।

मेरी थरथराहट बंद हो गई थी पर मेरा गला सूख रहा था। गले की नमी पसीना बनकर मेरे सारे बदन में फैल गई थी। मैंने सोचा, बाज के पास जो कुछ था वह सभी कुछ मेरे पास भी तो था। फिर भी मेरा डर जाने का नाम क्यों नहीं ले रहा था?

बाज ने अपने पंख फड़फड़ाए। उसके फड़फड़ाने से पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे पेड़ के कुछ पत्तों को जैसे बहाना मिल गया हो, वैसे वह गिर पड़े। पत्तों के गिरने की वह ध्वनि···मेरा डर न जाने क्यों और बढ़ गया। हृदय जोर से धक-धक करने लगा। यकायक बाज उड़ गया और डरा हुआ मैं फिर एक बार उससे विपरीत दिशा में दौड़ने लगा।

मैं दौड़ता गया···दौड़ता गया···दौड़ता ही गया। ऐसा लग रहा था जैसे वह शेर, साँप और शिकारी-बाज तीनों मेरे पीछे भाग रहे हैं। पलभर के लिए लगा, वह पीछे नहीं पर आगे दौड़ रहे हैं और मैं उनके पीछे घसीटा जा रहा हूँ। और ज्यादा डर न लगे, इसलिए मैंने अपनी आँखें मूँद लीं। आँखें मूँदने से ज्यादा-से-ज्यादा ठेस लग सकती है, गिर सकता हूँ, पर डर तो कम ही लगेगा और खुद को बचा भी पाऊँगा।

धड़ाम!

अचानक पूरे बदन में कँपकँपी सी फैल जाए, वैसी एक जोरों की टक्कर लगी। मानो मेरे पैरों से कुछ टकराया। पर वह ठोकर नहीं थी। अब आँखें खोले बिना और कोई चारा नहीं था। मैंने आहिस्ता से अपनी आँखें खोलीं और किससे टकराया हूँ, वह जानने के लिए अपने हाथ फैलाए।

बाप रे!

मैंने कभी सोचा भी नहीं था, एक भयानक कंकाल मेरे सामने खड़ा था। मेरे मुँह से चीख निकल गई। आँखें खुली ही रह गईं। मैंने देखा तो एक नहीं, कई अस्थि पंजर मेरे चारों ओर नृत्य करते हुए मुझे घेरकर खड़े थे।

'अरे! तू इतना भयभीत क्यों है?' मेरे बिल्कुल निकट में खड़े एक अस्थिपंजर ने बड़े आराम से कहा। 'मुझे तुमसे डर लग रहा है।'

'हमारा डर!' दूसरे एक अस्थिपंजर ने और निकट आकर पूछा। अस्थि-पंजरों में नर और मादा अलग होते हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता, किंतु वह अस्थि-पंजर मुझे किसी मादा का क्यों लग रहा था? उसने कहा, 'हम तो कंकाल हैं, इनसान नहीं। फिर डरने की क्या बात है?'

उसकी आवाज मुझे पहचानी सी लगी। मेरा डर अब कम हो गया था। एक के बाद एक सभी अस्थि-पंजर अब मेरे बिल्कुल निकट आ गए थे। मैंने ध्यान से उनके चेहरों की ओर देखा। चेहरे तो नहीं थे, पर उनके आकार से मुझे लगा, यह तो मट, मटु, गटु और चिंटू हैं। और वह कांता, शांता, उमा और हेमा है। यह सभी को तो मैं पहचानता हूँ। लेकिन ऐसा सोचने पर मेरे रोम-रोम में कँपकँपी सी छा गई। यह सब भले अस्थि-पंजर बन गए हो, पर हैं तो वह ही···और अगर ऐसा है तो भैया मैं भी?

यकायक साँप का दिया मणि मुझे याद आया। मैंने उसे अपने हाथ में लेकर मुट्ठी बंद कर दी। यह सभी अब मुझे देख नहीं पाएँगे।

'भागो···दौड़ो···यह इनसान नहीं लगता! यह कोई प्रेत है!'

अस्थि-पंजरों में अचानक भगदड़ मच गई थी।

'मैं प्रेत नहीं हूँ···इनसान ही हूँ।' मैंने चिल्लाकर कहा।

'नहीं, तू प्रेत ही है, इनसान नहीं है। मेरी आवाज सुनाई पड़ती है, लेकिन हम तुम्हें देख नहीं पाते। ऐसा फरेब प्रेत ही कर सकते हैं।'

प्रेत यानि प्रेत यानि प्रेत···

सभी अस्थि-पंजर एक साथ फिर से अपनी कब्र में सो गए और उनके कंकालों से बिखरी हुई धूल को फिर से अपने ऊपर फैलाते हुए बोले, 'और इनसान यानी इनसान यानि इनसान···।'

साअ

१०२-ए, पार्क एवेन्यू दहाणुकर वाडी,
एम.जी. रोड, कांदीवली (पश्चिम)
मुंबई-४०००६७ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०९९६९५१६७४५

हम सब का प्यारा तिरंगा

• हेमचंद्र सकलानी

सुपरिचित लेखक। देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, लेख एवं कहानियाँ निरंतर प्रकाशित। मराठी और तमिल में ९९ कविताओं का अनुवाद। भारत सरकार द्वारा पुस्तक 'विरासतों की खोज' को प्रथम पुरस्कार। उत्तराखंड जल विद्युत् निगम लि. के इंजीनियर पद से सेवानिवृत्त।

उठो कफन बाँधकर उठो तुम

उठो कफन सर पर बाँधकर उठो तुम
देखो सीमा पर कोई आया है।

यह वक्त नहीं राजनीति करने का
यह वक्त नहीं सत्ता-लोलुप बनने का,
समय देखो हमें जगाने आया है
उठो कफन सर पर बाँधकर उठो तुम,
देखो सीमा पर कोई आया है।

हम आपस में लड़ जब कमजोर हुए
निज स्वार्थों में डूबे मदहोश रहे,
दुश्मन तब-तब धमकाने आया है
उठो कफन सर पर बाँधकर उठो तुम,
देखो सीमा पर कोई आया है।

हम भले ही रहें कष्ट अभावों में
देश सुखी समृद्ध रहे हरदम हर पल,
शहीदों ने बस यही हमें सिखाया है
उठो कफन सर पर बाँधकर उठो तुम,
देखो सीमा पर कोई आया है।

सीमाएँ आज तुमसे माँग रही बलिदान
जिसने देश का यह कर्ज चुकाया है,
इतिहास ने गीत उसी का गाया है।
उठो कफन सर पर बाँधकर उठो तुम,
देखो सीमा पर कोई आया है।

इस देश की कसम

है हम को अपने इस देश की कसम
इसके लिए जिएँगे और मरेंगे हम,
होंगे जो भी अपने देश के दुश्मन
उनके सर धड़ से कलम करेंगे हम।

सरहद पर हुए जो शहीद उनकी कसम
हर जुल्म को खत्म करके दम लेंगे हम,
देश को बुलंदियों तक ले जाने के लिए
मिला के कदम-से-कदम चलेंगे हम।

प्रेम की गंगा ऐसी बहेगी एक दिन
नफरत की आँधियों को जीत लेंगे हम,
जो न हो सका किसी से इस जहान में
अपने बल पर करके दिखाएँगे हम।

सारे धर्मों का हो यहाँ मान-सम्मान
देश का वह गुलदस्ता सजाएँगे हम,
लहराए गगन में सबसे ऊँचा तिरंगा
इसी कामना में हरदम जिएँगे हम।

अवसाद के ये दिन रात ढल जाएँगे
रहेगा नहीं किसी को कोई रंजो गम,
अब हँसेगी धरा मुसकराएगा गगन
अपना एक ऐसा वतन बनाएँगे हम।

तिरंगा

लहर-लहर अंबर पर लहराए तिरंगा
फहर-फहर धरती पर, फहराए तिरंगा।
रंग-बिरंगे रंगों ने सजाया जिसको
वही तो है, हम सबका प्यारा तिरंगा।
जिसकी छाया में, हम आजाद हुए
हमारे सपनों का है अरमान तिरंगा।

हमारे शौर्य, शांति, समृद्धि का परचम
हमारी आन, बान, शान है तिरंगा।
लहर, लहर, लहराता जब अंबर पर
हम सबका, तन मन हो जाता तिरंगा।

तुझमें बसी हुई, हम सब की जान
तू ही हमारा है, स्वाभिमान तिरंगा।
धरती पर लहराए, लहराए, आसमान में
भारत का तू ही है, यशोगान तिरंगा।

सारे ध्वजों का है, तू सरताज तिरंगा
हमारे भारत की है पहचान तिरंगा।
आए जब अंत समय, है कामना यही
मेरे शव का हो बस, परिधान तिरंगा।

लहर-लहर अंबर पर, लहराए तिरंगा
फहर-फहर, धरती पर, फहराए तिरंगा।

सा अ
सकलानी साहित्य सदन,
विद्यापीठ मार्ग, विकासनगर,
देहरादून-२४८१९८ (उत्तराखंड)
दूरभाष : ९४१२९३१७८१

'प्रसाद'-साहित्य में समस्याएँ

• रेणु बाली

शंका या अनिश्चितता की स्थिति को 'समस्या' कहते हैं। जीवन द्वंद्व व समस्या का नाम है। प्रत्येक युग की कोई न कोई एक गहरी समस्या होती है। कवि या साहित्यकार बुद्धि व भावना की दृष्टि से अपने युग का आदर्श पुरुष समझा जाता है, अत: यह स्वाभाविक ही है कि समाज की विषम स्थितियों में जनता उसकी ओर देखे और वह अपने मानव बुद्धि के बल से अपने युग की समस्या के समाधान में उत्साहपूर्वक आगे बढ़े। तात्पर्य यह कि समस्याओं का समाधान भी साहित्यकार का एक बड़ा दायित्व है। हाँ, वह इस दायित्व का निर्वाह फिर भले ही अपने मूल प्रकृति व कला की पद्धति व मर्यादा के साथ करे! प्रत्येक समस्या के तीन पक्ष होते हैं—निदान, विश्लेषण और समाधान! इन तीनों पक्षों का रूप साहित्यकार की प्रकृति व गृहीत विधा, लक्ष्य और प्रकृति के भेद से परिवर्तित होता रहता है। 'निदान' तो बीज है। परिस्थितियों के सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण के साथ इसकी अवधारणा प्राय: स्रष्टा के चेतन मानस में ही होती है। विश्लेषण विधा-भेद से व रचयिता की रुचि-प्रकृति भेद से बदलता है। गीतकार, कवि, निबंधकार व उपन्यासकार एक ही समस्या का विश्लेषण विभिन्न ढंग से करने के लिए बाध्य हैं। अब रह गया समाधान! समाधान की कलात्मक प्रणाली तो यही है कि विश्लेषण की प्रक्रिया में ही कलाकार अपने समाधान को ध्वनित कर दे। वह समस्याओं को इस रूप में चित्रित करें कि चित्रण-पद्धति में ही लेखकीय समाधान का आभास मिल जाए, क्योंकि अंत में स्वतंत्र रूप से समाधान प्रस्तुत करने में प्राय: लेखक का कलाकार-रूप प्रच्छन्न हो जाता है और वह एक गुरु, नेता, उपदेशक, प्रचारक या नीतिकार का स्थूल बाना धारण कर लेता है। परिणामत: कलात्मक प्रभाव विकृत हो जाता है। यों जीवन में महानतम साहित्यकार अपने विशिष्ट व वरेण्य मूल्यों का प्रचार ही तो करते हैं।

(क) समस्या का स्वरूप और प्रसाद द्वारा निरूपित मुख्य समस्याएँ

'प्रसाद' भारतीय सांस्कृतिक ह्रास, दीर्घकालीन राजनीतिक दासता व भयंकर सामाजिक अधोगति के युग के साहित्यकार थे। वे मूलत: एक कवि और आनंदवादी दार्शनिक थे। किंतु बाह्य विडंबनाओं के बीच उनके इन रूपों का निर्वाह तो स्वयं एक महती विडंबना ही रहती। जब तक वे स्वयं सक्रिय रह कर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में सहयोग न देते कि जो उनके महान् आनंद के स्वप्न को साकार करने का पथ प्रशस्त करतीं

सुपरिचित लेखिका। कथाकार रांगेय राघव, सियारामशरण गुप्त के उपन्यास और नारी पात्र पर कार्य। पत्र-पत्रिकाओं में शोध-लेख प्रकाशित, नागपुर आकाशवाणी से साहित्यिक चर्चा एवं आलेख प्रसारित। सनराइस पीस मिशन नागपुर द्वारा 'सनराइज साहित्य रत्न', 'हिंदी सेवी सारस्वत प्रचारक सम्मान' प्राप्त।

तब तक उनका यह रूप पंगु और निस्सार ही रहता। अत: युग की चुनौती स्वीकार करना उनके लिए अनिवार्य था। उनकी 'कंकाल', 'तितली', 'कामायनी' आदि रचनाएँ उन्हें अपने युग के एक महान् विचारक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। उनका आनंदवाद कोरी कपोल कल्पना नहीं है। पृथ्वी पर उस आनंद की अवतारणा के लिए मानव और समाज में जो कुछ सामाजिक व सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है, उसे लाने की प्रक्रिया में ही उनका विचारक रूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। व्यक्ति, समाज व विश्व की परिस्थितियों से सक्रिय-रूप से जूझे बिना आनंदवाद की कल्पना तो ख्याली पुलाव मात्र ही रह जाती।

'प्रसादजी' के सामने अनेक समस्याएँ समाधान की प्रतीक्षा में अनवरत रूप से खड़ी दिखाई पड़ती हैं, यथा—नारी समस्या, विधवा समस्या, वेश्या समस्या, विवाह संबंध-विच्छेद समस्या, शिक्षा समस्या, ग्राम-सुधार समस्या, हरिजन समस्या और मानव के स्थायी आनंद की समस्या। इन समस्याओं पर 'प्रसादजी' ने क्या और किस रूप में विचार किया है, इसे समझने के लिए हम इस प्रसंग को तीन स्तंभों के अंतर्गत विभाजित करना होगा—(१) निदान, (२) विश्लेषण, और (३) समाधान!

(ख) समस्याओं का निदान

सामूहिक रूप से विचार करने पर, इन समस्याओं का मूल निदान ढूँढ़ने कहीं बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। अज्ञान, दंभ, धर्माडंबर, मिथ्या प्रदर्शन, ऊँच-नीच भावना, रक्ताभिमान, रूढि-प्रेम, अंध-विश्वास, शोषणवृत्ति, स्थूल या सूक्ष्म हिंसा-वृत्ति, असंयम, श्रद्धहीनता, जीवन के छूँछे, या स्थूल मूल्यों में विश्वास, अबाध भोग व संग्रह की वृत्ति आदि! 'प्रेम पथिक', 'करुणालय', 'कंकाल', तिली', 'कामना', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'कामायनी' आदि कृतियों में प्रसादजी

जीवन की विडंबनाओं के मूलों के अन्वेषण की दिशा में गहराई से जाने का अधिक अवसर पा सके हैं। समस्याओं का विश्लेषण तभी सूक्ष्म व विशद हो सकता है जबकि 'निदान' भली-भाँति किया जा सके। उक्त रचनाओं में 'प्रसादजी' ने व्यक्ति और समाज की पीड़ाओं, विषमताओं और असंगतियों-विरोधाभासों के कारण का मनोनिवेशपूर्वक अन्वेषण किया है और उसके द्वारा उनके विस्तृत जीवनाध्ययन, सूक्ष्म निरीक्षण व उच्चकोटि के हार्दिक व मानवीय गुणों का परिचय मिलता है।

(ग) समस्याओं का विश्लेषण

विश्लेषण में समस्या के पुरजे अलग-थलग खोलकर रखने का प्रयास किया जाता है। पर इसकी प्रक्रिया दो बातों से शासित रहती है—(१) साहित्य की अथवा विधा की प्रकृति से, और (२) लेखक की व्यक्तिगत रूचि से। साहित्य की कलालाघव व व्यंजना की कला है, अत: उसमें विश्लेषण की प्रक्रिया भी उक्त गुणों से शासित होकर चलने के लिए बाध्य है—फिर भले ही विधा-भेद से (उदाहरणत: उपन्यास से कहानी में और कहानी से कविता या गीत में विश्लेषण का कम अवकाश मिलता है) कुछ अधिक स्वतंत्रता ले ली जाए। लेखक की रूचि भी महत्त्व की वस्तु है। कुछ लेखक अधिक विस्तार में विश्लेषण करते हैं और कुछ कम में। प्रेमचंद और प्रसाद में यह अंतर स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

'प्रसाद' ने समस्याओं के विश्लेषण में, विशेषत: उपन्यासों में, पर्याप्त रूचि दिखाई हे। नाटकों में भी पात्रों के जीवन-व्यापारों के माध्यम से विश्लेषण का स्वरूप प्रकट हुआ है। कहानियों, गीतों और कविताओं से लाघवपूर्वक ही यह कार्य किया गया है।

(घ) समस्याओं का समाधान

समस्या का तीसरा पक्ष 'समाधान' है। समाधान के संबंध में दो साहित्यिक दृष्टियाँ हैं—प्रथम तो यह कि लेखक को समस्या उठाकर, उसका विश्लेषण करके, उसका समाधान भी प्रस्तुत करना चाहिए, और द्वितीय यह कि साहित्यकार का कार्य, कला की पद्धति से, अधिक-से-अधिक समस्या के प्रस्तुतीकरण-मात्र का हो सकता है; प्रस्तुतीकरण इस ढंग या कला से कि समाधान का मूल रूप या दिशा उसके विश्लेषण के बीच से ही प्रकट होती दिखाई पड़े। कलाकार का कौशल इसी में निहित है। यदि अधिक मुखर-प्रकट या स्पष्ट भाव से लेखक अनुचित उत्साह से भरकर समाधान प्रस्तुत करने लगा तो उसके कलाकार-रूप के प्रच्छन्न हो जाने का पूरा-पूरा भय है।

'प्रसाद' ने जहाँ अनेक स्थलों पर कलाकारोचित तटस्थता धारण करके अपनी कोमल विधाओं में ध्वनि-शैली में ही समाधान को झलका दिया है, पर अनेक रचनाओं में वे पूर्ण निस्संग नहीं रह पाए हैं—हाँ, समाधान अवश्य ही पात्रों व स्थितियों के बीच से ही प्रकट हुआ है।

यह तो हुई समाधान प्रस्तुत करने की शैली की बात। अब अगर देखा जाए कि 'प्रसादजी' ने समस्याओं के जो भी समाधान प्रस्तुत किए है वे वस्तु दृष्टि से कैसे हैं। अनेक समाधान भारतीय शाश्वत जीवन-मूल्यों से ही प्रेरित हुए हैं। नारी की समस्याओं का तो वही आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया गया है—'पुरुष सूर्य है तो नारी चंद्र' (अजातशत्रु); 'नारी, तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत-नग पद-तल में। पीयूष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंद समतल में (कामायनी)। बात यह है कि 'प्रसाद' नारी के मर्म रूप का चिंतन उसी अध्यात्म की भूमिका पर ही कर पाते हैं, जो उन्होंने 'कामायनी' के 'निर्वेद सर्ग' में निर्मित की है। यथार्थवादी विचारक अपने ढंग से विचार कर सकते हैं, पर जिस विचार-बिंदु से प्रसादजी ने नारी के मूल स्वरूप को देखा है वह अत्यंत ही उदात्त, रोमांचक व पावनकारी रूप है, इसमें संदेह नहीं। नारी का यह स्वरूपांकन विश्व-साहित्य की एक अनूठी विधि समझी जाएगी।

'प्रसाद' में नारी पर यथार्थवादी दृष्टि से भी विचार किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी की मुक्ति का लेखक ने अत्यंत क्रांतिकारी कदम उठाया है—शास्त्र का विधान पलटकर, शास्त्र में परिवर्तन कराके ध्रुवस्वामिनी को क्लीव पति से मुक्ति दिलाई गई है। 'सालवती' कहानी में वेश्याओं के विवाह का एक आदर्श समाधान कवि ने प्रस्तुत किया है, पर वह कितना व्यवहार्य है, नहीं कहा जा सकता। 'चूड़ी वाली' कहानी में समाधान यह है कि नारी घर बसाकर सुखपूर्वक गृहस्थ-धर्म का पालन करने में ही सुख मानती है, अत: दिग्भ्रमित नारियों को समाज मर्यादित जीवन बिताने के लिए घर की और आने दे। 'मधुआ' कहानी में व्यसन-त्याग की समस्या का यह समाधान प्रस्तुत किया गया है कि मानवीय स्नेह-संबंधों की प्रेरणा से मनुष्य स्वयं ही सत्पथ पर आ सकता है, नियम-कानून से कुछ नहीं हो सकता। 'कामना' में अपनी मूल प्रकृति के केंद्र से च्युत विलासी व भोग-लिप्सु मानव को पुन: केंद्र में लगाने का एकमात्र उपाय है सद्विवेक की जागृति तथा प्रकृति की ओर पुनरावर्तन। 'कामायनी' में अशांत मानव को सुखी और स्वस्थ बनाने का मार्ग बताया गया है—समरसता की साधना—इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामंजस्य द्वारा अखंड और सधन आनंद की प्राप्ति। इसी प्रकार 'कंकाल' और 'तितली' में संगठन, शिक्षा, सहयोग, निष्काम कर्म, मानवता के उच्च गुणों का अभ्यास आदि बातें सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के उपाय के रूप में प्रस्तुत की गई हैं।

'प्रसादजी' के ये समाधान उच्चकोटि की सदाशयता व व्यक्ति व समाज के स्वस्थ संबंधों की रक्षा व निर्वाह की दृष्टि से प्रस्तुत किए गए है, किंतु अनेक विद्वानों की 'प्रसादजी' के समाधान अति-आदर्शवादी, भावुकतापूर्ण व अव्यावहारिक व अपर्याप्त भी जान पड़े हैं। उदाहरणार्थ, कविवर पंत को 'जिस अभेद चैतन्य के लोक में पहुँचकर विश्व जीवन के सुख-दु:खमय संघर्ष से मुक्त होने का संदेश 'कामायनी' में मिलता है, वह कवि को पर्याप्त नहीं लगता। उनकी दृष्टि में मनु को अधिमानस भूमि पर कैलास शिखर के सान्निध्य में छोड़कर संतोष ले लेने में विश्वजीवन की समस्याओं का समाधान नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि 'समस्याओं' का यह निदान तो चिर-पुरातन, पिष्टपेषित निदान है। इसी प्रकार नारी, प्रकृति की ओर, प्रत्यावर्तन तथा ऐसी ही अन्य अनेक समस्याओं पर 'प्रसाद' के समाधान अनेक विद्वानों को विशेषत: मान्य नहीं।

साअ

वसंतराव नाईक शासकीय कला
व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर
दूरभाष : ७३८७४१८७१८
renubaliindia@rediffmail.com

सुरक्षा कवच

● अर्चना दुबे

'अरे छवि! इन्हें क्यों ले आई?' गाड़ी में समान रखते हुए प्रभात बाबू ने अपनी छोटी बेटी छवि के हाथ में नन्हे लड्डू गोपाल की मूर्ति को देखकर पूछा। 'पापा, हमारे साथ भैया भी तो चलेंगे न, क्या वे घर में अकेले रहेंगे?' छवि ने बड़े ही सहजता से कहा।

प्रभात बाबू सरकारी दफ्तर में शाखा प्रबंधक के रूप में कार्यरत थे। उस समय प्रभात बाबू की पोस्टिंग चित्रकूट के करवी जिले में हुई थी। पत्नी और बच्चों की बहुत समय से इच्छा थी मैहर की शारदा देवी के दर्शन की। प्रभात बाबू बहुत ही धार्मिक और ईश्वर के प्रति आस्थावान व्यक्ति थे, साथ ही सहृदय और दयालु भी। उनके सभी परिचित और साथ काम करनेवाले उनके शील-स्वभाव और उदार हृदय की अकसर प्रशंसा किया करते। उनके परिवार में भी हमेशा धर्म-कर्म का वातावरण रहता था। आज छुट्टी का दिन था और कई दिन बाद दफ्तर के काम से थोड़ी फुरसत मिली थी, इसलिए प्रभात बाबू अपने परिवार के साथ सुबह ही अपनी कार से सतना, मैहर देवी के दर्शन के लिए निकलने की तैयारी करने लगे।

प्रभात बाबू की दो बेटियाँ थीं। बड़ी बेटी प्रज्ञा उस समय पच्चीस वर्ष की थी, जो एम.एस.डब्ल्यू. की पढ़ाई कर रही थी तथा छोटी बेटी छवि दसवीं कक्षा में पढ़ रही थी। प्रभात बाबू के कोई बेटा नहीं था। छुटपन में जब उनकी बेटियाँ एक बार रक्षाबंधन के दिन उनसे पूछती हैं कि 'पापा, हम किसे राखी बाँधें, हमारा तो कोई भाई नहीं है, हमको भी भाई चाहिए।' बेटियों की मासूम सी जिद्द को देखकर प्रभात बाबू उसी शाम लड्डू गोपालजी की छोटी सी मूर्ति ले आए और अपनी बेटियों को बुलाकर उनके हाथ में वह मूर्ति देते हुए बोले, 'यह लो अपना भइया, इन्हीं को राखी बाँधा करो, अब से यही तुम्हारे भाई हैं।' यह बात उनकी दोनों बेटियों के भोले मन को छू गई और तब से लड्डू गोपाल उनके भइया बन गए। वे दोनों जहाँ जाती, भइया को साथ जरूर लेकर चलतीं। उस दिन जब देवी के दर्शन के लिए निकलने लगे तो छवि ने धीरे से अपने भइया को साथ ले लिया।

प्रभात बाबू ने बेटी को मुसकराते हुए देखकर उसके हाथ से लड्डू गोपाल को लेकर कार में गियर हैंडल के पास खाली जगह पर सामने विराजमान कर लिया। उस दिन उस धार्मिक यात्रा में वे अपनी धर्मपत्नी उषा दोनों बेटियों छवि और प्रज्ञा और अपने साढ़ू के पाँच वर्ष के बेटे बबलू को भी साथ ले जा रहे थे। छुट्टी के माहौल में और इतने दिन के बाद मनचाही यात्रा पर निकलने की वजह से सब ही बहुत खुश थे और पूरी तरह से सब मस्ती से भरे हुए थे।

प्रभात बाबू भी हँसी-मजाक करते हुए कभी तेज कभी धीमी गाड़ी चलाए जा रहे थे। गाड़ी मझगवाँ की घाटी से होकर गुजर रही थी। यह घाटीवाला रास्ता बहुत ही खतरनाक रास्ता था। यहाँ यदा-कदा दुर्घटना होती ही रहती थी। चूँकि पहाड़ी रास्ता था तभी गाड़ी चलाते हुए अचानक एक अंधामोड़ (डेडटर्न) आया। गाड़ी मोड़ते ही सामने से तेज रफ्तार से एक मोटर साइकिल आ रही थी, जो गाड़ी से टकराने ही वाली थी। यह देखते ही प्रभात बाबू ने बचने के लिए सीधे हाथ की तरफ गाड़ी को टर्न दिया और दुबारा से जब सड़क पर गाड़ी वापस लाने लगे तो गाड़ी सड़क पर न आकर पहाड़ी से नीचे की ओर जाने लगी और पलट गई।

यह सब इतने जल्दी हुआ कि कुछ समझ में नहीं आया और गाड़ी उलटते-पलटते पहाड़ी से लुढ़कते हुए नीचे जाने लगी। प्रभात बाबू का ईश्वर में दृढ़ विश्वास था और वह जो कुछ भी हो रहा ईश्वर की इच्छा से हो रहा की मान्यता रखते थे। अत: ऐसी विकट स्थिति में भी उनकी आस्था डगमगाई नहीं। जब प्रभात बाबू ने यह महसूस किया कि वह गाड़ी पर अपना काबू खो चुके हैं तो उन्होंने स्टीयरिंग कस के पकड़ ली, अपनी आँख बंद कर लीं और अपने ईष्ट देव कृष्ण का नाम मन-ही-मन जपने लगे। गाड़ी अपनी रफ्तार से कभी किसी पत्थर पर तो कभी किसी झाड़ी से टकराती हुई पलटती हुई लुढ़कती रही, कभी शीशे टूटने की आवाज आती, कभी कहीं टकराने की, पर उन्होंने स्टियरिंक को पकड़े रखा और अपनी आँख बंद ही किए रहे। इस दौरान प्रभात बाबू ने महसूस किया कि एक आभामंडल उनके चारों ओर बना हुआ है, जैसे कोई सुरक्षा का घेरा हो। उस पुलिया के नीचे एक नदी थी, नदी के पास के एक बड़े पेड़ से गाड़ी टकराकर बाईं ओर पलट गई। उन्होंने एक भयंकर दुर्घटना की कल्पना के साथ धीरे से अपनी आँखें खोलीं कि सबकुछ खत्म हो चुका होगा। उन्होंने देखा तो कार के सामने का काँच आधा टूटा हुआ है और हवा में झूल रहा है, फिर उन्होंने पहले धीरे से अपने हाथ-पैर हिलाकर देखे तो उन्हें सबकुछ ठीक लगा। हाथ में दो-चार काँच के छोटे टुकड़े मात्र चुभे हुए थे और सिर से हलका खून निकल रहा था, उसके अलावा कहीं कोई चोट नहीं। फिर उन्होंने अपने साथ की सीट पर, जहाँ उनकी बड़ी बेटी प्रज्ञा बैठी थी, उसे देखा तो वह वहाँ मौजूद नहीं थी। प्रभात बाबू को अंदाजा

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख एवं कविताएँ प्रकाशित। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध-लेख प्रस्तुत और प्रकाशित। संप्रति केलकर एजुकेशन ट्रस्ट वी. जी. वझे डिग्री कॉलेज में सहायक प्राध्यापिका व हिंदी विभागाध्यक्ष।

लग गया कि सामने से टूटे हुए शीशे से वह गाड़ी से गिर गई होगी। फिर पलटकर पीछे की सीट पर देखें तो बबलू और उनकी पत्नी उषा और छवि वहाँ नहीं थे। तभी पीछे की सीट के नीचे से आवाज आई, 'पापा, मैं यहाँ हूँ।' प्रभात बाबू ने देखा, उनकी छोटी बेटी छवि सीट के नीचे से निकलते हुए बोल रही है। उन्होंने बेटी से पूछा, 'बेटा, तुम ठीक हो? तुम्हें कहीं चोट तो नहीं आई है?' छवि ने कहाँ, 'नहीं पापा, मैं ठीक हूँ, मम्मी, प्रज्ञा दीदी और बबलू कहाँ है?' प्रभात बाबू ने कहाँ, 'बेटा शायद वे गाड़ी से गिर गए हैं, रुको, पहले मुझे सामने से बाहर निकलने दो और फिर तुम भी धीरे से यहीं से बाहर आ जाओ।' कहकर प्रभात बाबू सामने के टूटे हुए शीशे से उसी ओर जिस ओर कार पलटी हुई थी, निकलने की कोशिश करने लगते हैं। कार से उतरकर वो छवि को भी बाहर निकालते हैं। फिर चारों ओर नजर घुमाते हैं तो उन्हें वहाँ उनकी बेटी प्रज्ञा और बबलू नहीं दिखाई देते। उनकी पत्नी उन्हें गाड़ी के नीचे आधा अंदर दबी हुई दिखाई देती हैं। वे गाड़ी को सरकाकर उन्हें निकालने की कोशिश करते हैं, पर कुछ होता नहीं है, तब वे यहाँ-वहाँ नजर दौड़ाते हैं और ऊपर देखते हैं तो वहाँ बहुत सी भीड़ इकट्ठा होकर इस दुर्घटना को देख रही होती है। प्रभात बाबू मदद के लिए उन लोगों को हाथ दिखाते हैं तो उस भीड़ में से कुछ लोग उनकी तरफ आने लगते हैं। तभी उन्हें उनकी बड़ी बेटी प्रज्ञा सामने से आती हुई दिखती है। उसके साथ एक तीस-बत्तीस की उम्र का एक युवक भी साथ होता है। बेटी पास आती है प्रभात बाबू घबराकर उससे पूछते हैं, 'बेटी, तुम कहाँ थी? तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी?' प्रज्ञा ने कहाँ, 'नहीं पिताजी, मैं कार के सामने की काँच से टकराकर बाहर गिर गई थी, शायद बेहोश हो गई थी, होश आया तो हाथ की उँगली से खून बह रहा था, बहुत दर्द हो रहा था, तभी ये भइया कहीं से आए, उन्होंने मेरे इस घाव पर मिट्टी लगाई तो खून बहना बंद हो गया। बस और तो कहीं चोट नहीं लगी है, सिर्फ उँगली में दर्द हो रहा है।' तभी प्रज्ञा के साथ आए उस युवक ने प्रज्ञा को लड्डू गोपाल की मूर्ति देते हुए कहा, 'यह लीजिए आपके लड्डू गोपाल, कार का एक्सीडेंट देखकर मैं नीचे आने लगा तो वहाँ झाड़ियों में मुझे ये पड़े मिले तो मैंने उठा लिया, मुझे लगा शायद आप ही के हों।' ऐसा कहकर वह युवक प्रभात बाबू के साथ उनकी पत्नी को कार के नीचे से निकालने में उनकी सहायता करने लगा, उसी समय और भी चार-पाँच व्यक्ति सहायता के लिए आ पहुँचे। सबने मिलकर कार को उठाया। गाड़ी उठाते ही सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उषाजी और गाड़ी के बीच में एक पत्थर है, जिससे गाड़ी और उषाजी के बीच में आधे बित्ते का अंतर बना हुआ है। गाड़ी का पूरा भार उस पत्थर पर था, न कि उषाजी पर। प्रभात बाबू ने उषाजी को बाहर की ओर खींचा तो उनके कराहने की आवाज आई। जिससे उन्हें यह अंदाजा लग गया कि उनकी पत्नी अभी जीवित है। थोड़ी ही देर में उनकी पत्नी भी होश में आ गई, परंतु उनका एक हाथ उठ नहीं रहा था, कंधे में बहुत दर्द हो रहा था।

उसी समय सतना की ओर से आती एक खाली कार आकर वहाँ रुकी और ड्राइवर ने देखा कि यहाँ एक्सीडेंट हुआ है तो वह नीचे आया और प्रभात बाबू से बोला, 'मैं सवारी लेकर सतना गया था, अब वापस लौट रहा था, मैंने देखा कि यहाँ कोई दुर्घटना हुई है, इसलिए गाड़ी रोककर नीचे आया। मेरी गाड़ी खाली है, अत: आप जहाँ चलना चाहें, मैं अपनी गाड़ी से ले चलूँगा। आप सब मेरी गाड़ी में चलिए, जिस भी अस्पताल जाना है, चित्रकूट की ओर या सतना की ओर, आप जहाँ कहें मैं ले चलता हूँ।' प्रभात बाबू ने उसे धन्यवाद कहा, मन-ही-मन ईश्वर को भी और तुरंत सबको लेकर गाड़ी की ओर बढ़े, लेकिन बबलू अब तक उन्हें नहीं मिला था। वह सब से पूछ रहे थे कि एक पाँच साल के बच्चे को देखा क्या किसी ने। ऊपर सड़क के पास पहुँचते ही उन्होंने देखा, भीड़ के साथ किनारे पर बबलू भी सहमा हुआ अपनी कमर पकड़े बैठा हुआ है। बबलू को देखते ही पूरे परिवार की आँखों में खुशी छा गई है। छवि ने भागकर बबलू को गोद में उठा लिया। बबलू और परिवार के सभी सदस्यों को सही सलामत पाकर प्रभात बाबू की घबराहट कम हो गई है। फिर उस व्यक्ति के कार में बैठकर वे सब सतना के अस्पताल गए। अस्पताल के डॉक्टरों द्वारा आवश्यकता के अनुसार सबका उपचार किया गया। केवल प्रज्ञा के उँगली की नस कट जाने की वजह से उसके हाथ की छोटी सी सर्जरी की गई और उषाजी के कंधे की हड्डी टूट जाने के कारण उन्हें पास के बड़े अस्पताल ले जाकर हड्डी का ऑपरेशन करवाया गया। वे भी जल्दी ही ठीक हो गईं।

इस बीच प्रभात बाबू की कार भी ठीक होकर आ गई। इन सबमें प्रभात बाबू के मित्र और उनके कार्यालय की ओर से उन्हें बहुत सहयोग मिला। वे सपरिवार सुरक्षित वहाँ से अपने घर लौट आए। मुख्य सड़क पर आ जाने पर उन्हें सड़क की दूसरी तरफ कुछ साधुओं का टोली नजर आती है, जो पैदल यात्रा कर रहे थे। साधुओं की टोली ताल और ढोलक बजाते हुए 'हरे कृष्णा, हरे राम-गोविंदा' का कीर्तन किए जा रही थी। उन साधुओं के झुंड और 'हरे कृष्णा, हरे राम गोविंदा' की धुन सुनकर प्रभात बाबू को बार-बार अपने चारों ओर बने उस सुरक्षा कवच की ओर ध्यान जाता तो कभी उस कार ड्राइवर की याद आती तो कभी उस युवक की, जो उनकी बेटी को साथ लिए आता है। वे सोचते हैं कि इस भयानक एक्सीडेंट में गाड़ी से बाहर झाड़ियों के बीच गिरे उन छोटे से लड्डू गोपाल पर उस युवक की नजर कैसे पड़ी होगी तथा उसके भीतर इस भाव का प्राकट्य कैसे हुआ होगा कि यह मूर्ति इस गाड़ी में बैठे लोगों की होगी।

प्रभात बाबू थोड़ी देर के लिए गाड़ी एक तरफ रोक लेते हैं और आँख बंद करके अपने परिवार के इतनी बड़ी दुर्घटना, जिससे किसी के भी जीवित बचने की कोई उम्मीद न होने पर भी सबके सुरक्षित बच जाने के लिए उस युवक को, ड्राइवर को और ईश्वर को मन ही मन बार-बार धन्यवाद देते हैं। उन्हें मन में यह अनुभूति होती है कि हो न हो ईश्वर ही उस युवक के रूप में हमारी सहायता के लिए आए थे। यह सोचकर ही उनका पूरा शरीर रोमांचित हो उठता है। पुन: ईश्वर को कोटिश: धन्यवाद देकर मुसकराते हुए, साथ ही उन साधुओं के स्वर-में-स्वर मिलाते हुए 'हरे कृष्णा, हरे राम-गोविंदा' गाते हुए अपनी कार से घर की ओर बढ़ गए।

सा.अ.
०५ भूषण आनंद,
पंचमुखी मारुति को.ऑ. हा. लि. सोसाइटी,
बेतुरकर पाड़ा, कल्याण पश्चिम-४२१३०१ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ०९७०२५५०४०७

स्वस्थ जीवन के लिए उपयोगी बातें

● रमेश चंद्र बादल

जीवन को स्वस्थ और सुखी बनाने के लिए अनेक उपयोगी बातें प्रचलित हैं तथा प्रात:काल सूर्योदय के पूर्व जागरण, ईश प्रार्थना, परिवार के बुजुर्गों को प्रणाम, ऊषा पान, भ्रमण-सूर्य किरणों का सेवन, व्यायाम आदि; परंतु आज हमारी दिनचर्या बिगड़ने के कारण उन सभी उपयोगी बातों को जानते हुए भी हम मानने में असमर्थ रहते हैं। इन उपयोगी बातों को आलस्यवश अथवा असमानता के कारण न मानकर हम अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लेते हैं, और अनेक रोगों के मरीज बन जाते हैं और इस प्रकार जीवन के महत्त्वपूर्ण सुख से वंचति रहते हैं। जीवन के सात सुखों में पहला सुख 'नीरोगी काया' को बताया गया है और यह सत्य भी है। रोगी व्यक्ति भले ही वह करोड़ों की धन राशि का मालिक हो, परंतु वह सुखी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह तो अपनी बीमारी के कारण चिकित्सक में ही चिंतित रहता है। वह अपने उत्तरदायित्वों/कार्यों को ही पूरा कर पाने में असमर्थ रहता है।

संस्कृत में एक सूक्ति है—"स्वास्थ्य सर्वार्थ साधनम्", अर्थात् स्वास्थ्य से ही सारे कार्य सिद्ध होते हैं। स्वास्थ्य ही सर्वोपरि सुख है। इस लेख में स्वास्थ्य संबंधी उपयोगी बातों पर चर्चा की गई है। स्वस्थ और सुखी जीवन जीने के लिए सर्वप्रथम प्रात:काल का जागरण (सूर्योदय के पूर्व) आवश्यक होता है।

प्रात: जागरण का महत्त्व—आयुर्वेदशास्त्र में यह बताया गया है कि ब्राह्ममुहूर्त (अर्थात् सूर्योदय से ३ घंटे १/२ घंटे पूर्व तक) में उठने से वर्ण, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्वास्थ्य तथा आयु की प्राप्ति होती है, उसका शरीर कमल की तरह प्रफल्लित हो जाता है—

वर्ण कीर्तिं मतिं लक्ष्मीं स्वास्थ्य मायुश्च विन्दति।
ब्राह्मे मुहुर्ते सञ्जाग्रच्छियं वा पङ्कज यथा॥

धर्मशास्त्रों में भी कहा गया है कि 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत', अर्थात् सभी को ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाना चाहिए। इस समय वायु अत्यंत शीतल तथा मधुर होती है। यह समय ब्रह्म का चिंतन करने के लिए सर्वोत्तम है, इसीलिए इसे ब्राह्ममुहूर्त कहा जाता है। वैसे इस समय चंद्रकिरणों से अमृत का क्षरण होता है, इसलिए इस काल को अमृत वेला भी कहा जाता है।

सुपरिचित लेखक। दैनिक समाचार पत्र, मासिक पत्रिकाओं-कल्याण, जाह्नवी, रचना, अंतसमणि में लेखन। अखिल भारतीय भाषा सहित भोपाल द्वारा राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित।

प्रात:काल की महत्ता का उल्लेख करते हुए अमेरिका के सबसे बड़े अंग्रेजी लेखक एमर्सन के गुरु थोरो ने स्पष्ट लिखा है—"The Vedas says—All intelligence awake with the morning." अर्थात् वेद कहते हैं कि समस्त बुद्धियों प्रात:काल के साथ ही जाग्रत् होती हैं। कहा गया है—ब्राह्ममुहूर्त अमृतवेला है। उस समय उठकर जो ध्यान करते हैं, उन्हें अमृत मिलता है और जो सोए रहते हैं, वे उससे वंचित हो जाते हैं—"जो जागे सो पावे, जो सोवे सो खोवे।"

वेद का वचन है—'प्राता रत्नं प्रातरित्वादधाति', अर्थात् प्रात: उठने वाला रत्नों को धारण करता है। लीलाधारी भगवान् श्रीकृष्णजी स्वयं ब्राह्ममुहूर्त में उठकर ध्यान करते थे, जिसका वर्णन 'श्रीमद्भगवद् गीता' में हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे शरीर में अनेक अंत:स्रावी ग्रंथियाँ हैं, उनमें सबसे मुख्य है पीनियल ग्रंथि, जो पिट्यूटरी से भी महत्त्वपूर्ण है। उक्त ग्रंथि से ब्राह्ममुहूर्त में मेलाटोनिन रसायन बनता है, जो मानसिक शांति एवं प्रसन्नता बढ़ाने वाला होता है। अतएव ब्राह्ममुहूर्त में उठना भारतीय संस्कार परंपरा का अंङ्ग है।

एक नीतिकार का कथन है—"ब्राह्मेमुहूर्ते उतिष्ठे त्स्वस्थो रक्षार्थ मायुष:," संक्षेप में अर्थ है कि प्रात: उठने से स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि होती है। इस समय प्रकृति मुक्तहस्त से स्वास्थ्य, प्रसन्नता, मेधा, बुद्धि एवं आत्मिक अनुदान की वर्षा करती है।

अंग्रेजी में भी एक बहु प्रचलित लोकोक्ति है—

(Early to bed & Early to rise makes a man Healthy Wealthy & Wise) अर्थात् जो जल्दी सोता है और जल्दी उठता है, वह स्वस्थ, संपन्न और मेधावी होता है।

अथर्व—"उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां दिषतांवर्च आददे" सूर्योदय तक भी जो नहीं जागते उनका तेज नष्ट हो जाता है। जल्दी सोना और जल्दी उठना शरीर और मन की स्वस्थता को बढ़ाता है।

शुक्राचार्य—सूर्योदय के पश्चात् तक सोते रहने वालों का तेज, बल, त्यागनेवाले उत्तम स्वास्थ्य एवं सुखी जीवन प्राप्त करते हैं।

स्वामी विवेकानंद—सूर्योदय से पूर्व उठने से शरीर स्वस्थ रहता है तथा बुद्धि का विकास होता है।

स्वेट मार्डेन—यदि आप चाहते हैं कि आपकी आयु अधिक हो, बुढ़ापा दूर रहे, शरीर पूर्ण स्वस्थ रहे तो प्रात:काल जल्दी उठा कीजिए।

सिक्खों के धर्मग्रंथों में आया है, "अमृतवेला सचनाऊ", अर्थात् प्रात:काल जल्दी न उठने से बुद्धि मंद पड़ जाती है। मेधा नहीं बढ़ती है और स्वास्थ्य गिर जाता है।

देववाणी में कहा गया है—"सूर्योदय चास्तमिते श्यानं-विमुञ्चति श्रीयदि चक्रपाणि", जो सूर्योदय और अस्त के समय सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहाँ तक कि विष्णु भगवान् ही क्यों न हों, उनको भी लक्ष्मी छोड़ देती है।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के पिता ने उन्हें जल्दी जागने के लिए प्रेरित किया उगते सूर्य को देखना, ताजी हवा का अनुभव करना, इनसे नया सीखने को मिलता है। इस समय अध्ययन करना, नई भाषा सीखना आसान होता है। अमेरिका के मिशिगन में अल्बियन कॉलेज के शोध के अनुसार सुबह के समय लोग अधिक रचनात्मक होते हैं। शारीरिक अभ्यास के लिए सुबह का समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। योग और ध्यान करने से मन काबू में रहेगा। तनाव भी नहीं रहेगा। सुबह का प्रकाश बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह शरीर को जागने का संकेत देता है।

सुबह (प्रात:काल) का उपयोग करनेवाले कुछ प्रसिद्ध महानुभाव (आत्रप्रेन्योर्स) के उदाहरण—

मार्क जुकरबर्ग (फेसबुक सीईओ)—अगर रात भर काम नहीं किया तो सुबह ८ बजे उठते हैं। समय बचाने के लिए हर दिन एक ही टी शर्ट पहनकर ऑफिस जाते हैं।

जैक डॉसी (ट्विटर और स्कवेयर के को-फाउंडर)—सुबह ५:३० बजे उठकर मेडिडेट करते हैं। इसके बाद ६ मील दौड़ते हैं।

टोरी बर्च (फैशन डिजाइन और टोरी वर्च की सीईओ)—सुबह ५:४५ उठती हैं। काम आधारित इ-मेल चेक करती हैं।

इंदिरा नुई (चेयर वुमन, पेप्सीको)—सुबह ४ बजे उठकर तैयार होती हैं और ७ बजे तक ऑफिस पहुँच जाती हैं।

टाइम मैनेजमेंट एक्सपर्ट लारा वेंडरकम ने सुबह जल्दी उठते के फायदे के बारे में बताया है—

१. इच्छाशक्ति अधिक होगी। दिन की समस्याओं का सामना करने में इच्छाशक्ति कम हो जाती है।

२. सकरात्मक सोच बनेगी देर से उठने के कारण कई आवश्यक कार्य अधूरे रह जाते हैं। मूड खराब रहता है। प्रात: जल्दी उठने से सभी कार्य अच्छी तरह पूरे हो जाते हैं।

३. एक घंटा समय अधिक मिलेगा। इस समय का अधिक उपयोगकर सकेंगे। धीरे-धीरे अभ्यास करने से प्रात: जल्दी उठने की आदत बन जाएगी।

स्टारबक्स कॉफी की प्रेसीडेंट मिशेलगास सुबह ४:३० बजे उठती हैं, इसके बाद वह दौड़ने जाती हैं।

"द हेपीनेस प्रोजेक्ट" के प्रसिद्ध लेखक सुबह ६ बजे उठते हैं और काम करते हैं।

इस प्रकार प्रात:काल उठने से आवश्यक कार्यों को पूरा करना आसान हो जाता है। प्रात:काल का समय नया सीखने का सर्वश्रेष्ठ समय होता है।

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के पिता ने उन्हें जल्दी जागने के लिए प्रेरित किया उगते सूर्य को देखना, ताजी हवा का अनुभव करना, इनसे नया सीखने को मिलता है। इस समय अध्ययन करना, नई भाषा सीखना आसान होता है। अमेरिका के मिशिगन में अल्बियन कॉलेज के शोध के अनुसार सुबह के समय लोग अधिक रचनात्मक होते हैं। शारीरिक अभ्यास के लिए सुबह का समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। योग और ध्यान करने से मन काबू में रहेगा। तनाव भी नहीं रहेगा। सुबह का प्रकाश बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह शरीर को जागने का संकेत देता है।

'प्रात:जागरण-प्रभुस्मरण' के विषय में कवि 'हरिदास' की पंक्तियाँ—

शयन शीघ्र निशि में करें, जागें प्रात:काल।
ध्यान ईश्वर का करें, वे जन होय निहाल॥
सबसे उत्तमकाल है, जग में ब्राह्म-मुहूर्त।
स्वर्ण समय मत खोइए, करे चित्त स्फूर्त॥
प्रात समय ही बरसता, ईश्वर का वरदान।
दोनों हाथ समेटिए, धर का प्रभु का ध्यान॥

इस लेख का सारांश यही है कि जिसने प्रात:काल का जागरण सीख लिया, उसने वास्तव में जीवन जीने की कला को समझ लिया। विश्व के अधिकांश महापुरुष भी प्रात:काल जागकर अपनी दिनचर्या प्रारंभ कर देते हैं। हमारे धर्मशास्त्रों में भी प्रात: उठकर 'कर दर्शन', पृथ्वी माता, ईश्वर, प्रार्थना करने का उपदेश दिया गया है। हमें भी इन उपदेशों का पालन करना आवश्यक है। इस प्रकार हम अपना जीवन स्वस्थ और सुखी बना सकते हैं। हमेशा स्मरण रखें—"जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।"

साअ
ई-२/१४१, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-४६२०१६ (म.प्र.)

दो कविताएँ

अगर

मूल : **रुडयार्ड किपलिंग**

अनुवाद : **नूतन पांडेय**

अगर तुम तब भी संयमित रह सकते हो,
जब तुम्हारे चारों ओर सब अनियंत्रित हो रहे हों
और इसका इलजाम तुम्हारे सर मढ़ रहे हों,
अगर तुम तब भी खुद पर भरोसा बनाए रख सकते हो,
जब हर कोई तुम्हें शंकापूर्ण नजरों से देख रहा हो,
यहाँ तक कि तुम उनकी शंकापूर्ण नजरों से खुद को
अविचलित भी रख सकते हो
अगर तुम प्रतीक्षा कर सकते हो और
प्रतीक्षा करते थकते भी नहीं हो।
अगर तुम झूठ का सामना करते हुए भी
खुद झूठ से समझौता नहीं करते ।
अगर तुम लोगों की नजरों में घृणा का पात्र बनते हुए भी
घृणा को अपने जीवन में जगह नहीं देते।
और इन सबके बावजूद न तो तुम अच्छे दिखते हो
और न ही कोई बुद्धिमत्ता पूर्ण बात ही करते हो।
अगर तुम सपने देख तो सकते हो,
लेकिन खुद को उनका दास नहीं बनने देते।
अगर तुम सोच तो सकते हो,
लेकिन उस सोच को अपना ध्येय नहीं बनाते।
अगर तुम उत्साह और आपदा से मिल तो सकते हो,
लेकिन दोनों धूर्तों में भेद नहीं करते ।
अगर तुम अपने उस सच को सुनने का साहस रखते हो,
जो मक्कार लोगों द्वारा मूर्खों को बेवकूफ बनाने के लिए
तोड़-मरोड़कर पेश किया जा रहा हो,
या फिर देख सकते हो वह सब कुछ उजड़ते हुए,
जो तुमने अपनी जिंदगी को दिया हो,
और उसे झुककर क्षत विक्षत साधनों द्वारा
पुनः सृजित कर सकने का माद्दा रखते हो।
अगर तुम अपनी जीवन भर की कमाई का
गट्ठर बनाकर उसे चित्त-पट के खेल पर दाँव लगा सकते हो,

हिंदी और रूसी भाषा के विविध व्याकरणिक पक्षों के तुलनात्मक अध्ययन और हिंदी साहित्य संबंधी सौ से अधिक शोध-आलेख तथा कविताएँ देश-विदेश की विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय में सहायक निदेशक। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'विद्यापति कोकिल सर्जना' पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

और सब कुछ खोकर भी
पुनः शुरू कर सकते हो एक नई शुरुआत,
और अपनी पराजय की आह तक नहीं भरते,
अगर तुम अपने दिल, दिमाग और हिम्मत को
अपना साथ देने के लिए मजबूर कर सकते हो,
जबकि वे एक लंबे अरसे पहले तुम्हारा हाथ छोड़ चुके हो
और इस तरह तुम अनवरत
थाम सकने की क्षमता रखते हो सब कुछ,
जब तुम्हारे पास कुछ भी न हो
सिवाय उस अदम्य इच्छा के, जो कहती है उनसे बने रहो।
अगर तुम भीड़ से बहस कर सकते हो
और बचाए रख सकते हो अपनी अच्छाइयों को
या राजाओं के साथ टहलते हुए भी खुद को
जमीनी जड़ों से अलग नहीं करते,
अगर दोस्त और दुश्मन, इनमें से कोई भी
तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता,
अगर तुम्हारे लिए हर कोई
विशेष होते हुए भी कोई खास नहीं।
अगर तुम अक्षम्य एक मिनट के भीतर
लंबी दौड़ के लिए भर सकते हो कीमती साठ पल।
तो ये सारा आसमाँ तुम्हारा है और
इसमें समाए सूरज-चाँद-सितारे, सब तुम्हारे लिए हैं।
और इस तरह से मेरे बच्चे,
तुम इन सबसे बढ़कर एक सच्चे इनसान होगे

चुप ही रहना

मूल : **पाब्लो नेरूदा**

अनुवाद : **नूतन पांडेय**

अब हम बारह तक गिनेंगे
और जुबान पर ताला लगाए खड़े रहेंगे
एक बार के लिए पृथ्वी के सामने
नहीं बोलेंगे कोई भी भाषा
एक घड़ी के लिए हो जाएँगे मौन
अपनी भुजाओं को स्पंदनहीन करके
यह क्षण बड़ा अद्‌भुत होगा
न होगी कोई हड़बड़ी, न ही होगा कोई शोर
हम सब एक साथ होंगे
एक अजीब सी अजनबीयत से भरे
सर्द समंदर में मछुआरे नहीं करेंगे
ह्वेलों का शिकार
और न ही ताकेंगे अपने लहूलुहान हाथों को
नमक इकट्ठा करते लोग
वे जो सज्ज कर चुके हैं स्वयं को भयंकर युद्धों के लिए
वे युद्ध जो लड़े जाएँगे जहरीली गैसों के साथ,
आग उगलते बमों के साथ
और वह जीत जिसमें कोई जीवन नहीं बचेगा
जश्न के लिए शेष
वे भी अपने बंधुओं के साथ घूमेंगे
उजले कपड़े अपने ऊपर डालकर
बेफिक्र बेपरवाह
भ्रमित मत होना यह मानकर
कि मैं पूर्ण विश्रांति चाहता हूँ
मेरे लिए तो बस उस जीवन के ही मायने हैं
जिसमें मौत की खरीद-फरोख्त नहीं
यदि हम अपने भटकते
जीवन को लेकर एक मत नहीं हुए
यदि एक बार के लिए भी नहीं रुके बिना कुछ किए
तो बहुत संभव है कि एक गहरी नीरवता
छिन्न-भिन्न कर देगी हमारी उदासियों को
और हम दे रहे होंगे एक-दूसरे को
मौत की चेतावनियाँ,
बिना झाँके एक-दूसरे के दिलों में
शायद तब यह धरा हमें समझा सके
कि जब सबकुछ खत्म होता महसूस हो रहा होगा
तब जीवन प्रमाणित कर रहा होगा अपना अस्तित्व
अब मैं गिनूँगा बारह तक
और तुम मूक खड़े रहना
मेरे जाने तक…

वेस्ट ब्लॉक-७, आरके पुरम,
नई दिल्ली-११००२२
दूरभाष : ८९२९४०८९९९
pandeynutan91@gmail.com

हमारा पर्यावरण

हाइकु

● **प्रभात कुमार धवन**

बन रहे हैं
बहु मंजिले मकान
पेड़ निराश।

पेड़ समाप्त
पक्षी को ठौर नहीं
बैचैनी-प्यास।

वृक्ष कटते
बंजर, सूखा, बाढ़
कैसी सौगात।

नीम ने कहा
अरे मूर्ख भारत
सठिया गए।

बंजर भूमि
सजग हुए हम
चमन बना।

सिर्फ उदासी
मिल पाई तुझको
मुझे काट के।

आँगन नहीं
मेरा पतन हुआ
तुलसी हठी।

मुझे बचाओ
वृक्ष करे पुकार
आई आवाज।

सहेजे रखो
प्रकृति ने दिया
इतना कुछ।

तुम्हें कसम
यदि वृक्ष कटेंगे
गम ही गम।

लता पेड़ से
रखे जो संबंध
हम क्यों नहीं?

बस्ती के बीच
हरे भरे पेड़ थे
सभी सुखी थे।

मानव धर्म
ठीक रहे हमारा
पर्यावरण।

चैन की वंशी
वट वृक्ष के नीचे
यदि सँभले।

धर्मशाला घाट, शहीद भगत सिंह चौक,
पटना-८००००८ (बिहार)
दूरभाष : ९३३४५९५२६०
pkdhawan41889@gmail.com

घर का पता

• संजय कुमार सिंह

रामकिंकर बाबू ने पहला चक्कर लगाया। पॉर्क पार कर वे गांधी चौक पर पहुँचे। रामसुंदर की दुकान पर चाय पी। अखबार पढ़ा, उनके बुर्जुग समाज के कई मित्र जमा हो आए—हरबेसर सिंह, जनक झा एवं परमेश्वर दास। कोई नल-कूप विभाग से रिटायर, तो कोई मास्टरी से, तो कोई कलक्ट्रीएट से। सबके पास अपनी कहानी। जवानी की स्मृतियाँ और बुढ़ापे की मजबूरियाँ। कोई कमर दर्द से परेशान, तो कोई डॉयबिटीज से। गप-शप के बाद वे चले जाते हैं अपनी परेशानकुन कहानी की गठरी-पोटरी लिये। इस कठिन समय में बुढ़ापा सबसे बड़ा बोझ है। बाल-बच्चे घर से दूर। शहरी जीवन का यही झमेला, कोई मीरघाट तो कोई तीरघाट!

आज फिर रामकिंकर बाबू तिनकोनमा डिवाइडर के पास अटक गए। इस भिखमँगे से रोज उनकी यहीं मुलाकात होती है। कभी वह इधर से चलकर सब्जीपट्टी तक जाता है, फिर लौटकर बैठ जाता है। गरमी-ठंडी बरसा-झड़ी में भी उसी तरह खुद में उलझा हुआ। क्या एक दिन भी इस तरह बेघर-बार होकर वे रह सकते हैं? वे कल्पना मात्र से काँप जाते हैं। यह कैसे मान लिया जाए कि इस आदमी का घर-परिवार नहीं होगा? किसी माँ ने जन्म दिया ही होगा, पाल-पोसकर बड़ा किया होगा हो सकता है पत्नी और बीबी-बच्चे भी हों, फिर ऐसी दुर्दशा? वे आगे बढ़ गए।

लेकिन यह दृश्य उनकी स्मृति में देर तक घूमता है, सभ्यजन और सरकार के कैसे-कैसे दावे हैं, पर आदमी आज भी कीड़े-मकोड़े से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश हैं, कोई भी देखने वाला नहीं। उसके अपहृत आप्त-लोक के बारे में सोचकर उनकी बेचैनियाँ और बढ़ जाती हैं, क्या इस आदमी की पत्नी मर गई? बच्चों ने घर से भगा दिया? किसी ने सारी संपत्ति छीन ली? यह दिमागी गड़बड़ी से अपना ठिकाना भूल गया? परमात्मा ने किस अवज्ञा पर आत्म-निर्वासन और विस्थापन का ऐसा दंड दिया है इसे? इसके जैसे न जाने कितने बीमार, अपाहिज, भूखे, अधनंगे और फटेहाल लोग रपट रहे हैं दुर्भाग्य के पथ पर।

रामकिंकर बाबू को कोफ्त होती है नई दुनिया के पसार पर। दास बाबू का चेहरा अचानक कौंध जाता है। इस भिखमँगे के बारे में सोचते हुए उन अभागे लोगों का खयाल हो आता है, जिन्हें उनके बच्चे 'ओल्ड होम' में छोड़ आते हैं। दासजी के साथ जो हुआ, वे उससे सिहर जाते हैं। उनके बेटे-पोतोहू इंग्लैंड शिफ्ट होने से पहले उन्हें ओल्ड होम में छोड़ गए। दासजी के पास विरोध का कोई विकल्प नहीं था। पत्नी मर चुकी थी। वे चुपचाप चले गए, जैसे बैल को इस खूँटे से खोलकर दूसरे खूँटे

सुपरिचित लेखक। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, कविताएँ, आलेख व समीक्षाएँ प्रकाशित। संप्रति प्रिंसिपल, पूर्णिया कॉलेज पूर्णिया।

पर बाँध दिया जाता है। उन्होंने न दूध का हिसाब माँगा और न खून का मोल। पूछा तक नहीं कि इंग्लैंड जाने लायक किसने बनाया? पूछते भी तो क्या जवाब मिलता। आखिर 'ओल्ड होम' बना क्यों? सभ्य समाज का सभ्य एरेंजमेंट नहीं तो क्या है यह? उनका चेहरा विद्रूप हो उठता है!

इस मामले में दूसरे भी कहते हैं कि रामकिंकर बाबू सौभाग्यशाली हैं कि उनके साथ बेटे-पोतोहू और पोते-पोतियों का भरा-पूरा संसार है। सच तो यह है कि बेटा आज भी उन्हीं की कमाई पर निर्भर है। फास-फूस जो कमा ले। मगर बच्चे की स्कूल फीस से लेकर दूध-फल सब उन्हीं के पैसों पर। दो तल्ला मकान भी उन्हीं की कमाई से है। दो-दो बेटियों का विवाह भी किया। सब सुखी और सैट्ल। बड़ा दामाद बड़ौदा में तो छोटा दिल्ली में। सिर्फ चंदर लटक गया। खैर, वह भी स्टेशनरी की दुकान चला रहा। चंदर की माँ थी तो और व्यवस्थित था घर-परिवार। पर जब से बुढ़िया मरी है, उनका मन ही उकता रहता है। मन की बात कहें तो किससे? फिर भी बाल-बच्चों का मोह उन्हें घेरे रहता है।

मार्निंग वॉक से आकर उन्होंने हाथ-मुँह धोया। प्राणायाम किया। पोतोहू नाश्ता दे गई। नाश्ता कर वे टी.वी. देखने लगे। उन्हें याद आया, चंदर की जिद्द पर पी.एफ. से लोन लेकर टी.वी. खरीदा था, उन्होंने तब रामायण और महाभारत की धूम थी। अब मन भरमते रहता है। चारों तरफ हंगामा। टी.वी में भी वही भाँय-भाँय। घर से चंदर की माँ के जाने के बाद वैसा लगाव नहीं महसूस होता। अधिकार का वह भाव अब कहाँ, कोई आए तो पानी-चाय के लिए कहने में भी संकोच होता है। बुढ़िया इस मामले में बहुत उदार थी। कभी उसने अपस्थित नहीं होने दिया।

अब तो लोग आएँ, तो वे खुद कन्नी काटते हैं, लो केदार बाबू आ गए। केदार बाबू उनके परम मित्र! कितनी बार एक-दूसरे घर खाना खाया होगा उन्होंने।

वे उठकर बैठका में चले गए, "आइए, आइए!"

केदार बाबू कुरसी पर बैठते हुए बोले, "एक समाचार देखे किंकर

बाबू! एक घर में उसके बेटे ने अपनी छत से बूढ़ी माँ को धकेल दिया···।"

"कुछ भी हो सकता है, केदार बाबू!" उन्होंने परेशान होकर कहा, "हमारी दुनिया अब कहीं नहीं है, जिसे जहाँ से धकेलना है, धकेल सकते हैं···हम तो ऐसे ही मर चुके हैं। कौन सुनता है अब?" फिर उन्होंने पूछा, "चाय लेंगे?"

"छोड़िए!" उन्होंने कहा, "हमने कैसी संतानों को जन्म दिया?"

"अरे नहीं!" वे ऊँची आवाज में बोले, "किन्नू बेटा! मम्मी से कहो, दो कप चाय दे!" वह बाहर आया, फिर लौट गया।

"हाँ तो मैं कह रहा था, अब अपने यहाँ भी लोग बूढ़ों को बोझ समझते हैं, पहले वाला आदर-मान नहीं रहा, मगर आप इस मामले में ठीक हैं, चंदर सुशील है, मेरे बच्चे तो नालायक निकले। मेरी पेंशन नहीं होती, तो मैं भी सड़क पर होता।"

"अरे किन्नू चाय!" उन्होंने पोतोहू को याद दिलाया।

"दूध फट गया!" किन्नू ने आकर कहा।

"तो नीबू की बनवाओ!"

"नीबू भी नहीं है···" अंदर से आवाज आई।

उनका मन कसैला हो गया, सवाल संतानों का नहीं, इस खुदगर्ज समय का है, जिसने इन बच्चों से पीढ़ियों का संस्कार छीन लिया। इन्हें चाय बनाना भी भारी लगता है।

केदार बाबू ने उन्हें सहज किया, "गुमटी पर हरि बाबू मिले, अभी तुरंत चाय बनी हुई है, वे कह रहे थे, दासजी से मिलने जाएँगे। मैं भी जाऊँगा···आप भी चलेंगे?"

"जरूर!" उन्होंने कहा, "हम लोगों को अपना भविष्य देखना ही चाहिए। दास बाबू के साथ यह हो सकता है, तो किसके साथ नहीं। बेचारा ट्यूशन करके बेटे को ऊँचे मुकाम पर पहुँचाया और वह अपनी बीबी के साख फुर्र हो गया···।"

केदार बाबू का मन गीला हो गया।

घर में एक मोट नीबू देखकर चंदर चौंका, "इतना नीबू काहे लाए बाबूजी? किसी ने दिया क्या?"

"कल केदार बाबू आए थे, चाय के लिए न दूध था और न नीबू!" क्रुद्ध होकर कहा उन्होंने, "तुम्हें दुकान से फुरसत नहीं रहती। सोचा, ले आऊँ, फ्रीज में रखवा दूँ।"

"दूध तो लाया था मैं!" वह अकबकाया।

"फट गया!" उन्होंने चुभती आवाज में कहा, "नीबू नहीं फटेगा।"

चंदर ने शीला को डाँटा, "तुम किन्नू से दूध मँगवा लेती। बाबूजी बूढ़े हो गए हैं। बूढ़ों को ठेस लगती है। वे शुरू से इमोशनल रहे हैं, जरा खयाल रखो!"

शीला का मुँह लटक गया।

रामकिंकर बाबू द्वंद्व में थे। उन्होंने चंदर से रात में पूछा, "सब दास बाबू को देखने जाएँगे। मैं भी जाना चाहता हूँ।"

"तो जाइए न!" वह बोला।

"सोचता हूँ, छोटा सा गिफ्ट ले लूँ?"

"ले लीजिएगा!"

"दास बाबू के साथ बुरा हुआ।"

"सचमुच!"

"यह पूरी दुनिया का संकट है, नई पीढ़ी के पास इन जिम्मेवारियों को ढोने का समय नहीं है, भारतीयता का क्षरण आधुनिकता के कारण हो रहा है।" उन्होंने संजीदगी से कहा, "पर इतनी खुदगर्जी भी क्या, आदमी का पानी गिर जाए।"

चंदर को लगा, बाबूजी गुस्से में हैं। वह चुप लगा गया।

दास बाबू अपने से नाराज थे कि खुश, पता नहीं चला।

उन्होंने कहा, "अब यही हमारी दुनिया है, मैंने खुद को समझा लिया है···कोई मलाल नहीं है अब मुझे।"

"अगर बच्चे वापस आ जाएँ तो?" रामकिंकर बाबू ने पूछा।

"खुशी होगी।"

"लौटेंगे?"

"नहीं!"

"क्यों?"

वे गुमा गए। हर दर्द कहा भी तो नहीं जा सकता।

केदार बाबू ने घूमकर और बुजुर्गों का हाल चाल लिया। एक सत्तर साल की बुढ़िया ने हँसकर कहा, "जिसे पेट में रखा, गोद में पाला और बड़ा किया, वही जब बेगाने हो गए, तो अब क्या मोल रहा!"

"तो आप खुश नहीं हैं?"

"यह किसने कहा?" बुढ़िया ने कहा, "एक ही कहानी है सब की···काश! हमारे बच्चे समझते कि कल कोई उन्हें घर-बदर करेगा, तो कैसा लगेगा? वैसे हम यहाँ ठीक हैं। एक-दूसरे से हिले-मिले हुए···अब उन्हें याद करने की बजाय हम आपस में हँसी-मजाक कर लेते हैं, आखिर हम बूढ़ों का भी तो जीवन है।"

"आप अपने बच्चों को क्या कहना चाहेंगी?"

"कुछ नहीं।" उसने साड़ी के कोर से आँखें पोंछ लीं। चेहरे पर उदासी पसर आई।

केदार बाबू भावुक हो आए। हरि बाबू ने सिर झुका लिया।

रामकिंकर बाबू फिर उसी रास्ते से लौट रहे थे। डिवाइडर के पास वही भिखमंगा कभी इस मोड़, तो कभी उस मोड़ तक कुछ ढूँढ़ रहा था। वे कुछ पल के लिए ठिठक गए, फिर इधर-उधर देखकर आगे बढ़े और पूछा, "क्या खोज रहे हो तुम?"

भिखमँगे ने बदहवास आँखों से देखा और कहा, "घर का पता, क्या तुम बता सकते हो?"

"नहीं!" वे अकबकाए।

"तो फिर जाओ!"

रामकिंकर बाबू आगे बढ़ गए। पहली बार वे दूसरी गली में मुड़ गए, फिर तीसरी में भटक गए, फिर वापस अपनी गली में आए, तब उनकी साँस में साँस आई।

प्रिंसिपल, पूर्णिया कॉलेज, पूर्णिया-८५४३०१ (बिहार)
दूरभाष : ९४३२८६७२८३

बरसते पानी में

• राजेंद्र ओझा

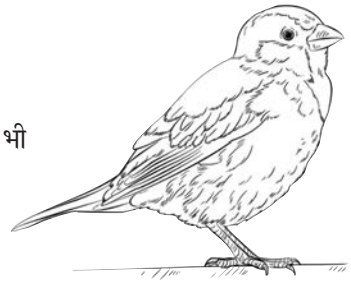

कवि एवं लघु कथाकार। इनकी कई कविता एवं लघुकथाएँ स्थानीय समाचार-पत्रों तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। रंगकर्म से गहरा रिश्ता, रायपुर से शिमला तक विभिन्न शहरों में नाट्य मंचन।

गौरैया

यह होता रहा है
बरसों से
हो सकता है हमारे जन्म के भी
बहुत पहले से
छत या घर के आँगन में
बिखेर दिए जाते थे
चावल के दाने
या पका भात
और
गौरैया का झुंड टूट पड़ता था,
याद होगा आपको तो
लड़ते भी देखा होगा उन्हें
चोंच में चोंच मिलाए
लड़ते-लड़ते
जमीन पर गिरते भी।

दाने या भात
डाले तो आज भी जाते हैं
नहीं दिखती एक भी गौरैया
झुंड में तो
सपनों से भी बाहर हो गई है वो।

सुनते हैं
उसे लुप्तप्राय प्रजाति में डाल दिया गया है
तो क्या
अब केवल चिड़ियाघर में ही दिखेगी
गौरैया।

साइकिल पर अब भी

वह अब भी आता है—
पुराने हो चुके अखबार
टूटे-फूटे प्लास्टिक के डिब्बे, खिलौने
ऐसा सब कुछ
जो अब कचरे में तब्दील
खरीदता है वह।

कितना अजीब लेकिन
हम मोल-भाव करते उस कचरे का भी
हम कभी सहमत नहीं होते
उसके बताए दाम पर।

वह फिर भी
रहता हँसता
घूमता
कड़ी धूप में
बढ़ती ठंड में
बरसते पानी में
थिगड़ा लगे बोरे में
रद्दी भरता।

वह अब भी आता
अपनी उसी साइकिल पर
खरीदते वक्त जो पुरानी
अब और भी पुरानी
जर्जर भी
उसे लेकिन इसी का आसरा
जैसे झुर्रियाँ उभर आई हों चेहरे पर
जैसे टूट चुकी हो कमर की ताकत
फिर भी बचे शरीर में
बचा है हौसला।

साइकिल
इसे ही ढोती
थकती
तब टिक जाती किसी भी दीवार पर
पैर अब ताकतहीन
मुश्किल
खुद को सम्हालना भी।

जर्जर साइकिल ही नहीं
उसका जीवन तक
फिर भी
अभी ये अंत नहीं
आगे भी राह है
बस धीरे-धीरे
धीमे-धीमे।

सा
अ

पहाड़ी तालाब के सामने, बंजारी मंदिर के पास,
वामनराव लाखे वार्ड (६६)
कुशालपुर, रायपुर-४९२००१ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९५७५४६७७३३
ozarajendra30@gmail.com

समकालीन हिंदी कहानी में पर्यावरणीय संवेदना के स्वर

● चंद्रशेखर यादव

साहित्य न सिर्फ समाज का दर्पण है अपितु समाज-निर्माण की प्रक्रिया में इसकी अहम भूमिका है, इसलिए समय के साथ समाज और साहित्य दोनों की समझ में परिवर्तन होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। साहित्य का दायित्व निर्धारण करते हुए माना जाता है कि जिस प्रकार दर्शन संसार को समझने में व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है, राजनीति उसे परिवर्तित करने में सहायक है, उसी प्रकार साहित्य का कार्य संसार की पुनर्रचना करना है। अत: स्पष्ट है कि समाज और पर्यावरण एक-दूसर से गहराई से अंतर्संबंधित हैं। मनुष्य समाज तथा पर्यावरण का न सिर्फ अभिन्न अंग है, अपितु उसे प्रभावित भी करता है और स्वयं वांछित एवं अवांछित रूप से प्रभावित भी होता है।

मनुष्य सभ्यता के प्रारंभिक चरण से ही उत्तरोत्तर अपने दैनिक जीवन निर्वाह हेतु पर्यावरण पर निर्भर रहा है। प्रारंभ में वह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उसी अनुपात में करता था, जिस अनुपात में उनका पुन:उद्‌भव संभव हो सके किंतु सभ्यता के विकास के साथ-साथ औद्योगिक तथा तकनीकी क्रांति के कारण मनुष्य की भौतिकतावादी प्रवृत्ति में तीव्र वृद्धि होने तथा असीमित भौतिक आवश्यकताओं के कारण वह अमूल्य तथा दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन करने लगा, जिससे अनगिनत पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन परत क्षरण, असमय वर्षा, सूखा, बाढ़, भूस्खलन, वन-अपरोपण, मरूस्थलीकरण का विस्तार, समुद्र जल स्तर में वृद्धि, जल प्रदूषण, जैव विविधता में कमी, अम्लीय वर्षा आदि पर्यावरणीय संकटों ने मनुष्य को चारों ओर से घेर रखा है। ये समस्याएँ इंगित करती हैं कि हम मानवता के विकास के बुरे दौर से गुजर रहे हैं।

उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की कोख से उपजे मुक्त बाजारवाद तथा संचार-क्रांति ने विश्व को ही नहीं भारतीय जनमानस को भी कई तरह से प्रभावित किया है। बाजारों में उत्पादों तथा विकल्पों की बाढ़ ने मनुष्य के मानस पटल को हाईजैक कर लिया है। इतना ही नहीं, व्यक्ति ही मानो एक उत्पाद बन गया है। समाज के इन परिवर्तनों ने साहित्य, विशेषकर कथा साहित्य के स्वरूप को भी व्यापक रूप से परिवर्तित किया है। इतना ही नहीं, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और पूँजीवाद ने एक भयानक युद्ध संस्कृति तथा उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया है, जिसके कारण जल, जंगल, जमीन, पहाड़, पशु-पक्षी सभी

नवोदित लेखक। कुछ आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दिल्ली विश्वविद्यालय से कथा-साहित्य में पीएचडी उपाधि के लिए शोध कार्य किया है।

को मानव जाति की असीमित इच्छाशक्ति के कारण निर्ममतापूर्वक कुचला जा रहा है। इन त्रासद परिस्थितियों ने समाज के संवेदनशील वर्गों, बुद्धिजीवियों, पर्यावरणविदों और साहित्यकारों की मन:स्थिति को झकझोर कर रख दिया है।

प्राकृतिक संसाधनों का अविवेपूर्ण दोहन तथा प्रकृति से अलगाव को हिंदी साहित्य के रचनाकारों 'अज्ञेय', काशीनाथ सिंह, एस.आर. हरनोट, आनंद हर्षुल, राजेश जोशी, स्वयंप्रकाश, चित्रा मुद्‌गल आदि ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय का मानना है कि आधुनिकता और औद्योगीकरण ने हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन को सबसे अधिक प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप हमारी लोक संस्कृति का क्षरण होने लगा है। जीवन की कला, जीने का ढंग अव्यवस्थित होता जा रहा है। हमारा समाज न ग्रामीण रहा न शहरी अपितु एक मिश्रित संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ है, यहाँ तक कि शांत, सौम्य, पहाड़ी जीवन भी इससे अछूता नहीं है। अपनी कहानी 'पहाड़ी जीवन' में अज्ञेय लिखते हैं, ''जहाँ के जीवन में प्रतिभा का आहार बिल्कुल नहीं मिलता, जहाँ चरित्र घुटकर मर जाता है और जीती हैं केवल लिप्साएँ, उक्त पाप भावनाएँ, जहाँ के जीवन का सार है गरीबी, कायरता, दंभ और व्यभिचार···जहाँ लोग पर्वतों के मुख को काला कर रहे हैं, अपने ओछे, छिछोरे, पतित, निरर्थक जीवन से।'' (अज्ञेय रचनावली : खंड-३, पृष्ठ-८८) अत: स्पष्ट है कि पहाड़ों पर निवास करने वाले लोगों का जीवन भी कृत्रिम तथा दूषित होता जा रहा है। उनकी बढ़ती इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं के कारण पहाड़ों पर आने वाले पर्यटक पैसे का लालच दिखाकर उन्हें नैतिक पतन की ओर ले जा रहे हैं।

काशीनाथ सिंह ने 'जंगल जातकम्' कहानी में मानव द्वारा दिन-प्रति-दिन किए जा रहे पर्यावरणीय विनाश को कहानी के केंद्र में रखकर विकास के लिए बनाए गए समकालीन मॉडल की विसंगतियों को प्रकट

करने के साथ ही सत्ता के एकाधिकारवादी तथा दमनकारी चरित्र का वर्णन किया है। कहानी में सत्ता का प्रतीक 'घमोच' जंगल को काटने आता है। वह जंगल को बस्ती मानते हुए कहता है कि, ''यही वह बस्ती है, जिसे हमें उजाड़ना है, खत्म करना है। हमें मनुष्यों के लिए मिल खड़ी करनी है, कारखाने बनाने हैं, कोयले की खान खोदनी है। ये निहत्थे पेड़, झाड़-झंखाड़। इनके लंबे-चौड़े आकार से डरने की जरूरत नहीं है। हमें जल्दी ही इनके वजूद को मिटा देना है।'' (काशीनाथ सिंह, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. ८९) कहानी स्पष्ट बताती है कि मनुष्य के लिये स्वयं का हित ही सर्वोपरि है, सामाजिक हित और पर्यावरणीय नैतिकता उसके लिये नगण्य हो गए हैं।

एस.आर हरनोट ने अपनी कहानी 'लिटन ब्लॉक गिर रहा है' (पृष्ठ १२४) में एक आलीशान और ऐतिहासिक भवन के जर्जर होकर गिरने की कथा को आधार बनाया है। अंग्रेज भारत में शासन करने के दौरान पहाड़ों पर स्वयं के लिए आधुनिक मापदंडों के अनुरूप इमारतें बनवाने के साथ-साथ प्रकृति को उसके मूलरूप में कायम रखने का प्रयत्न करते थे, ''उस दौरान जो भी भवन शिमला की पहाड़ियों पर अंग्रेजों ने बनवाए थे, वे ऐसी खाली जगहों पर थे, जहाँ देवदार, बान और बुराँश के पेड़ ज्यादा नहीं थे। यदि किसी निर्माण में पेड़ काटने या गिराने भी पड़ते तो मजदूरों से उसके एवज में दो गुने पेड़ लगवाए जाते, ताकि इस पहाड़ी शहर का कुदरती रूप पूर्ववत् बना रहे।''

आनंद हर्षुल की कहानी 'महानगर में गिलहरी' (पृष्ठ १६३) बढ़ते शहरीकरण तथा घनी बस्तियों के कारण कटते जंगल तथा प्रकृति पर निर्भर जानवरों के समक्ष उपस्थित अस्तित्व के संकट को दिखाती है। कहानी में स्पष्ट है कि फलदार पेड़ों की घटती संख्या के कारण गिलहरियाँ खत्म होने के कगार पर हैं—''शहर गाँव था, तो सबसे ज्यादा वहाँ थीं गिलहरियाँ और इतने फलदार पेड़ कि गाँव के भरपेट होने के बाद भी बचे रहते थे फल और टप-टप धरती पर गिरते तो धरती बजती।''

राजेश जोशी की कहानी 'कपिल का पेड़' (पृष्ठ १३९) मनुष्य और प्रकृति के अन्योन्याश्रित संबंधों पर आधारित है। कहानी का नायक मानता है कि प्रेम और पेड़ दोनों की स्थिति खतरे में है। कहानी में पेड़, प्रेम का प्रतीक है जो निस्स्वार्थ जीव-जंतुओं को छाया तथा फल प्रदान कर उनकी सेवा करता है। आज की सबसे बड़ी समस्या ग्लोबल वार्मिंग है, जिसको रोकने का हथियार है पेड़। कपिल इसीलिए गुस्से में आकर कहता है कि, ''प्रेम और पेड़ दोनों ही जड़ों को कोई मुद्राराक्षस खाए जा रहा है।'' यह कहानी मनुष्य के बढ़ते स्वार्थ तथा उपभोगवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती है, क्योंकि वह अन्य जीव-जंतुओं का सुख भी छीन लेता है। वास्तव में कहानीकार का मानना है कि प्रकृति से और प्रकृति के जीव-जंतुओं से प्रेम करने का तात्पर्य मनुष्य से प्रेम करना है। इसलिए वर्तमान दौर में मूल्य संरक्षण की अति आवश्यकता है।

स्वयं प्रकाश की कहानी 'बली' (पृष्ठ १८८) में एक लड़की के माध्यम से कहानीकार ने ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले शहरी जीवन के प्रभावों को अभिव्यक्त किया है, जहाँ गाँव धीरे-धीरे शहर में परिवर्तित हो गया है। ग्रामीण जीवन की नैसर्गिक जीवंत, परंपरा नष्ट हो रही है। कहानीकार के शब्दों में—''...अचानक उसे लगा, वह अपने आपको बहला रही है, सुगंध नहीं दुर्गंध...कहीं कुछ सड़ रहा है—हवा में...।''

प्रकृति के परिवर्तित होते चेहरे के साथ स्त्री के शोषण को भी कहानीकार ने प्रदर्शित कर इको-फैमिनिज्म की संकल्पना को साकार किया है। निश्चित रूप में अनेक आकर्षण है, किंतु उसके चकाचौंध में फँसकर लोग अपने मूल्य बोध, नैतिक जीवन तथा प्रेम-संवेदना को भूलते जा रहे हैं। रिश्ते वर्तमान में स्वार्थ केंद्रित हो गए हैं, जिसके कारण सामाजिक संकट के साथ-साथ पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानियों 'जिनावर' और 'जंगल' के माध्यम से मनुष्यों के प्रकृति तथा जीव-जंतुओं से दूर होते जाने तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ क्षीण होती मनुष्य की संवेदना को गहराई से प्रकट किया है। 'जिनावर' कहानी मनुष्य और जानवर के मध्य गहरे रिश्ते को उजागर करती है। मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु जानवरों का न सिर्फ दुरुपयोग करता है, अपितु निर्मम एवं निंदनीय व्यवहार भी करता है, परंतु आज मनुष्यों के लिए यह विचार करना आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा में जीव-जंतुओं की सुरक्षा भी निहित है।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'जंगल' (पृष्ठ-२५०) में भी पशु-पक्षियों तथा जीव-जंतुओं के प्रति संवेदना प्रकट की गई है, जो बताती है कि पशु-पक्षियों को जंगल तथा प्रकृति से काटकर उनको अपने शौक के लिए पालना अन्यायपूर्ण है। यह कहानी एक बालक पीयूष के माध्यम से जानवरों से प्रेम करने तथा उन्हें स्वतंत्र छोड़ने की आवश्यकता पर बल देती है। कहानी में दो खरगोश के जोड़े में से एक के मर जाने तथा बालक के दु:खी होने पर उसकी दादी कहती है—''दुकानदार पशु-पक्षियों को अपने जाल में फँसा ले, उन्हें शहर लाकर बेच दें। तुम्हीं बताओ माँ-बाप से दूर होकर बच्चे दु:खी होते हैं कि नहीं?'' इस कहानी में बच्चे के माध्यम से पशु-पक्षियों को मनुष्य के समान दर्जा देकर उसके प्रति करुणा, दया, स्नेह का भाव प्रकट किया गया है।

प्रसिद्ध पर्यावरणविद् और 'इकोलॉजी' पत्रिका के संपादक एडवर्ड गोल्ड स्मिथ का कहना है—''धरती पर तीसरा विश्व युद्ध आरंभ हो चुका है। यह युद्ध प्रकृति के खिलाफ है। आज हम वनस्पति जगत् की मृत्यु देख रहे हैं....।'' (धरती की पुकार : सुंदर लाल बहुगुणा, पृ. ३४) समकालीन कहानीकारों की कहानियों में पर्यावरणीय संकट के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को भी कहानी के केंद्र में रखा गया है। वास्तव में अगर देखा जाए तो पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ एक-दूसरे से अंतर्संबंधित हैं। इनमें से कोई भी एक समस्या कई अन्य समस्याओं को जन्म देती हैं। उदाहरण के लिए आर्थिक पिछड़ापन, गरीबी, भुखमरी आदि एक समस्या है तो उसके निदान के लिए किया जा रहा अविवेकपूर्ण औद्योगिक विकास पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म देता है। नई विकास योजनाओं, नए उद्योगों के कारण विस्थापित होने को मजबूर समाज के निम्न वर्ग के लोग, बेरोजगारी, भुखमरी, सामाजिक विषमता जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं, तो वहीं मानवेतर प्राणियों में पशु-पक्षी, पेड़-पौधे एवं अन्य जीव-जंतु भी विस्थापित एवं विनष्ट हो रहे हैं, जिसे लेकर समकालीन हिंदी कहानीकार भी अत्यंत सजग हैं। इसीलिए उनकी कहानियों में गहन पारिस्थितिकीवाद के तत्त्व मौजूद हैं।

समकालीन कहानीकारों की कहानियाँ चाहे वह अज्ञेय की 'हीलीबोन की 'बतखें', काशीनाथ सिंह की 'जंगल जातकम्', आनंद हर्षुल की 'महानगर में गिलहरी', एस.आर. हरनोट की 'आभी', 'लिटन ब्लाक गिर रहा है', शेखर जोशी की 'बदबू' हो या फिर मेहरून्निशा परवेज की 'कानीबाट', नासिरा शर्मा की 'कुइयाँजान', चित्रा मुद्गल की 'जंगल', 'जिनावर' हो या फिर राजेश जोशी की 'कपिल का पेड़' आदि ऐसी कई अन्य कहानियाँ हैं, जिनमें प्रकृति के प्रति गहरी संवेदना प्रकट करते हुए इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि पर्यावरणीय संतुलन के बने रहने की यह अनिवार्य शर्त है कि प्राकृतिक संसाधनों पर प्राणि मात्र का समान अधिकार हो, किंतु यह संतुलन बहुत हद तक बिगड़ चुका है। मानव स्वयं को पर्यावरण का केंद्र बिंदु मान चुका है और अन्य पर्यावरणी घटकों को अपने हितों की पूर्ति के लिए उपादान। आज का तथाकथित बुद्धिजीवी और तार्किक मानव समाज अविवेकी बनकर प्राकृतिक घटकों के दोहन से तनिक भी नहीं हिचक रहा है। अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओं हेतु दिन-रात उनका अंधाधुंध दोहन करता चला जा रहा है।

इन कहानियों में प्रकृति तथा जीव-जंतुओं का शोषण, प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक संबंध, जनसंख्या, विस्थापन, मूल्यक्षरण आदि विषयों को कहानीकारों ने आधार बनाया है। निश्चित रूप से समकालीन कहानीकारों ने अनेकानेक कहानियों के माध्यम से वर्तमान दौर के विकट पर्यावरण संकट के विविध पहलुओं को अभिव्यक्त करते हुए एक स्वस्थ तथा संतुलित विश्व की कामना की है तथा इस दिशा में निरंतर प्रयत्नशील हैं।

सा.अ.
सराय फट्टू निभापुर, जौनपुर-२२२२०४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८८८२३६९९९१

कविता

चिड़िया

• के.एल. व्यास

: एक :
चिड़ियों के झुंड-के-झुंड
सुबह होते ही
आँगन में जुट जाते थे।
मेरी दादी कनकी और जवार के दाने
आँगन में बिखेर देती थी
दाने चुगती फुदकती
लड़ती-झगड़ती चिड़िया
कितनी अच्छी लगती थी।

कुएँ के जगत पर
पत्थर में बनी ओखली के
छिछले पानी में
चिड़ियाँ नहातीं
पंख पटपटातीं
उथले पानी में अठखेलियाँ करतीं
फुर्र से उड़ जातीं
फिर लौट आतीं।
चिड़ियों के नवसिखए बच्चे भी
साथ होते, मुँह खोले दाना-पानी
नीम के खोखल पेड़ पर झूलती गाती
और फुर्र से उड़ जाती
उसी नीम के डाल में।

: दो :
अब चिड़ियों के झुंड नहीं आते
अब आँगन भी तो नहीं है।
कट गया है नीम का खोखल पेड़
मडमियाँ बन गई हैं
किराए पर उठ गई हैं
पगड़ी भी अच्छी मिली है
किराया भी काफी मिलता है
तभी तो इतना बड़ा घर चलता है
गाय नहीं आती
कानी कुतिया भी
दिखलाई नहीं पड़ती।
पीपल में कोई पानी नहीं डालता
सूत नहीं बाँधता
कुंकुम-अक्षत नहीं चढ़ाता
दिया भी नहीं जलाता।
सूख गया है पुश्तैनी कुआँ
पड़ गया है बोर-वेल
तीन सौ फीट गहरा
गरमी भी बेतहाशा बढ़ गई है
दीवारें भट्ठी हो जाती हैं सीमेंट-लोहे की
हवाएँ तो जैसे रुक सी गई हैं
धूप और चाँदनी आँगन में कहाँ से आएँ
दीवारें जो उठ गई हैं
कूलर कमरों में लग गए हैं
बच्चे भी बाहर नहीं खेलते
टी.वी. से दिनभर चिपके बैठे रहते हैं

अब चिड़ियाँ कहीं नहीं दीखती
शायद नया आशियाना खोजने
बहुत दूर बहुत दूर चल दी हैं
मेरा कस्बा शहर हो गया है।
मेरा यायावर मन उदास हो उठा
सपनों में मैं उन चिड़ियों को
लगातार खोजता रहा
जो जंगलों की खोज में
नदियों की टोह में
बहुत-बहुत दूर चली गई हैं।

: तीन :
शहर की अट्टलिकाएँ गगनचुंबी हैं
बड़ी बेरहम हैं
यहाँ चिड़िया की बात करना
चिड़िया की पेटिंग में चिड़िया को
खोजना है।
चलो, घर चलो
चिड़िया पर सेमिनार की
तैयारी करनी है
पेपर लिखना है
चिड़िया को खोजने जैसी
फालतू बातों में
वक्त जाया मत करो।
दरअसल, चिड़िया को खोजना
जोखिम भरा, भावुकतापूर्ण
फालतू काम है
चिड़िया जहाँ भी होगी
सकुशल होगी, न होगी
तो सेमिनार में तो होगी।

सा.अ.
फ्लैट नं. ६, ब्लॉक नं. ३, केंद्रीय विहार,
मियापुर, हैदराबाद-५०००४९
दूरभाष : ०४०-२३०४४६६०

व्यावहारिक दोहे

● सत्यशील राम त्रिपाठी

खड्गधारिणी फूँक दो, ऐसा कोई मंत्र।
रामराज्य जैसा बने, भारत का गणतंत्र॥

महाकाल पर काल है, या श्रद्धा पर काल।
सौ गाली के बाद भी, जीवित है शिशुपाल॥

संसद् में सांसद मिलें, जैसे जल में कीच।
है छत्तीस का आँकड़ा, राम-काम के बीच॥

पुरुषों की सत्ता गिरी, मिटा अमिट अभिमान।
रजिया जबसे बन गई, है रजिया सुल्तान॥

समय-समय पर समय से, हुई अनगिनत जंग।
इसीलिए टूटे-मुड़े, समय पूर्व ही अंग॥

करना चाहे आदमी, इच्छाओं की सैर।
चादर घटती जा रही, पढ़ते जाते पैर॥

घर घर-घर में बँट गया, बँटा दाहिना हाथ।
अम्मा-बाबा सोचते, जाएँ किसके साथ॥

चढ़ संसद् के मंच पर, गालिब पढ़ते शेर।
तीतर ताली पीटते, गाली बकें बटेर॥

पत्थर पर चढ़ने लगे, पूजा के संयंत्र।
भैंस बैठ पगुरा रही, सुन पंडित के मंत्र॥

व्याह-विदाई में गया, घर का सारा खेत।
लेकिन नदिया हो गई, कुछ वर्षों में रेत॥

आँधियारे भी हो गए, आज देखकर दंग।
सूर्य डाकिए ने कहा, किरण पत्र बैरंग॥

नई-नई परतें खुली, पढ़कर दस्तावेज।
पानी पीकर ज्यों बढ़ी, प्यास और कुछ तेज॥

मन में यदि शंका बना, चक्रव्यूह का प्रश्न।
कभी मना सकते नहीं अभिमन्यु सा जश्न॥

युवा लेखक। एम.ए. प्रथम वर्ष। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में दोहे तथा गजलें प्रकाशित।

नदी नाव नरकट नहर, नीम नीड़ नलकूप।
जान बचा भागे सभी, देख गाँव का रूप॥

एक तरफ है सज रहा, स्वर्ण सदृश साकेत।
रोटी खातिर एक तरफ, जोत रहे हैं रेत॥

बादल जी दे दीजिए, कुछ वर्षों तक साथ।
मुझको करने हैं अभी, पीले दो-दो हाथ॥

गृह-बँटवारे में बँटे, भैया और भतीज।
अम्माँ मुश्किल में पड़ी, किससे भेजे तीज॥

बादल तुझसे ही बची, अब तक घर की मूँछ।
बस करते रहना सखे, खेत-मेंड़ की पूछ॥

चकाचौंध की धुंध में, हिंसा सत्तारूढ़।
चौराहे पर हूँ खड़ा, किंकर्तव्यविमूढ़॥

वन-वन पांडव भटकते, पहन भिक्षु का वेश।
शायद धुलने से रहें, द्रुपदसुता के केश॥

मन में कुछ ऐसा मचा, कल्पित मन का शोर।
मन ही मन बादल घिरे, झूम उठा मन-मोर॥

सूरज को मिलता रहा, रोज प्रशंसा-पत्र
भटका जुगनू उम्र भर, यत्र तंत्र सर्वत्र॥

मैना मुर्गा मुर्गियाँ, मेढक मछली मोर।
इन्हें लीलता जा रहा, नगर डायनासोर॥

कितना स्वार्थी जग हुआ, काट हुनर के हाथ।
फोटो में तनकर खड़ा, ताजमहल के साथ॥

कूड़े में से ढूँढ़ता, खाने का सामान।
कितना विकसित हो गया, अपना हिंदुस्तान॥

एक वृद्ध की आय पर, टिका हुआ परिवार।
जर्जर नौका ढो रही, दस लोगों का भार॥

आँसू में पैदा हुई, तय आँसू में मौत।
मगर नदी मुसका रही, बन आँसू की सौत॥

मुझे न कुछ भी चाहिए, मैं मरुस्थल का पेड़।
बस मरते दम तक करूँ, सूरज से मुठभेड़॥

हाथों में जब से बँधी, हिम्मत की ताबीज।
तब से नीत बोने लगा, मैं ऊसर में बीज॥

जहाँ कूक की गूँज थी, वहाँ गूँजती हूक।
मगर हूक की चूक पर, हुए सभी जन मूक॥

जो वर्षों पहले हुए, सर्वदृष्टि-संपन्न।
वे अब तक हैं खा रहे, आरक्षण का अन्न॥

ग्राम-रुद्रपुर, पोस्ट-खजनी,
जिला-गोरखपुर-२७३२१२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ६३८६५७८८७१

हवा सुहानी, हवा सुहानी

• संजीव ठाकुर

सुपरिचित कवि-कथाकार तथा बाल साहित्यकार। 'नौटंकी जा रही है', 'फ्रीलांस जिंदगी', 'अब आप अली अनवर से···' (कहानी-संग्रह), 'झौआ बैहार' (लघु उपन्यास) तथा 'इस साज पर गाया नहीं जाता' (कविता-संग्रह), 'बड़ों का बचपन' तथा 'चुन्नू-गुन्नू का स्कूल' बाल-साहित्य की चर्चित कृतियाँ हैं।

हवा सुहानी

हवा सुहानी, हवा सुहानी
ना है अंधड़, ना है पानी

हवा सुहानी, हवा सुहानी
बच्चो! खूब करो मनमानी
हवा सुहानी, हवा सुहानी
मगन हो गई चिड़िया रानी
हवा सुहानी, हवा सुहानी
बूढ़ी दादी हुई दीवानी
हवा सुहानी, हवा सुहानी
काहे चुप बैठी हो नानी?

मम्मी! पानी नहीं आ रहा

मम्मी! पानी नहीं आ रहा
अब कैसे नहलाओगी?
क्या चावल धो पाओगी?
दाल कहाँ से लाओगी?
झाड़ू-पोंछा, बरतन कपड़े
तुम कैसे कर पाओगी?
सूख रहे जो पौधे बाहर
उनका क्या कर पाओगी?
कहीं आ गया कोई घर पर
उनको क्या दे पाओगी?
कितनी बार कहा पापा ने
बात कभी न मानोगी
हो जाएगी खाली टंकी
तब जाकर पछताओगी!

चलो चलें हम मॉल

हम जाएँगे शिप्रा मॉल
कोकू! रख दो अपनी बॉल
कोकू! जल्द सँवारो बाल
हम चल रहे शिप्रा मॉल!

रिक्शे से हम जाएँगे
मैक्डोनल्ड में खाएँगे

चलने वाली सीढ़ी पर
हम तुम चढ़ते जाएँगे
अंदर मिलती आइसक्रीम
दोनों जमकर खाएँगे।

चम-चम करती दुकानों से
मैं ले लूँगी सुंदर ड्रेस
ले लेना तुम दो-एक गाड़ी
खूब लगाना फिर तुम रेस।

रोते रहते

रोंदूमल जी रोंदूमल
रोते रहते रोंदूमल
बात कोई हो या न हो
बस रोएँगे रोंदूमल!

मम्मी ने टॉफी न दी
पापा ने कॉफी न दी
फिर तो बात बतंगड़ कर
रोएँगे ही रोंदूमल!

किसी से मुँह की खाएँगे
चाहे खुद धकियाएँगे
अपने मन की न कर पाए
तो रोएँगे रोंदूमल!

एस.एफ.-२२, सिद्धि विनायक अपार्टमेंट,
अभयखंड-३, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद-२०१०१० (उ.प्र.)
skthakur67@gmail.com

अनुपम कला बंधेज की

● चंद्रकांता शर्मा

राजस्थान के निवासियों के खान-पान, रहन-सहन, पहन-पहनावा और तमाम हस्तशिल्प के कार्यों में उसकी अपनी एक मौलिकता है, उसके पीछे है एक जीवंत संस्कृति का यथार्थपरक इतिहास। यहाँ का जन-जीवन सहजता और सरलता के लिए जाना जाता रहा है। महिलाएँ राजस्थानी लोक-संस्कृति की वह मूल हैं, जिसके बिना यहाँ तीज-त्योहारों तथा पहन-पहनावे का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। यहाँ का चाहे सांगानेरी प्रिंट का कार्य हो अथवा चूनरी या बंधेज, इन सबके पीछे महिला समाज की एक खास संस्कृति जुड़ी हुई है।

राजस्थान में बंधेज विविध अंचलों में भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग और बूटों में तैयार की जाती है। यही नहीं, इसके नाम भी दूसरे क्षेत्रों में अन्य नामों से जाने जाते हैं। शेखावटी में यह कार्य 'चिनौन' पर होता है तो गुलाबी नगर में 'पचमीना' व 'शिफोन' पर बहुत ही कुशलता से किया जाता है। बंधेज पर खास तौर पर बिंदियों का ही तिलिम्स जमाया जाता है, अत: हम 'बिंदी' अथवा 'बंध' के कारण जो कलात्मकता रूप ग्रहण करती है, उसे 'बंधेज' कहा जाता है।

बंधेज का मूल कार्य स्त्रियों द्वारा ही संपन्न किया जाता है। कपड़े की चार अथवा छह तह करके कच्चे रंग के डिजाइन लकड़ी के छापों से कपड़े पर मांडे जाते हैं तथा कच्ची सिलाई करके कपड़ा रोका जाता है। लकड़ी से किए जानेवाले इस छापे के काम को 'लिखाई' तथा इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा चुटकी से पकड़कर जो सिलाई की जाती है, उसे 'बँधाई' कहा जाता है। 'बँधाई' के बाद कपड़ा रँगरेज के पास रँगाई के लिए जाता है और यह रँगाई अंत तक उसी रंग में होगी, जो रँगरेज ने उस पर चढ़ा दी है। इसके बाद चुटकी से बाँधे गए 'बंध' काटे जाते हैं तथा पृष्ठभूमि पर सफेद बिंदियाँ निकल जाती हैं। इन सफेद स्थानों पर बाद में रुई के फाहों से दूसरे रंगों से रिपाई की जाती है। यह रंग कार्य स्त्रियों द्वारा ही किया जाता है। रिपाई के बाद फिर से कपड़े पर पुन: बंधेज बाँधा जाता है। टीप करते समय रंग बिखर जाता है, उसे काटकर सही किया जाता है। हाइड्रोसल्फेट से धुलाई के बाद ही यह अनावश्यक रंग साफ हो जाता है। इसके बाद उस वस्त्र की बंधेज को खोलकर सुखा दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त भी बंधेज का कार्य किया जाता रहा है। परंतु इससे रंगों का तालमेल तथा पक्कापन सही रूप में कायम नहीं रह पाता है।

सुपरिचित लेखिका। देश की छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित, साथ ही पुस्तकों का प्रकाशन। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

पहले कच्चे रंग में कपड़े की एक रंग में रँगा, फिर सूख जाने के बाद उस पर कलफ किया जाता है। फिर डंडों पर कपड़ा लपेटकर इसे सुखा लिया जाता है। बाद में ब्रुश से कपड़े को दूसरे रंग से रँगा जाता है, इसी तरह कपड़े में आड़े-तिरछे 'बाँध' लगाकर कपड़े को बाँधकर पचरंगा साफा बनाने के लिए बल देकर डंडे की तरह तैयार कर लिया जाता है। फिर इसे मनचाहे रंगों में रँगकर 'बंध' खोल लिया जाता है, तो बहुरंगी कलात्मक डिजाइन ऊपर आती है।

बंधेज का कार्य वैसे तो शेखावटी, जोधपुर व दक्षिणी राजस्थान में अपने-अपने ढंग व कलात्मकता के साथ किया जाता है, परंतु जयपुरी बंधेज की अपनी एक शान है तथा गौरवशाली इतिहास भी है। जिस सफाई में बिंदियों के बूटों से आकृति उभरती है, वह इस कला की उत्कृष्टता की कथा अपने आप कह उठती है। हालाँकि शेखावटी की बंधेज कला में बारीकी तथा फूल पत्रों की विविधता पाई जाती है और वह भी कला सौंदर्य की दृष्टि से कम नहीं होती, परंतु जयपुरी बंधेज का 'पचरंगा' साफा व 'मौठड़ा' इस हस्तशिल्प का अनुपम मौलिक उदाहरण है। जयपुर में तीन-चार हजार परिवार बंधेज कला में लगे हैं, परंतु बिचौलियों की मुनाफाखोरी के कारण वे सही रूप में जीविकोपार्जन नहीं कर पाते हैं।

बंधेज के काम में वनस्पति एवं नेपथौली के रंग काम में लिये जाते हैं। इन रंगों के बनाने की विधियाँ बड़ी जटिल हैं। रँगरेज इन्हें तैयार करने में बहुत मेहनत करते हैं। यही वजह है कि कुछ रंगों में खास तरह की गंध कपड़े के कायम रहने तक जाती नहीं है तथा वह इतना पक्का आकर्षक होता है कि उसकी छटा देखते ही बनती है। रंगों को बनाने की प्रक्रिया बाग में घंटों तक औटाने तथा बहुत सी वनस्पतियाँ डालने के बाद संपूर्ण होती है, तब कहीं जाकर बंधेज के रंग साड़ियों व साफों में जान डाल पाते हैं।

आज तक बंधेज कार्य का निर्यात होता है, वह विदेशों में भी पसंद किया जाने लगा है, उसकी व्यावसायिक स्थिति मजबूत है। इस कारण ही यह कार्य लोकप्रिय हुआ है तथा व्यावसायिक सफलता प्राप्त कर सका है। बंधेज की साड़ियाँ जयपुर ही नहीं, दूर-दूर तक के लोग जो पर्यटन की दृष्टि से यहाँ आते हैं, खरीदकर ले जाते हैं तथा इसकी गणना जयपुरी तोहफों में भी की जाती है। राजस्थान की स्त्रियों तीज-त्योहारों की परंपरा तथा मौसम के अनुसार वस्त्र पहनती हैं। सावन में लहरिया, चूनरी व मौठड़ा पहनना चाहती हैं तो दूसरे त्योहारों पर गोटे के काम के अन्य वस्त्र। इन विविधताओं के कारण ही यहाँ की संस्कृति में बंधेज अभी भी अपना स्थान बनाए हुए है और वह चाव से पहना जाता है। बंधेज कार्य की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उसका पूरा निर्माण हाथों से होता है तथा पूरी लगन से इसके कारीगर इसे चित्ताकर्षक बना पाते हैं।

राजस्थान के विविध अंचलों में अपने-अपने ढंग से बननेवाली इस बंधेज कला के कारीगरों की हालत बड़ी खराब है, वे बिचौलियों व पूँजीपति वर्ग की मनमानियों व शोषण के शिकार हैं।

मिलावटी रंगों, पानी की कमी तथा महँगे धागों से इस कला को बचाए रखना जटिल होता जा रहा है। हालत यह है कि गलत रंगों के कारण कपड़े पर रंग फब नहीं पाते तथा बंधेज की चुनरी अब चित्ताकर्षक पहचान नहीं बना पाती, जो कि विशुद्ध माल के कारण बन पाती है। इसके शिल्पियों को इसका भारी दु:ख है। इस कार्य में मूल रूप से महिलाएँ कार्यरत हैं, जो घर में ही इस कार्य को संपन्न करती हैं। महिलाओं के अतिरिक्त छोटे-छोटे बच्चे भी बाल्यकाल से इस व्यवसाय में लगकर घर में जीविकोपार्जन में मदद करते हैं। वजह पुरुष मूल रूप से बँधी साड़ी पर रंग चढ़ाने का कार्य करते हैं। बिचौलिए तथा पूँजीपति मालिक वर्ग ही दिन-दिन पनप रहा है तथा कारीगर मात्र जीवन निर्वाह कर पा रहा है।

बंधेज चुनरी साड़ियों में एसिड रंगों का प्रयोग साड़ी अथवा साफे को सस्ता बनाता है तो फरोसन रंगों के कारण वे महँगे बिकते हैं, क्योंकि फरोसन रंग पक्के व महँगे होते हैं, अत: एसिड रंगों की तुलना में फरोसन रंगोंवाली चुनरियों का दाम दुगुना हो जाता है। फिरोजिया, गुलाबी, जामुनी एवं नारंगी रंगों का प्रयोग इस काम में मुख्य रूप से होता है तथा इन साड़ियों पर पचरंगा चुनरी—फूल, अनारदाना, लाडूवाली व जामनगरी चित्राकृतियाँ ही प्रमुख रूप से चित्रित की जाती हैं, वैसे इस काम में कोई डिजाइन निश्चित नहीं है तथा कुछ भी बना दिया जाता है। यह कारीगर की कुशलता पर भी निर्भर है कि वह कपड़े पर धागे को किस तरह आकर्षित स्वरूप दे पाता है। राजस्थान में भयंकर गरीबी व रोजगार के अभाव में कारीगर सस्ते मिल जाते हैं, जिसका लाभ सेठ-साहूकार अपने हित में प्राप्त कर उनका शोषण करते हैं तथा शिल्पी महज जीवनयापन से अधिक नहीं जुटा पाते। इस बंधेज कारीगरी को जिंदा रखने के लिए सरकार तथा इससे संबंधित मंत्रालयों को इस ओर ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

साअ
१२४/६१-६२, अग्रवाल फार्म,
मानसरोवर, जयपुर-३०२०२० (राज.)
दूरभाष : ०१४१-२७८२११०

मदद

लघुकथा

• वंदनागोपाल शर्मा 'शैली'

बच्चा बार-बार खिड़की से हाथ बाहर निकालता था, पर बच्चे की माँ है कि मोबाइल चलाने में व्यस्त···

वह छोटा बच्चा, अगल-बगल से निकलती कई बड़ी गाड़ियों को मानो छू लेना चाहता हो। बगल की सीट पर बैठी 'जिया' यह सब देख रही थी! तभी···

"ओ बहनजी! मोबाइल कहीं भागा नहीं जा रहा, बच्चे की तरफ भी ध्यान दीजिए···कैसे हाथ बाहर निकाले जा रहा है!"

कंडक्टर ने तेज आवाज में कहा!

बच्चा पानी माँगने लगा, तब माँ ने पानी की खाली बोतल थमा दी···

जिया से यह सब देखा नहीं गया!

"मैम, मेरे पास फ्रेश बोतल है···लीजिए, बच्चे को पानी पिला दीजिए···मैं बिसलेरी की दो बोतल साथ लेकर चढ़ी थी बस में···!"

"शुक्रिया-बहन!"

इतने में कंडक्टर टिकट काटते हुए जिया के करीब पहुँच गया। "बहनजी, टिकट के बीस रुपए दीजिए···!"

पाँच सौ का नोट देखकर···कंडक्टर फिर कहता है—

"चिल्लर दीजिए!"

तभी बच्चे की माँ ने अपने पास से जिया के बीस रुपए भी दे दिए।

दोनों ही बस स्टॉप पर उतरते ही अपने-अपने गंतव्य की ओर बढ़ गईं!

साअ
बलौदा बाजार, भाटापारा (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ७९७५२४२९३७

बाल-कहानी

पक्षियों वाला पेड़

● **सुमन बाजपेयी**

जब से पापा उसके लिए झूला लाए हैं, तब से बिन्नी को बालकनी में बैठने में और मजा आने लगा है। पापा ने झूला एक मोटी से चेन से बालकनी की छत से लटका दिया है। अब वह झूला झूलते-झूलते सुबह दूध पी लेती है और नाश्ता भी मम्मी उसे वहीं बिठाकर खिला देती हैं। वह खुद भी खा सकती है, पर कभी-कभी मम्मी कुरसी डालकर बैठ जाती हैं और उसे बहुत सारी मजेदार बातें बताते हुए खिलाती जाती हैं।

गरमी हो या सर्दी, वह शनिवार और इतवार को जरूर बालकनी में बैठती है। मम्मी-पापा की भी तभी छुट्टी होती है। वह अब स्कूल जाती है। पढ़ाई तो बहुत नहीं होती, फिर भी बहुत कुछ सीख गई है। लिख भी लेती है।

गरमी में ठंडी हवा और सर्दियों में खिली धूप'''दोनों ही उसे पसंद हैं। इन दिनों छुट्टी-ही-छुट्टी है। मम्मी-पापा भी ऑफिस नहीं जाते, घर से ही काम करते हैं। पापा ने बताया है कि कोई छोटा सा वायरस आया है, बहुत खतरनाक है वह। इसलिए वह नीचे दोस्तों के साथ खेलने भी नहीं जाती, न ही पहले की तरह मम्मी-पापा उसे बाहर कहीं घुमाने ले जाते हैं। काम से मम्मी-पापा को कभी बाहर जाना भी होता है तो मास्क पहनकर जाते हैं। एक मास्क उसके लिए भी खरीदा गया है। वह कभी-कभी शौक से घर में ही मास्क पहन लेती थी और बरामदे में खड़े होकर वहीं से घर के बिल्कुल सामने रहने वाली अपनी फ्रेंड से बात कर लेती। घर में बैठे-बैठे हालाँकि वह बोर होने लगी थी, लेकिन इन दिनों उसका मन लगने लगा है, क्योंकि उसके नए दोस्त जो बन गए हैं। वह बालकनी में झूला झूलते हुए उनसे खूब बातें करती है।

बालकनी के ठीक सामने बहुत बड़ा आम का पेड़ है, जिस पर गरमियों में खूब आम आते हैं। पेड़ इतना ऊँचा है कि उस पर चढ़कर आम तोड़ना किसी के लिए संभव नहीं है, इसलिए या तो वे पेड़ पर लटके-लटके सूख जाते हैं या आँधी चलने पर जोरदार आवाज करते हुए नीचे गिर जाते हैं। जब गिरते हैं तो सचमुच बहुत तेज आवाज होती है। आम के पत्ते कहीं-कहीं से एकदम हरे हैं और कई शाखाएँ एकदम सूख गई हैं। मुरझाई सी पत्तियाँ लटकी रहती हैं, लेकिन जब उन पर सूरज की रोशनी पड़ती है तो वे सुनहरी लगती हैं।

अब तक पाँच कहानी-संग्रह तथा १००० से अधिक कहानियाँ व लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट में संपादन कार्य व जागरण सखी जैसी पत्रिकाओं में कार्य। १५० से अधिक पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद। हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेखन।

सारा दिन उस पेड़ पर चहल-पहल रहती है, पर सुबह के समय तो जैसे मेला सा लगा रहता है। दौड़ती-भागती, शैतान गिलहरी की कुटकुट, कौए की काँव-काँव, चिड़ियों की चूँ-चूँ, कबूतर की गुटर-गूँ'''सुनना बिन्नी को बहुत अच्छा लगता है। चूँकि वह उनसे बात करती रहती है, इसलिए वे अब उसके दोस्त बन चुके हैं। बहुत तरह के पक्षी बेशक देखने को नहीं मिलते, पर कभी-कभी लंबी चोंच वाली चिड़िया भी उसे दिख जाती है। उनका एक शाखा से दूसरी डाल पर फुदकना'''वह खुशी से ताली बजाने लगती है। मजे की बात तो यह है कि कुछ कटी-फटी पतंगें भी लटकी हुई मस्ती से झूलती रहती हैं हवा में उस पेड़ पर। कितना कुछ है पेड़ पर देखने को।

आजकल तो घर पर है, इसलिए मजे से वह वहीं बैठ झूला झूलती रहती है। उसके ये दोस्त बालकनी की मुँड़ेर पर बैठकर दाना चुगते हैं।

"मम्मी, देखो, ये भी मेरे साथ नाश्ता कर रहे हैं," बिन्नी पक्षियों को दाना चुगते देख, झूले पर ही खड़े होकर थिरकने लगती। तब उसके फ्रॉक पर बने सुंदर फूल भी खिलखिला उठते।

उसके घर के बाईं ओर जो फ्लैट है, वहाँ रहने वाली आंटी ने बारिश के पानी से बचाव करने के लिए बालकनी के आगे की तरफ ऊपर शेड लगवा लिया था। कुछ दिनों से तीन कबूतर रोज उस पर आकर बैठने लगे हैं। एक बड़ा कबूतर है और दो छोटे। माँ ने बिन्नी को बताया कि दो छोटे कबूतर जो उसके दोनों तरफ उससे चिपके हुए है, वे उस बड़ी कबूतर

के नन्हे बच्चे हैं। वह उनकी माँ है, यानी कि मादा कबूतर है।

"जैसे आप मेरी मम्मी हो, ये भी अपनी मम्मी से वैसे ही चिपके रहते हैं, जैसे मैं आपसे। उनकी माँ भी खूब प्यार करती होगी न, जैसे आप करती हो," बिन्नी कहते-कहते माँ के गले लग गई।

"देखो मम्मी, वह कबूतर मम्मी भी अपने बच्चों को अपनी चोंच से खाना खिला रही है।"

सुबह थोड़ी बारिश हुई थी, इसलिए दोनों नन्हे कबूतर काँप रहे थे। उनके पर एकदम चिपक गए थे। सहमे से लग रहे थे, तब उनकी माँ ने उन्हें अपने पंख फैलाकर उनमें समेट लिया। गरमाहट मिलते ही वे अपनी बोली में चहचहाने लगे।

"माँ चाहे किसी की हो, अपने बच्चों को प्यार करती है, उनकी सुरक्षा करती हैं।" पापा ने कहा, जो बिन्नी के लिए जूस बनाकर लाए थे।

"सबकी मम्मी, मेरी मम्मी की तरह ही तो प्यारी होती हैं।" बिन्नी खुश थी।

"पर मम्मी, इन्होंने मास्क क्यों नहीं पहना है? अपने घोंसलों से ये पक्षी भी तो बाहर निकले हुए हैं?" बिन्नी ने मासूमियत से पूछा।

मम्मी ने हँसते हुए बोलीं, "कह तो तुम ठीक रही हो, पर पक्षियों को कोरोना नहीं होता। मनुष्य की तरह इन्हें इस संक्रमण से डरने की जरूरत नहीं है।"

बारिश फिर से शुरू हो गई थी। तभी माँ कबूतर अपने बच्चों के साथ उड़कर आम के पेड़ पर घनी शाखाओं पर आकर बैठ गई। पत्तों के बीच बैठे हुए माँ कबूतर उन्हें अपनी चोंच से सहलाने लगी। बिन्नी बालकनी में झूला झूलते-झूलते अब और मजे से उन्हें देख सकती थी।

"मम्मी, देखो न, पक्षियों वाले पेड़ से कितनी प्यारी-प्यारी आवाजें आ रही हैं।" बिन्नी के चेहरे पर फैली मुसकान मानो पक्षियों को भी खुशी दे रही थी, क्योंकि लगातार उनके चहकने की आवाजें बढ़ती ही जा रही थीं।

१२, एकलव्य विहार, सेक्टर-१३,
रोहिणी, दिल्ली-११००८५
दूरभाष : ९८१०७९५७०५
sumanbajpai@yahoo.co.in

परिदृश्य का रंग

कविता

● देवेश पथ सारिया

उद्गम

छपाक से पड़ा रंग
सरकता चला गया
मूल चित्र की परिधि से अछूते
एक कोने पर

इसी तरह बह निकलती हैं नदियाँ
जब सुस्ता रहा होता है
पर्वत के ऊपर बैठा
गड़रिया।

मैं रंग

मैं होना चाहता था
परिदृश्य का रंग
तुम्हारे जीवन चित्र में
मुझ पर से होकर गुज़रते
बाकी सब रंग
और यदा-कदा मैं ही

चित्र बनाकर
हस्ताक्षर करने के बाद
तुमने चुना मुझे
पूर्ण विराम लगाने के लिए।

फूलमती

एक आदमी
बोगनवेलिया को कहता है
फूलमती

क्या यह इसलिए
कि वह कवि बन रहा है
या कि वह रह चुका है
कोड नाम देने में दक्ष
एक प्रशिक्षित जासूस।

लौट आता है

मैं खोया हुआ बच्चा हूँ
जो लौट आता है
फिर-फिर
साँझ ढले, आसमान तले
खाली मैदानों में
अपनी साइकिल लेकर

माडा योजना हॉस्टल
पोस्ट ऑफिस के पास राजगढ़,
अलवर-३०१४०८ (राजस्थान)
दूरभाष : ८८६९७८०६४९३०

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय 'संपूर्ण विश्व के राम', आवरण पृष्ठ का चित्र, पं. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' बहुत अच्छे एवं राममय लगे। नव संवत् तथा रामनवमी पर बहुत से आलेख अच्छे लगे।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। पं. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' बहुत अच्छा लगा। 'भारतीय संवत्सर', 'त्रिवेणी में राम' सहित सभी आलेख पठनीय लगे। मनोज मधुर के नवगीत तथा सभी स्थायी स्तंभ हमेशा की तरह मन को भाए।

—जयप्रकाश श्रीवास्तव, जबलपुर (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक विशेष आवरण पृष्ठ एवं समसामयिक रचनाओं के साथ प्राप्त हुआ। संपादकीय 'संपूर्ण विश्व के राम' तथा डी.डी. ओझा के आलेख 'विज्ञानसम्मत भारतीय संवत्सर' में नवीन जानकारियाँ हैं। तरुण दांगौड़े का ललित निबंध 'भीलनी गाए गीत', मनोज जैन की कविता 'एक मुट्ठी रेत' तथा साहित्य का विश्व परिपार्श्व 'संकटों के बीच' अच्छे लगे। इस अंक की सभी कविताएँ मन, बुद्धि और हृदय के सोपानों से होती हुई पाठकों तक पहुँचती हैं।

—प्रमिला मजेजी, कोरबा (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का मई-जून-जुलाई का संयुक्तांक प्राप्त हुआ। ओम निश्चल का आलेख 'अनुपस्थितियों का सतत शोक, साहित्यकारों की सिकुड़ती हुई दुनिया' बड़ा दुखद है। लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला की कहानी 'सावित्री', कादंबरी मेहरा का आलेख 'इंग्लैंड के लिए भारतीय फूल', वीरेंद्र याज्ञिक का स्मरण लेख 'मॉरीशस के तुलसी', विनायक दामोदर सावरकर जी का 'ओ हुतात्माओ!', संतोष कुमार तिवारी का संस्मरण 'श्री राधेश्यामजी खेमका : कुछ संस्मरण', रामदरश मिश्र की कहानी 'सुशीला' सभी अच्छे लगे। मनोज शर्मा की कहानी 'एग्जिमा', इंदु सिंह की कहानी 'डिपेंडेंट', प्रकाश मनु का 'चम-चम सिक्के और मेवालाल की मिठाई' भी रुचिकर लगे। अंक की कविताएँ भी पसंद आईं।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

लॉकडाउन के लंबे विश्राम के बाद 'साहित्य अमृत' का भारी-भरकम संयुक्तांक समय पर मिल गया। विनायक दामोदर सावरकर का 'ओ हुतात्माओ!' पढ़कर भुजाएँ फड़कने लगीं; आजादी की कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। झुंझुनवाला की कहानी 'सावित्री' बड़ी ही रोचक और कथारस से भरपूर है। इनके अलावा रामदरशजी की 'सुशीला', मोहिनी गर्ग की 'छाया मौसी', वंदना मुकेश की 'तसवीरें बोलती हैं', सुभाष चंदर की 'छुट्टन की डॉक्टरी', मनमोहन गुप्ता की 'वरदान', सुव्रत राय की 'दोना' बेहद पसंद आईं, इन कहानीकारों को साधुवाद। आलेखों में ओम निश्चल ने कोरोना की भेंट चढ़े कलमकारों को बड़ी शिद्दत से याद किया है। डॉ. श्रीधर द्विवेदीजी का आलेख कोरोना के बचाव की सम्यक् जानकारी देनेवाला तथा सचेत करनेवाला है। कादंबरी मेहराजी ने इंग्लैंड में भारतीय फूलों का गौरव-गान किया है, यह गर्व की बात है। ममता कुमारी का शोधालेख गांधी और गिरमिटिया की पूरी कहानी बयाँ करता है। जयशंकर प्रसाद वास्तव में एक असाधारण व्यक्तित्व थे, उन्हें पढ़कर ही हम बड़े हुए हैं। अतुल कुमार की लघुकथा 'तमाशबीन' अच्छी लगी। दूसरी तरफ केशरीनाथ त्रिपाठी की कविता 'गाँव, गली, बस्ती तक', सूर्य प्रकाश मिश्र की 'मन भीग गया, तन भीगेगा', राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' की 'तोड़ दे सारे बंध', शरद नारायण खरे की 'महाराणा प्रताप का शौर्य' मन को छू गईं।

वीरेंद्र याज्ञिक का स्मरण 'मॉरीशस के तुलसी' पढ़ा; वास्तव में अरुणजी का काम तुलसी से कम नहीं है। नरेंद्र कोहलीजी को जनमेजयजी ने बड़ी शिद्दत से याद किया है। खेमकाजी पर स्मरण लेख मन को छूनेवाला है, ये सब महान् लोग थे, जो जल्दी चले गए। प्रकाश मनुजी की आत्मकथा का अंश 'चम-चम सिक्के और मेवालाल की मिठाई' ने हमें भी अपने बचपन की याद दिला दी, बचपन बहुत प्यारा होता है। हिंदी के प्रति तोतियो मिजोकामि का वक्तव्य भारतीयों की आँखें खोलनेवाला है। हमें अपनी भाषा हिंदी पर गर्व करना चाहिए। पूरन सरमा का व्यंग्य 'साहित्य की खटपट' मनोरंजक है। प्रणव शास्त्रीजी ने यूरोप यात्रा भलीभाँति करा दी, उन्हें बधाई। कुलभूषणजी का 'शेर जंगल का राजा', पवन वर्मा का 'आम का अचार' सुंदर रचनाएँ हैं। कुल मिलाकर पूरा अंक ही शानदार है। संपादक मंडल के सभी सदस्यों को धन्यवाद।

—आनंद शर्मा, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का मई-जून-जुलाई का संयुक्तांक बड़ा ही सेहतमंद है। इसमें एक से एक यादगार रचनाएँ हैं, किस-किस का जिक्र करूँ। लेकिन कोरोना कितने सारे कलाकारों, रचनाकारों को लील गया, यह बड़ा ही दुखद है। कई उच्चकोटि के साहित्यकार असमय ही कोरोना की भेंट चढ़ गए। लेखकों ने उन्हें बड़ी आत्मीयता से याद किया है। सावन और वर्षा की कविताएँ मन को भिगो गईं। सब कहानियाँ अच्छी और मनोरंजन से भरपूर हैं। इस अंक के कई शोध आलेख प्रशंसनीय हैं, लगता है शोधार्थी ने अच्छी मेहनत की है। लोक-साहित्य में राम का लोकगीतों में वर्णन हर प्रांत और समुदाय में मिल जाता है। सारा जग ही राममय है। हिंदी की ज्यादातर विधाओं को पत्रिका रचनाएँ छापकर यह उनका संवर्धन कर रही है। हर अंक में नई-नई जानकारी परोस रही है। संपादक मंडल मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें!

—भूप सिंह, हरिद्वार

कोरोनाकाल में 'साहित्य अमृत' की कमी बहुत खली। मन अवसाद में था कि मई-जून का 'साहित्य अमृत' पढ़ने को नहीं मिला पर जब जुलाई प्रथम सप्ताह में मई-जून-जुलाई का संयुक्तांक मिला तो मन प्रफुल्लित हो गया। आवरण चित्र ने तो मन ही मोह लिया। दो बालकों की इतनी सहज-स्वाभाविक मुद्रा ने अपने बालपन की स्मृति ताजा कर दीं। प्रतिस्मृति में वीर सावरकर की कालजयी पुस्तक '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' के अंश पढ़कर रोमांचित हो गया। माँ भारती के इस सपूत की लेखनी की धार को नमन, उनके त्याग और संघर्ष का वंदन इस बृहद् अंक में १४ कहानियाँ, १२ आलेखों और अन्य विधाओं की विपुल सामग्री ने पाठकों के प्रति पत्रिका की निष्ठा का प्रकटीकरण किया है। दिवंगत साहित्यकार-लेखकों की पावन स्मृति को नमन; वे चले गए पर उनकी लेखनी और रचनाएँ उनके होने का अहसास करवाती रहेंगी।

—प्रियंवद कुमार, रोहतक

वर्ग पहेली (१८५)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जुलाई, २०२१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते सितंबर २०२१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१८३) का शुद्ध हल

१ खे	२ त	■	३ छो	टा	४ मो	५ टा	■	६ ला
७ ल	ल	८ का	र	■	९ द	ल	१० द	ल
■	११ ह	या	■	१२ डं	क	■	१३ र	न
१४ बो	टी	■	१५ झं	डा	■	१६ पु	जा	पा
डिं	■	१७ सा	झा	■	१८ ग	श्त	■	ल
१९ ग	२० ग	न	■	२१ आ	ला	■	२२ मा	न
२३ हा	ड़	■	२४ सु	धा	■	२५ ज्ञा	ता	■
२६ उ	प	२७ हा	र	■	२८ त	न	म	२९ न
स	■	३० ट	मा	ट	र	■	३१ ह	ल

★ पुरस्कार विजेता ★

१.**श्री आदित्य भारद्वाज**
१८ दयानंद नगर, पो. दयाल बाग
आगरा-२८२००५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९९९७६०८०९५

२.**डॉ. मीना सोनी**
गवर्नमेंट गर्ल्स हाई स्कूल रोड
पो. झारसगुड़ा, जिला-झारसगुड़ा
पिन-७६८२०१ (उड़ीसा)
दूरभाष : ९८६१०३६१५७

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १८१ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची', शिवकांत (महेंद्रगढ़), बद्रीलाल व्यास (ब्यावर), वीना तिवारी (फर्रुखाबाद), विनीता सहल धरानी (बेंगलुरु), रामेश्वर कुलमित्र (कबीर धाम), विमला देवी (हमीरपुर), सरला लोढ़ा (उदयपुर), हरदेव सिंह धीमान (शिमला), मोहन उपाध्याय (अजमेर), मोहन जगदाले (उज्जैन), रेणु मिश्र (जयपुर), बी.डी. बजाज (दिल्ली), अमर देव अंगिरस (सोलन), मनीषा बेहल (ग्वालियर), सुधांशु शेखर बख्शी (अहमदाबाद), फकीर चंद ढुल, जगदीश चंद (कैथल), जगदीश राम गर्ग (मानसा), सलोनी अनिल अधम (अमरावती), कृष्णा श्रीवास्तव (जबलपुर)।

वर्ग पहेली (१८४)

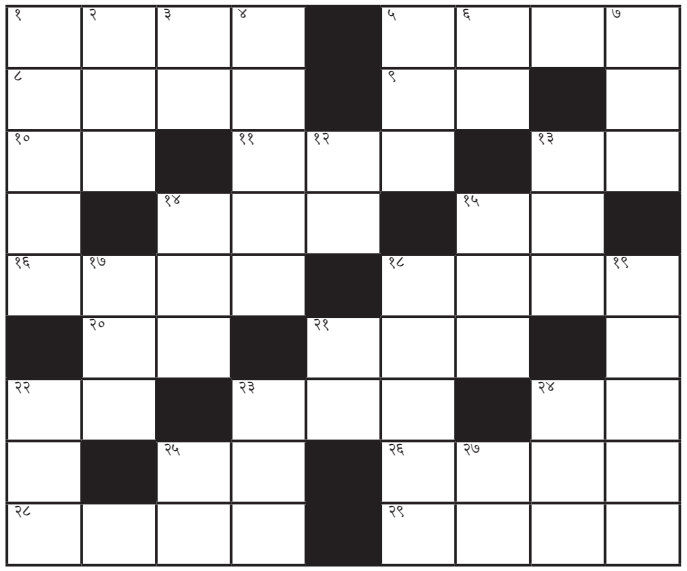

बाएँ से दाएँ—

१. अपने समक्ष आकर झुकनेवालों की रक्षा करनेवाला (४)
५. दोष, जुर्म (४)
८. बहुत से लोगों का बदहवास होकर एक साथ इधर-उधर भागना (४)
९. ताकत (२)
१०. सब्जी का बहुत बड़ा बाजार (२)
११. वंश, कुल, गोत्र, जाति (३)
१३. जहर (२)
१४. जो नष्ट हो चुका हो; तबाह (३)
१५. धान्य; वे अन्न जिनमें छीमियाँ लगती हैं (२)
१६. झुमका, लटकने वाली वस्तु (४)
१८. श्रम, मेहनत (४)
२०. माला जो गले में पहनी जाती है (२)
२१. श्रेष्ठ (३)
२२. मधुर ध्वनि में गीत (२)
२३. अफसोस, रंज (३)
२४. मशक मंपानी ढोनेवाला व्यक्ति (२)
२५. स्वच्छ, किताब का पृष्ठ (२)
२६. घाव पर लगाने की दवा (४)
२८. खाने-पीने की चीजें बनाने का पात्र (४)
२९. भेंट, उपहार (४)

ऊपर से नीचे—

१. वह जगह, जिसमें खगोलीय पिंड होते हैं (५)
२. शक्तिशाली, कमर में पहनने का एक गहना (३)
३. पैर, पाँव (२)
४. बचपन, बाल्यावस्था (५)
५. स्त्री, नारी (३)
६. क्षण (२)
७. चाप, अस्त्र जिससे तीर चलाते हैं (३)
१२. पक्षियों की विष्ठा (२)
१३. मिला-जुला, जिसमें कई तरह की चीजों का मेल हो (३)
१७. बच निकालना (३)
१८. सीमा-निर्धारण (५)
१९. अभिलाषा (५)
२१. हमेशा (२)
२२. लुप्त, जो मिल न रहा हो (३)
२३. उबाल (३)
२४. निर्जन स्थान, मरुस्थल (३)
२५. निचोड़ (२)
२७. गर्द, धूल (२)

वर्ग पहेली (१८४) का हल अगले अंक में।

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

साहित्यिक गतिविधियाँ

कबीर जयंती मनाई गई

२४ जून को रायपुर में संत कबीरदास जयंती के अवसर पर कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन के नामकरण एवं 'संत कबीर का छत्तीसगढ़' विषय पर केंद्रित पुस्तक के ऑनलाइन विमोचन में छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री भूपेश बघेल ने अपने विचार व्यक्त किए। पुस्तक के संपादक कबीर विकास संचार अध्ययन केंद्र के अध्यक्ष श्री कुणाल शुक्ला और डॉ. सुधीर शर्मा हैं। इस अवसर पर गृहमंत्री श्री ताम्रध्वज साहू तथा कृषि मंत्री श्री रवींद्र चौबे तथा कुलपति श्री बल्देव भाई शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री कुणाल शुक्ला ने किया। □

'अस्मिता कार्यक्रम' संपन्न

१३ जुलाई को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा वेबलाइन साहित्य शृंखला के अंतर्गत अस्मिता कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें चार भारतीय अंग्रेजी लेखिकाओं सर्वश्री मिताली मधुस्मिता, नीलम चंद्रा, नेहा बंसल एवं नीतू ने अपनी कविताएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने अपनी कुछ हिंदी कविताएँ भी प्रस्तुत कीं। धन्यवाद ज्ञापन श्री के. श्रीनिवासराव ने तथा संचालन उपसचिव श्रीकृष्णा किंबाहुने ने किया। □

कृति लोकार्पित

१५ जून को प्रख्यात टी.वी. होस्ट श्री सुहैब इल्यासी की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित पुस्तक 'जीने की राह श्रीमद्भगवद्गीता' का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक एवं प्रख्यात समाजधर्मी श्री इंद्रेश कुमार के करकमलों से ऑनलाइन संपन्न हुआ। बीज वक्तव्य पूर्व वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी श्री भास्कर चटर्जी ने दिया। गीता के गंभीर अध्येता और प्रवचनकार स्वामी शाश्वतानंद ने अपने उद्बोधन से श्रीमद्भगवद्गीता के माहात्म्य को और अधिक स्पष्टता से समझा दिया। वक्ताओं ने एक स्वर में यह सूत्र दिया कि मानवमात्र के कल्याण का रहस्य श्रीमद्भगवद्गीता में छिपा है। □

पुरस्कार घोषित

साहित्य अकादेमी ने अपने वार्षिक युवा पुरस्कार २०२० की घोषणा कर दी है। कहानी विधा में जिन कहानीकारों का पुरस्कार हेतु चयन किया गया, उनमें शामिल हैं—सर्वश्री अभिमन्यु आचार्य (गुजराती), अबिन जोसेफ (मलयालम) और कोमल जगदीश दयालाणी (सिंधी)। पुरस्कार विजेता को पुरस्कारस्वरूप एक उत्कीर्ण ताम्रफलक तथा पचास हजार रुपए के चेक प्रदान किए जाएँगे। □

राष्ट्रीय व्याख्यानमाला आयोजित

१७ जुलाई को संत फिलोमिना कॉलेज के फिलो हिंदी क्लब, हिंदी विभाग मैसूर द्वारा आयोजित राष्ट्रीय व्याख्यानमाला के अंतर्गत 'छायावादी काव्य में प्रकृति-चित्रण' विषय पर डॉ. रवि शर्मा 'मधुप' ने व्याख्यान दिया। डॉ. पूर्णिमा उमेश ने महाकवि निराला द्वारा रचित 'सरस्वती वंदना' का मधुर गायन किया। लगभग तीन सौ विद्यार्थियों व प्राध्यापकों ने कार्यक्रम में भाग लिया। □

राजभाषा हिंदी पुरस्कार घोषित

४ मार्च को साहित्य अकादेमी दिल्ली के उपाध्यक्ष श्री माधव कौशिक की अध्यक्षता में गठित छह सदस्यीय निर्णायक मंडल ने हिंदी सेवा सम्मान पुरस्कारों की अनुशंसा की, जिसमें वर्ष २०२०-२१ के लिए १५ श्रेणियों में १९.५ लाख की राशि के पुरस्कारों का वितरण किया जाएगा। डॉ. विश्वनाथ तिवारी को 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान' के अंतर्गत तीन लाख रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र, ३०० ग्राम चाँदी का बोधिवृक्ष, ताम्रपत्र दिया जाएगा। इसी तरह ढाई लाख रुपए का बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर पुरस्कार डॉ. अशोक कुमार को दिया जाएगा। दो लाख रुपए के अंतर्गत जननायक कर्पूरी ठाकुर पुरस्कार श्रीमती मृणाल पांडेय को, बीपी मंडल पुरस्कार श्रीमती सुशीला टांकभोरे को, नागार्जुन पुरस्कार श्री सत्यनारायण को, राष्ट्रकवि दिनकर पुरस्कार श्री रामश्रेष्ठ दीवाना को, फणीश्वरनाथ 'रेणु' पुरस्कार श्री जाबिर हुसैन को दिया जाएगा। पचास हजार रुपए के अंतर्गत महादेवी वर्मा पुरस्कार डॉ. पूनम सिंह को, बाबू गंगाशरण सिंह पुरस्कार सुश्री वनजा को, विद्याकर कवि पुरस्कार दक्षिण भा. हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद को, विद्यापति पुरस्कार श्रीमती गीता श्री को, मोहनलाल महतो 'वियोगी' पुरस्कार डॉ. राकेश सिन्हा 'रवि' को, भिखारी ठाकुर पुरस्कार श्री भगवती प्रसाद द्विवेदी को, डॉ. ग्रियर्सन पुरस्कार डॉ. छाया सिन्हा को, डॉ. फादर कामिल बुल्के पुरस्कार श्री अनंत विजय को दिया जाएगा। □

'ज्ञानेश्वरी प्रसाद' कृति लोकार्पित

१९ जुलाई को इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र सभागार, नई दिल्ली में मान. सुरेश भय्याजी जोशी की सद्य:प्रकाशित पुस्तक 'ज्ञानेश्वरी प्रसाद' का लोकार्पण श्रीरामजन्मभूमि निर्माण न्यास के कोषाध्यक्ष पूज्य गोविंददेव गिरीजी महाराज के करकमलों से इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष श्री रामबहादुर राय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सदस्य एवं पूर्व राजनयिक डॉ. ज्ञानेश्वर मुले थे। स्वागत वक्तव्य इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने दिया। प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक संत ज्ञानेश्वर के सार्वकालिक लोकप्रिय ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' पर केंद्रित है। □

साहित्यिक क्षति

श्री विजय खंडूरी नहीं रहे

५ जुलाई को प्रसिद्ध शिक्षाविद, क्विज मास्टर और ज्ञान-विज्ञान व गणित विषयों के सुपरिचित लेखक श्री विजय खंडूरी का निधन हो गया। वे शिक्षा को एक अध्यवसाय नहीं वरन् मिशन मानते थे और इसलिए छात्रों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि विकसित करने के लिए नए-नए प्रयोग करते थे। उन्होंने सुडोकू, वर्ग-पहेली और खेलों पर अनेक पुस्तकें लिखीं। लगभग एक दशक से वे 'साहित्य अमृत' के लिए हर माह 'वर्ग पहेली' तैयार करके भेजते थे।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से
दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।